महात्मा गांधी

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रबल समर्थक

रोगों की

अचूक चिकित्सा

लेखक

श्रीयुत जानकी शरण वर्मा

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

दो बातें

[रायबहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधरी रिटायर्ड सिविल सर्जन, की लिखी प्रस्तावना]

मुझे बेहद खुशी है कि हिन्दुस्तानी भाषा में श्रीयुत् जानकीशरण वर्मा, बी० ए०, ने 'रोगों की अचूक चिकित्सा' जैसी फ़ायदेमन्द किताब लिखी है। मुझे पूरी उम्मीद है कि इस किताब से हर खासो-आम को अच्छी तनदुरुस्ती क़ायम रखने में और बीमारियों को सहज ही भगा देने में पूरी-पूरी मदद मिलेगी। इस किताब के लेखक ने किसी स्कूल या कालेज में डाक्टरी की तालीम नहीं पाई है, लेकिन यह अच्छा ही है, क्योंकि तब तो वह इलाज के सीधे-सादे, सही और अचूक ढंगों को नहीं बता सकते थे। लेखक ने तनदुरुस्ती और कुदरती इलाज की बहुत सी किताबें और पर्चे--अखबारात पढ़े हैं, और इसके साथ ही काफ़ी तजुर्बा हासिल किया है। मैं उनके ख़यालात की क़द्र करता हूँ और इस किताब को बहुत मुफ़ीद समझता हूँ। इस किताब में सही और अचूक इलाज की सभी तरकीबें--ठीक-ठीक खाना; हवा, धूप, पानी और मिट्टी का इस्तेमाल ; कसरत और आराम के तरीके; अलग-अलग बीमारियों के इलाज के तरीके--बताए गए हैं। छोटे-छोटे क़िस्से कहानियों से यह किताब और भी दिलचस्प हो गई है। किसी भी हिन्दुस्तानी भाषा में अभी तक कोई ऐसी किताब नहीं निकली है, और अंगरेज़ी में भी ऐसी किताबों की गिनती कम ही होगी। भाषा इसकी ऐसी है कि मामूली पढ़े-लिखे मर्द और औरत सभी इसमें दी हुई बातों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस क़िताब की एक बड़ी खूबी यह है कि लेखक ने मुश्किल बातों को भी इस तरह समझाया है कि वे सभी की समझ में आ जाती हैं।

तनदुरुस्ती का मसला बहुत आसान है, लेकिन अफ़सोस है कि इन दिनों लोगों ने उसे बहुत मुश्किल बना लिया है। तनदुरुस्त रहना ही शरीर की मामूली कुदरती हालत है, लेकिन इन्सान ने कुदरत के रास्ते में बहुत सी अड़चनें डाल रखी हैं। इसी से इन दिनों बीमारियों की भरमार है। इलाज करने वालों ने इस उलझन को बढ़ाकर तनदुरुस्ती के मसले को और भी पेचीदा कर दिया है। लेकिन यह मसला इतना पेचीदा नहीं है। कुदरत की

राह में अड़चन न डालिए, आप तनदुरुस्त बने रहिएगा। अगर आप बीमार हैं तो जो अड़चनें आपने पहले से डाल रखी हैं उन्हें हटा दीजिए--आप अच्छे और तनदुरुस्त हो जाइएगा। इस सीधी बात को समझना मुश्किल न होना चाहिए। अगर कुदरत के वसूलों की पाबन्दी की जाय तो आदमी की उम्र कम से कम १०० साल की हो, और इसके बाद भी वह हँसता-हँसता अपने शरीर को छोड़े, रट-भुगतकर न मरे। दवा से कुछ भी फ़ायदा नहीं हो सकता। मैं मामूली दवाओं से लेकर कीमती दवाओं को अपनी जिन्दगी में अच्छी तरह आज़मा चुका हूँ, और मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि वे बेकार ही नहीं बल्कि नुक़सानदेह भी हैं। शरीर को मामूली गिज़ा और हवा, पानी, धूप के सिवा और किसी चीज़ की भी ज़रूरत नहीं है। कुदरत ने उसे ऐसा ही बनाया है कि वह अपनी मरम्मत और सफ़ाई आप ही कर लेता है। मुझे खुशी है कि श्रीयुत जानकीशरण वर्मा ने अपनी किताब में इस बात पर जोर दिया है और साथ ही उन कुदरती तरकीबों का भी ज़िक्र किया है, जिनसे बीमारी दूर की जा सकती है।

ऐसी किताब की इस मुल्क में सख्त ज़रूरत थी। यहां गुरबत फैली है। लोगों को पेट भर खाने को नहीं मिलता। फिर फ़ीस और दवा के लिए रुपए कहां से लायें। अगर लायें भी तो यह ज़रूरी नहीं है कि बीमारी अच्छी हो ही जायगी। ऐसी हालत में शर्तिया कुदरती इलाज ही काम कर सकता है। बुखार या किसी भी तेज़ बीमारी में उपवास और एनीमा का इस्तेमाल कर के देख लीजिए--आपको खुद ही पता चल जायगा। याद रखिए, अव्वल तो किसी को भी बीमार न होना चाहिए और अगर कोई बीमार हो जाय तो उसे जल्द ही और बिना खर्च के अच्छा हो जाना चाहिए।

मुझे पूरी उम्मीद है कि इस किताब से मुल्क के अमीर-ग़रीब सब को फ़ायदा पहुँचेगा और जिस मकसद से लेखक ने इसे तैयार किया है वह पूरा होगा। यह किताब सब के घरों में रहनी चाहिए और इसको पढ़कर फ़ायदा उठाना चाहिए।

जबलपुर
जुलाई, १९३६

—लक्ष्मीनारायण चौधुरी
रिटायर्ड सिविल सर्जन

डाक्टर इक़बालकृष्ण तैमिनि

और

श्रीमती कुँअर तैमिनि

को

सादर समर्पित

●

आपकी सौजन्यता से ही इस विषय में मेरी रुचि हुई और आपने ही पहले-पहल किताबें दे देकर इस विषय को सीखने के लिए मुझे उत्साहित किया।

—लेखक

आवश्यक सूचना

जो अचूक-चिकित्सा-विधियों को जानकर अच्छे और सफल चिकित्सक बनना चाहते हैं वे पहले इस किताब को शुरू से अख़ीर तक तीन-चार बार अच्छी तरह पढ़ जायँ और तब चिकित्सा करना शुरू करें।

जो किसी ख़ास रोग की चिकित्सा के लिए सिर्फ़ उसी रोग के विवरण को पढ़ेंगे वे उचित लाभ न उठा सकेंगे। किताब को शुरू से अख़ीर तक कई बार पढ़ जाना ज़रूरी है।

कुछ पाठक सरसरी तौर पर इस किताब को पढ़कर या इधर-उधर देखकर अपनी शंकाओं को दूर करने के लिए मेरे पास ख़त भेजते हैं। उन से मेरी प्रार्थना है कि वे ध्यान देकर पूरी किताब पढ़ें, उन्हें कोई शंका नहीं रहेगी।

—लेखक

मैंने यह पुस्तक क्यों लिखी

मैं यह बताना चाहता हूँ कि यह पुस्तक मैंने क्यों और कैसे लिखी।

कई साल हुए मैं बुरी तरह बीमार हुआ। महीनों खाट पर लाचार हो कर पड़ा रहा। तरह तरह की चिकित्साएं की गईं पर सभी असफल रहीं। जब यह आशंका दृढ़ होने लगी कि मैं शायद ही स्वस्थ हो सकूं—तब कुछ मित्रों और शुभैषियों ने, जिनमें स्वदेश के सुविख्यात नेता पंडित हृदयनाथ कुंजरू का नाम विशेष उल्लेखनीय है, प्राकृतिक चिकित्सा को आजमाने की सलाह दी। इस चिकित्सा से मैं दस दिन के अन्दर ही उठ खड़ा हुआ और यद्यपि पूरी तनदुरुस्ती हासिल करने में दो वर्ष लगे, मैं हर रोज, हर हफ्ते पहले से ज्यादा अच्छा होने लगा। मैं पहले भी थोड़ी बहुत होमियोपैथिक और आयुर्वेदीय चिकित्सा करता था, पर अब तो मुझे चिकित्सा का एक अचूक अस्त्र मिला-सा मालूम होने लगा। मैंने देखा कि इस चिकित्सा-विधि में अन्दाजी और अटकल-पच्चू बातें नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि अगर यह दवा न लगी तो वह दवा दो। इस में प्रकृति के अचूक नियमों का सहारा है। जिस तरह दिन होता है, रात होती है, जन्म होता है, मृत्यु होती है, ऋतुएं अपना अपना काम करती हैं—जिस तरह विश्व की सभी बातें कारण और कार्य के सम्बन्ध से ठीक ठीक होती हैं, उसी तरह तनदुरुस्ती के नियमों को तोड़ने से रोग होता है और उन नियमों का फिर से पालन करने से तनदुरुस्ती वापस आ जाती है। प्रकृति में जँचा-तुला न्याय है—नियम तोड़ो, दुख भोगो, नियमों का पालन करो, सुखी बनो। इसी विश्वास से प्रेरित होकर मैं प्राकृतिक चिकित्सा की अचूक विधियों को जानने की कोशिश करने लगा। अपनी चिकित्सा के दिनों में ही, जब मैं कुछ स्वस्थ हुआ, तो इस विषय की पुस्तकें पढ़ने लगा। इसके साथ ही साथ इन्हीं दिनों दूसरे लोगों की चिकित्सा करने के मौके भी मिले। पहला अवसर अपने परिवार में ही मिला। एक लड़की ज्वर-ग्रस्त हुई। कई दिनों तक औषधि देने के बाद भी जब बुखार न उतरा तो जी में यह बात आई कि प्राकृतिक उपचार का सहारा क्यों न लिया जाय। इस उपचार से ज्वर दूसरे ही दिन जाता रहा। इसके बाद मुझे दो-तीन मौके और मिले, जिनमें से एक यक्ष्मा के रोगी की चिकित्सा के सम्बन्ध में था। ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता गया और चिकित्सा में सफलता मिलती गई त्यों त्यों प्रेरणा हुई कि मातृ-भाषा में एक

पुस्तक लिखूं, जिससे साधारण ज्ञान वाले देश-वासियों, विशेषकर बहनों और माताओं, को इस विषय का ज्ञान हासिल हो। देश की हालत को देखते हुए यह जरूरी है कि यहां के रहने वाले तनदुरुस्त और तगड़े बनें, रोग-पीड़ित न हों और अगर हों भी तो बिना ज्यादा खर्च के ही जल्दी से जल्दी और जरूर अच्छे हो जायं। रोगों की अचूक चिकित्सा तो मेरा उद्देश्य है ही लेकिन असली उद्देश्य है कि देश-वासी बीमार ही न हों। इसी उद्देश्य से मैंने यह किताब लिखी, और इसमें वैसी ही भाषा का प्रयोग किया, जो आसानी से सब की समझ में आ जाय। अचूक चिकित्सा के सिद्धान्त बहुत सरल हैं, लेकिन प्रकृति से दूर हो जाने के कारण हम उसे जल्दी नहीं समझ पाते। इसका ध्यान रखते हुए इस किताब में एक-एक बात को बहुत बार दुहराया गया है। कोशिश यह की गई है कि साधारण ज्ञान वाले लोग भी सभी बातों को अच्छी तरह समझ जायँ। जिन सूत्रों से इस किताब के लिए मुझे 'मैटर' मिले वे नीचे दिए जाते हैं :—

(१) Henry Lindlhar, M. D.—The Philosophy and Practice of Natural Therapeutics.

(२) Adolph Just—Return to Nature.

(३) Louis Kuhne—The New Science of Healing; Facial Expression.

(४) L. N. Choudhuri—Ideal Diet for Perfect Health and Rejuvenation; Ideal Children and How to Get Them.

(५) K. L. Sarma—Practical Nature Cure, Vols. 1 & 2 और Fasting Cure.

(६) Bernarr Macfadden की बड़ी पुस्तकें Home Health Library; उनकी मासिक पत्रिका Physical Culture, और उनकी बहुत सी छोटी-बड़ी पुस्तकें।

(७) Stanley Lief—Diet Reform Simplified; How to Feed Children from Infancy onwards, और उनकी मासिक पत्रिका Health for All.

(८) Harry Benjamin—Your Diet in Health and Disease; Everybody's Guide to Nature Cure, और Better Sight without Glasses.

(९) Sir William Arbuthnot Lane—Good Health, और उनकी मासिक पत्रिका New Health.

(१०) Reddie Mallett—Nature's Way, और दूसरी-दूसरी पुस्तकें।

(११) Arnold Ehret—Rational Fasting; Mucusless Diet Healing System, और दूसरी-दूसरी किताबें।

(१२) विविध लेखकों की बहुत सी छोटी-छोटी पुस्तकें।

(१३) रायबहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधरी, रिटायर्ड सिविल सर्जन, जबलपुर, के साथ बात-चीत।

(१४) अपना अनुभव।

नं० १४ को छोड़कर औरों का मैं अत्यन्त ऋणी हूं।

इनके अलावा मैं श्रीयुत गुरुप्रसाद (उस समय सब-पोस्टमास्टर, इलाहाबाद) श्रीयुत बालेश्वर प्रसाद सिंह (संचालक, प्राकृतिक-चिकित्सा स्वास्थ्य-गृह, लूकरगंज, इलाहाबाद), श्रीयुत मूलराज मेहरोत्रा (इलाहाबाद युनिवर्सिटी) और प्रिन्सिपल केदारनाथ गुप्त (अग्रवाल विद्यालय कालेज, इलाहाबाद) का भी ऋणी हूँ। इन मित्रों ने मुझे बराबर ही उत्साहित किया और अपने अनुभवों से मुझे लाभ पहुँचाने की कोशिश की।

मैं भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, के अधिकारियों का विशेष ऋणी हूँ जिनकी कृपा से अपने विचारों को मैं पाठकों के सामने रखने में समर्थ हो सका हूँ।

इलाहाबाद
अगस्त, १९३९

—जानकीशरण वर्मा

इसे ज़रूर पढ़िए

दूसरे संस्करण के विषय में

मुझे बेहद खुशी है कि इस किताब के पहले संस्करण का आशातीत आदर हुआ। किताब का आदर उसमें दिए सिद्धान्तों का आदर है, जिससे आशा होती है कि देश-वासी शीघ्र ही प्राकृतिक जीवन के नियमों को फिर से अपना कर रोग और दुर्बलता की अवस्था से ऊँचा उठ जायँगे।

इस किताब के लिखने का मेरा वास्तविक उद्देश्य है अपने भाइयों और बहनों को रोग-ग्रस्त होने से बिल्कुल बचाना।

मेरी तरह से जिन लोगों की अवस्था कुछ ज्यादा है उनकी और हमसे भी ज्यादा उम्र वालों की चिंता तो मुझे है ही, लेकिन ज्यादा चिंता उनकी है, जिन्होंने अभी-अभी जीवन शुरू किया है। मैं बच्चों, बालकों और नवयुवकों को रोग से बिल्कुल बचाना चाहता हूँ। इतना ही नहीं; मैं चाहता हूँ कि वे पूर्णतया स्वस्थ हों। उनके शरीर, भाव और मन की सारी शक्तियां पूरी-पूरी पुष्ट और विकसित हों और वे जीवन का अत्यधिक आनंद लेते हुए दूसरों के काम आयें। हमें तो जो होना था वह बहुत कुछ हो चुका। हम भी अपनी उन्नति कर सकते हैं, अब से कहीं ज्यादा अच्छे हो सकते हैं, पर हम अपने अतीत से सीमित हैं। इसीलिए हमें अपने बच्चों की ज्यादा फ़िक्र होनी चाहिए।

इस संस्करण में बहुत सी बातें नई हैं--तीन खंड--'बच्चों का पालन-पोषण', 'स्त्रियों का स्वास्थ्य' और 'प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास'--बिल्कुल नये हैं। इनके अलावा पुराने खंडों में कई नये अध्याय मिलाये गये हैं। 'दुर्घटनाओं की चिकित्सा' और 'चिकित्सकों के प्रति' ऐसे दो नये अध्याय हैं। इतना ही नहीं, प्रायः हर पेज में कुछ लाइनें बढ़ाई गई हैं और बहुत सी ऐसी बातों पर प्रकाश डाला गया है, जिनका जिक्र पहले संस्करण में बिलकुल न था। पाठक इस संस्करण को एक नई किताब की तरह आदि से अंत तक पढ़ जाने की कृपा करें। मुझे पूरी आशा है कि इस संस्करण से पुराने पाठक भी बहुत संतुष्ट होंगे।

चिकित्सा और स्वास्थ्य से संबंध रखने वाले अनुभव रोज ही बढ़ते रहते हैं। मुझे हर्ष है कि आगे के लिए मेरे पास बहुत सी बहुमूल्य बातें अभी से इकट्ठी हो रही हैं। पुराने संस्करण को दुहराने से पहले जो वृद्धि मेरे अनुभव में हुई थी वह पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

इलाहाबाद
मार्च, १९३८

—लेखक

तीसरे और चौथे संस्करण के विषय में

तीसरे संस्करण में मैंने कोई ख़ास तब्दीली नहीं की, पर इस चौथे संस्करण में बहुत बातें बढ़ाई और कुछ बातें बदली गई हैं। इस वृद्धि और परिवर्तन के लिए बहुत सी बातें अपने अनुभव और पुस्तकों के अध्ययन से मिलीं और कुछ बातें इलाहाबाद के नेचरो-होमियो डाक्टर ब्रजबिहारी दीक्षित और गुरुकुल कांगड़ी के नेचरोपैथी (प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र) के अध्यापक श्री भवानीप्रसाद जी के परामर्श से मिलीं। इन सज्जनों को धन्यवाद।

इस संस्करण को भी बिल्कुल नई पुस्तक की तरह पढ़िए।

चौथे संस्करण के प्रकाशित होने के पहले मैंने नीचे लिखी पुस्तकें पढ़ीं:—

(१) Macfadden—Encyclopedia of Physical Culture, 5 vols.

(२) Hay—Health *via* Food.

(३) Kellogg—Rational Hydrotherapy.

(४) Eeman—How Do You Sleep.

इन लेखकों को धन्यवाद। यह पुस्तक बहुत बड़ी हो सकती थी, पर मैंने तो इसे पारिवारिक प्रयोग के दृष्टिकोण से ही लिखा है।

कैम्प दिल्ली,
एप्रिल, १९४४

—लेखक

यह संस्करण

यह इस पुस्तक का पाँचवाँ संस्करण है।

अक्सर मित्रों की सलाह आती रहती है कि मैं कुछ और रोगों की चिकित्सा पर प्रकाश डालूँ। शायद वे इस सिद्धान्त को, जो इस पुस्तक में बार-बार दुहराया गया है, नहीं समझते कि प्राकृतिक-चिकित्सा-पद्धति के दृष्टिकोण से विविध लक्षणों के होते हुए भी रोग एक ही है, चाहे उसका जो भी नाम रखा जाय। चिकित्सक का काम है अनुभूत उपचारों के सहारे जीवन-शक्ति की रक्षा करना और विकारों के निकलने में शरीर की सहायता करना। अलग अलग रोगों के शीर्षक के नीचे जो बताया गया है वह राह दिखाने के लिए है।

अगर पाठक ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो इस संस्करण में उन्हें बहुत बातें नई मिलेंगी।

इलाहाबाद,
जून, १९४७

—लेखक

चित्र-सूची

हाफ़-टोन चित्र—

[नोट—इनके अतिरिक्त भारत तथा अन्य देशों में भी अनेक प्रख्यात चिकित्सक हैं, जो प्राकृतिक उपचारों से ही रोग निवारण करते हैं]

सादे चित्र—

विषय-सूची

५ मन को ठीक रखना

६ बच्चों का पालन-पोषण

७ स्त्रियों का स्वास्थ्य

रोग-वृक्ष

(डाक्टर लिन्डलहार के एक चित्र के आधार पर)

रोग शरीर में बाहर से नहीं आता। अप्राकृतिक जीवन से ही शरीर में विकार पैदा होता है और उसी विकार से तरह-तरह के रोग होते हैं। जड़ को ही दूर कीजिए, शाखा और पत्तियों के काटने से सच्चा लाभ नहीं हो सकता।

साधारण ज्ञान

तनदुरुस्ती; रोगों का कारण; रोगों के प्रकार;
चिकित्सा-सिद्धान्त; भोजन

तनदुरुस्ती

तनदुरुस्ती शरीर की मामूली हालत है। जरा से ध्यान से शरीर अच्छी हालत में रह सकता है। लेकिन तनदुरुस्ती और बीमारी के बारे में लोगों के कुछ अजीब विचार हैं। लोग समझते हैं कि अधिकतर बीमार रहना ही शरीर की मामूली हालत है। हमारे दिलों में भय सा बना रहता है कि न जाने हम कब बीमार हो जायँ। होता भी ऐसा ही है। कभी ज़ुकाम (सर्दी) होता है तो कभी बुख़ार (ज्वर), कभी पेट दुखता है तो कभी सर, कभी पेचिश (आंव) होती है तो कभी पतले दस्त आते हैं और कभी हैज़ा फैलता है तो कभी चेचक का प्रकोप भयंकर रूप धारण करता है। हर साल, हर मौसम, हर महीने, हर हफ़्ते और हर दिन बीमार रहते-रहते हम ऐसा समझने लगे हैं कि बीमार रहना मानो मामूली और ज़रूरी बात है।

हमारी हालत—

हमारे देश-वासियों की दशा बहुत ही सोचनीय है। लड़कियां इतनी कमज़ोर रहती हैं कि वे माता बनने के बिलकुल योग्य नहीं रहतीं। बहुत से गर्भ नष्ट हो जाते हैं। लड़के अच्छी तरह नहीं बढ़ते। पूरे जवान होने के पहले ही वे बुड्ढे होने लगते हैं। समय के पहले बुढ़ापा तो मामूली बात हो रही है। टी० बी० (यक्ष्मा) के शिकार होने वालों की संख्या हर दिन बढ़ रही है। रोगों की सूची में नित नये नाम दर्ज किये जा रहे हैं और डाक्टरों की खोज, मेहनत और तरह-तरह की दवाइयों के प्रयोग से भी न तो रोग निर्मूल हो रहा है और न जनता की तनदुरुस्ती में उन्नति है। दूसरे देशों की हालत इतनी ख़राब नहीं है। आख़िर, अपने यहां की ख़राबियों का कारण क्या है?

कारण और कार्य का संबंध—

सब बातों में कारण और कार्य का संबंध देखा जाता है। बिना कारण, बिना वजह के, कोई बात नहीं होती—यह हम ख़ूब अच्छी तरह समझते हैं। अगर कोई कर्ज़ में पड़ता है तो हम कहते हैं कि वह अपनी आमदनी से ज़्यादा खर्च करता है, इसलिए कर्ज़दार हुआ। अगर फ़सल अच्छी नहीं होती तो

हम कहते हैं कि वर्षा अच्छी नहीं हुई, इसी से पैदावार सन्तोषजनक नहीं है। अगर मकान गिर पड़ता है तो कहते हैं कि नींव और दीवार मजबूत न थीं। इसी तरह प्रत्येक घटना या बात का कारण हम ढूंढ़ निकालते हैं। लेकिन जब तन-दुरुस्ती की बारी आती है तो कारण और कार्य का संबंध हम बिलकुल भूल जाते हैं। अगर कोई पूछे कि तनदुरुस्ती क्यों खराब है तो हम कहते हैं, 'न जाने क्यों हमारी तनदुरुस्ती ख़राब रहती है। हम तो बराबर अच्छी तरह रहते हैं, मामूली खाना खाते हैं, फिर भी तनदुरुस्ती अच्छी नहीं रहती। हमारे भाग्य में अच्छा रहना लिखा ही नहीं।' इस प्रकार अपने बीमार रहने का दोष हम अपने भाग्य या किसी और के मत्थे मढ़ते हैं। ज़ुकाम क्यों हुआ ? ठंड लग गई। बुखार क्यों हुआ ? गर्मी ज़्यादा पड़ती है। फोड़े क्यों निकले ? बरसात का मौसम है। मानो अपना कोई दोष ही नहीं। दोष या तो मौसम का है या किसी और का। हम यह भी देखते हैं कि उसी ठंड या गर्मी में सभी लोग घूमते-फिरते और रहते हैं, फिर भी बहुतों को ज़ुकाम या ज्वर नहीं होता। तो भी अपने लिए सारा दोष हम मौसम के ऊपर ही छोड़ते हैं। मौसम का, बाहरी सर्दी या गर्मी का, प्रभाव (असर) शरीर पर पड़ता ज़रूर है, पर यह भी तो देखना चाहिए कि शरीर कैसा है, उसे हम किस तरह रखते हैं, उसे कैसा भोजन देते हैं, उसके अन्दर का ख़ून साफ़ है या विकार-युक्त—उसे हमने मज़बूत बनाया है या कम-ज़ोर कर दिया है, वह गर्मी-सर्दी सह सकता है या नहीं और अगर नहीं, तो क्यों नहीं। कारण और कार्य का सम्बन्ध ठीक नहीं समझने के कारण हम अपने को निर्दोष बताते हैं और इसी से दुखी बने रहते हैं।

पश्चिम की सभ्यता के प्रभाव में पड़कर हम अपने पुराने अच्छे संस्कारों को खो बैठे हैं। इन सदियों की गुलामी में हम धीरे-धीरे इतना बदल गये हैं कि हमारा खाने-पीने, रहने-सोने, सभी कुछ का ढंग अनुचित और रोग बढ़ाने वाला हो गया है। मुश्किल तो यह है कि हमारे सोचने-विचारने का ढंग भी इतना बदल गया है कि अपने आहार-विहार और व्यवहार का सुधार हम करना ही नहीं चाहते। यूरप-अमेरिका की ग़लत बातें, वहां के गलत तरीके यहां आसानी से चालू हो जाते हैं, पर उनके यहां जो सुधार होते हैं उनसे हम फ़ायदा नहीं उठाते।

जब तक हम अपने को बहुत अंशों में पुराने आदर्शों पर वापस नहीं लाते हमारी हालत नहीं सुधरने की।

सब से पहले कारण-कार्य का संबंध समझना होगा।

कुछ भ्रम --

रोग के बारे में एक भारी भ्रम कुछ वर्ष पहले फैला हुआ था। वह भ्रम अब धीरे धीरे कम हो रहा है। कुछ लोग रोगों का कारण भूत-प्रेतादि से सताया जाना बताते हैं। मैं इस भ्रम के संबंध में भी यही कहूँगा कि कारण और कार्य की समझदारी की कमी से हम लोग भूत-प्रेत को अपने रोगों का कारण समझते हैं।

इन दिनों रोगों के कारण के बारे में एक दूसरी हवा फैली हुई है, और वह हवा इतनी जोरदार है कि आंधी का रूप धारण कर सबको अपने सामने झुकाये है। आज कल पढ़े-लिखे लोग--प्रायः सारा सभ्य संसार--रोगों का कारण कृमि (छोटे-छोटे कीड़े--germs) बताते हैं। यदि मैलेरिया (जाड़ा बुखार) होता है तो कृमि (मच्छड़ों के काटने) से, प्लेग होता है तो कृमि से, हैजा कृमि से, यक्ष्मा (तपेदिक) कृमि से--रोगों में प्रायः सैकड़े-निन्यानवे रोग कृमि से ही पैदा होते हैं। कृमि अवश्य हैं और उनका प्रभाव शायद शरीर पर पड़ता होगा, पर जिस तरह मजबूत और तनदुरुस्त शरीर में मौसम से खराबी नहीं होती उसी तरह वैसे शरीर में कृमियों से भी रोग पैदा नहीं हो सकते। पर आज कल तो ऐसी शिक्षा दी गई है कि बड़े से बड़ा डाक्टर और गांव-गँवई का एक मामूली आदमी, दोनों ही, कृमि को ही मनुष्य-शरीर का जिलाने और नाश करने वाला मानते हैं।

इन सब का अभिप्राय (मतलब) यह है कि आदमी अपने शरीर के लिए अपने ऊपर उत्तरदायित्व (जिम्मेदारी) लेना नहीं चाहता। चाहे हम बहुत ज्यादा खा लिया करें, चाहे हम देर से पचने वाली चीजें खा लिया करें, भूख न रहने पर भी पेट भर कर खाया करें, बिना अच्छी तरह चबाये ही खाई हुई चीज को गले के नीचे जाने दें, कुछ भी कसरत न करें, गन्दे स्थानों में रहा करें, गन्दे और कमजोर करने वाले विचारों को अपने मन में रहने दें, पर यदि इन कारणों से बीमारी हो तो जिम्मेदार होगा मौसम या भूत या कृमि या और कोई, हम नहीं। इसे ही कहते हैं समझ की कमी। इसी कमी के कारण हम दुख भोग रहे हैं।

आज कल शायद ही कोई ऐसा माई का लाल होगा, जिसे कोई भी बीमारी न सताती हो। कब्ज तो साधारण बात है। क्या छोटा क्या बड़ा, क्या

जवान क्या बुड्ढ़ा, क्या अंगरेज़ क्या हिन्दुस्तानी, सभी इस कब्ज़ के शिकार हैं। फिर जुकाम-खांसी का हो जाना तो मामूली सी बात है। हर तीसरे-चौथे महीने जुकाम रूपी मेहमान का स्वागत करना पड़ता है। साल में एक दो बार बुखार होना ही चाहिए। और इन सब
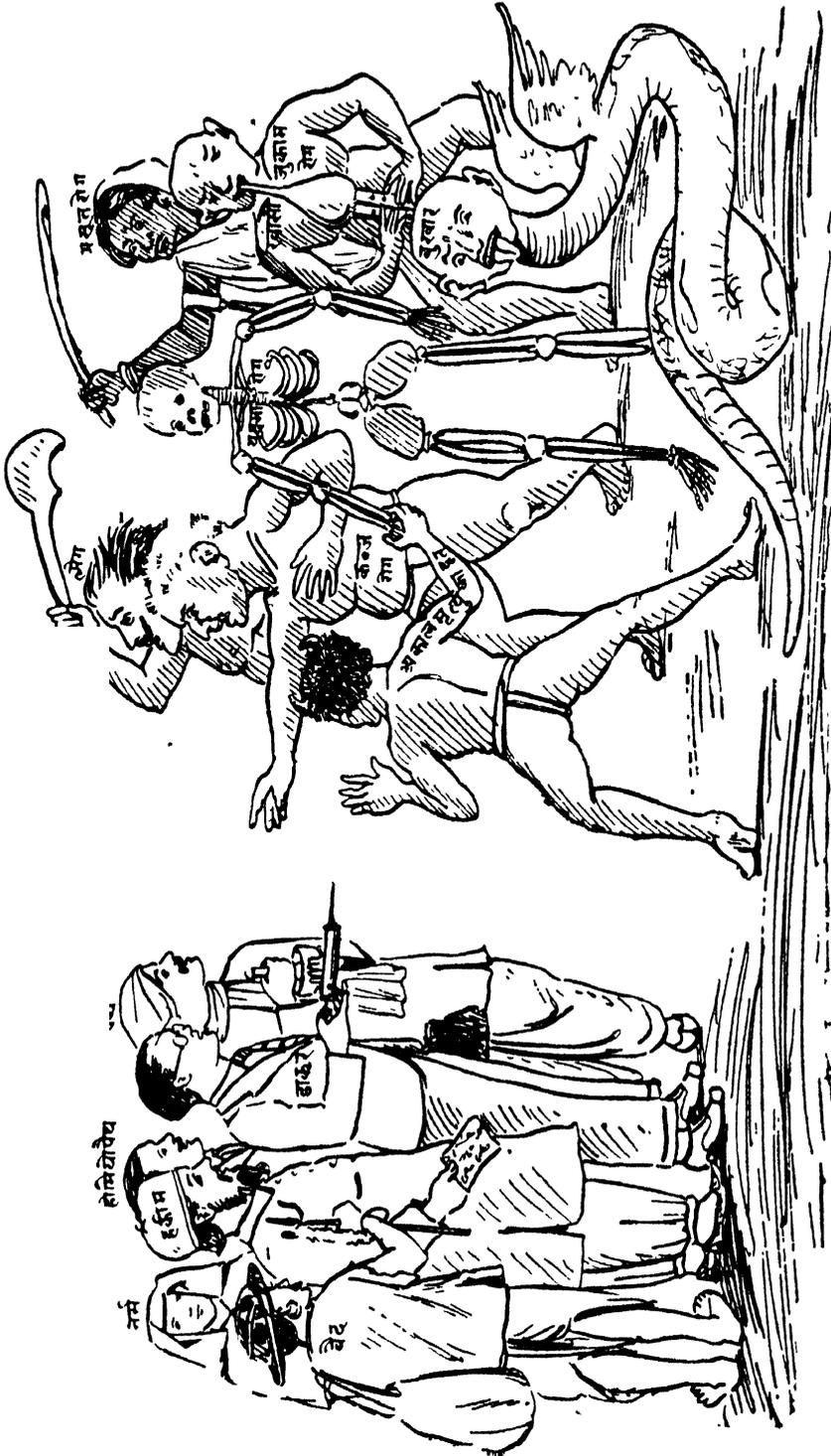
उधर तो रोग-रूपी शत्रु कतार बाँधे खड़े हैं और इधर चिकित्सकों की सेना में बे-तरह छीछा हो रही है। फिर भी रोग दम नहीं लेने देता

तीव्र* (नये) रोगों के अलावा बवासीर, गठिया, बहुमूत्र, दमा, आदि जीर्ण* (पुराने) रोगों की भी भर-मार हो रही है। चालीस साल लगते लगते, कभी-कभी पहिले ही, एक न एक जीर्ण रोग जीवन का साथी बन जाता है और उससे मरने तक छुटकारा नहीं मिलता।

एक मज़ेदार बात यह है कि उधर तो रोग-रूपी शत्रु कतार बांधे खड़े हैं और इधर चिकित्सकों (इलाज करने वालों) की भी संख्या बढ़ती जा रही है। चिकित्सकों की सेना में बेतरह वृद्धि हो रही है। फिर भी रोग दम नहीं लेने देता। यह कहना कठिन है कि आज दिन संसार में रोग अधिक हैं या चिकित्सक। चिकित्सकों के तो दल के दल, और वह भी तरह-तरह के, उमड़ पड़े हैं। आयुर्वेदीय वैद्य, यूनानी हकीम, एलोपैथिक डाक्टर, होमियोपैथिक डाक्टर इत्यादि इत्यादि सभी अपने अस्त्र-शस्त्र, तीर-तरकस लगाये खड़े हैं, तो भी न तो कब्ज़ मरता है न ज़ुकाम, न दमा भागता है न गठिया। लोग उसी तरह बीमार होते हैं और मरते हैं जिस तरह पहले। शायद पहले की अपेक्षा (बनिस्बत) अब बहुत ज़्यादा बीमार होते हैं। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अच्छे से अच्छे वैद्य और डाक्टर लगे रहते हैं, तो भी जाड़ा-बुखार हर रोज़ आ जाता है। अच्छी से अच्छी दवाएँ दी जाती हैं, तो भी कब्ज़ बना ही रहता है और यदि दो-चार दिनों के लिए जाता है तो फिर आ जाता है। बहुत से रोग तो ऐसे आ घेरते हैं कि वैद्य के बाद हकीम और हकीम के बाद डाक्टर और एक डाक्टर के बाद दूसरा डाक्टर, तीसरा, चौथा, पांचवां डाक्टर, सभी अपनी अपनी युक्तियां लगाते हैं, फिर भी बीमारी टस-से-मस नहीं होती। हो तो कैसे ? हम तो अपनी जिम्मेदारी समझते ही नहीं। हम शरीर के चलाने वाले अचूक नियमों को नहीं मानते। डाक्टर भी हमें हमारी जिम्मेदारी नहीं समझाते और न शरीर के नियमों को ही समझने देते हैं। जभी हम मौसम या किसी बाहरी चीज़ को दोषी बताते हैं और अपनी तकलीफ़ से छुटकारा पाने के लिए डाक्टर और दवा का सहारा लेते हैं तभी हम अपनी जिम्मेदारी दूसरे के सर पटक देते हैं। नतीजा यह होता है कि हम बीमार के बीमार बने रहते हैं और लाचार होकर अपने दिन बिताते हैं। सारा दोष भाग्य के मत्थे मढ़ा जाता है; क्योंकि और हो ही क्या सकता है ? अपने को दोषी नहीं समझते और न डाक्टर-वैद्य को ही दोषी समझते हैं। भला, आयुर्वेद या हिकमत पढ़ा हुआ वैद्य या हकीम या पांच-छः साल जान देकर एम० बी०, बी० एस० की डिग्री (उपाधि)

*'तीव्र', 'जीर्ण' का भेद आगे बताया जायगा।

पाया हुआ विद्वान डाक्टर क्योंकर दोषी ठहराया जा सकता है। इसलिए बेचारा भाग्य ही कोसा जाता है।

तनदुरुस्त रहना आसान है—

तो क्या रोगी बना रहना या बार-बार बीमार होना मनुष्य-शरीर की मामूली हालत है? नहीं। जैसा हम ऊपर कह आये हैं, हम अपनी ना-समझी के कारण दुख भोगते हैं। सच पूछिए तो तनदुरुस्त रहना, बीमार न होना, तगड़ा बना रहना, आसान है, और यही हमारे शरीर की स्वाभाविक अवस्था है। जिस तरह और बहुत सी बातें उल्टी-सीधी हो गई हैं उसी तरह तनदुरुस्ती के संबंध में हमारे विचार उल्टे हो गये हैं। इसलिए तनदुरुस्त बनने और रहने के लिए सब से पहले यह अच्छी तरह जान और समझ लेना चाहिए कि तनदुरुस्त रहना ही आसान और स्वाभाविक है और रोगी बनना कठिन और अस्वाभाविक। यह हमारा ही दोष है कि हम तनदुरुस्ती के सच्चे नियमों को जानने की कोशिश नहीं करते और अगर उन्हें जानते भी हैं तो उनको न मानकर हम बीमार होते हैं।

सोचिए तो सही—

सोचिए तो सही, क्या जानवर भी उतना बीमार होता है जितना कि मनुष्य? पालतू जानवर तो मनुष्य के संग-साथ रहने के कारण दो-तीन बार बीमार भी होता है, और उसके लिए अब अस्पताल भी खुल गये हैं, पर जंगली जानवर तो अपने जीवन में सिर्फ एक बार बीमार होता है और उसी समय अपने शरीर को छोड़ देता है। मनुष्य की तरह वह बार-बार और हर साल बीमार नहीं होता और न रट-रट कर, दुख भुगत कर, अपने प्राण देता है। फिर यह तो सोचिए कि जीवधारियों में सिर्फ आदमी ही क्यों चश्मा (ऐनक) लगाता है! गधे, घोड़े, बैल, कुत्ते इत्यादि जानवरों की आंखें उस तरह क्यों खराब नहीं होतीं जिस तरह आदमियों की होती हैं? क्या आदमी की आंखें कमज़ोर बनी हैं या उसकी आंखें उसकी अपनी ही करनी से ख़राब हो जाती हैं? यह भी सोचिए कि क्या आप की गाय के बच्चा जनने के समय किसी लेडी डाक्टर की जरूरत पड़ती है? लेडी डाक्टर द्वारा बच्चा जनने के बाद भी हमारी स्त्रियां अक्सर बुरी तरह बीमार होतीं और मरती हैं। ऐसा क्यों होता है? क्या ऐसी ऐसी घटनाओं के लिए हम मनुष्य, स्वयं ज़िम्मेदार नहीं हैं?

इस सृष्टि में मनुष्य और जानवर के अलावा पेड़-पौधे और लता-गुल्म भी हैं। क्या वे भी आदमी की तरह दुःख भोगते हैं? यदि नहीं, तो क्या सिर्फ़

मनुष्य ही इतना कमज़ोर है कि वह बीमार हुआ करे ? क्या उसके पढ़ने-लिखने, विद्योपार्जन करने, सभ्य बनने और सभी तरह शक्तिमान बनने का यही नतीजा है कि स्वस्थ और सुखी रहने के बदले वह रोगों का शिकार हुआ करे ? मनुष्यों में ही जो कम पढ़े-लिखे और सभ्यता में पीछे हैं वे पढ़े-लिखों और सभ्यों की अपेक्षा कम रोग-ग्रस्त होते हैं। इसका कारण क्या है ? यही कि हम प्रकृति से बहुत दूर हट गए हैं।

हमने तनदुरुस्ती की समस्या को टेढ़ी खीर बना दी है, हमसे स्वाभाविकता और सादगी दूर भाग गई है, हम मामूली प्रकृति के नियमों को न तो समझते हैं और न समझ कर उन्हें मानते हैं, और साथ ही, जैसा कि ऊपर कहा गया है, हम अपनी जिम्मेदारी कभी मौसम पर, कभी जल-वायु पर, कभी चिकित्सकों पर, कभी औषधियों पर और ज़्यादातर जर्म्स पर डाल देते हैं।

सीधा-सादा, पाक-साफ़ प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत कर तनदुरुस्त रहना आसान है। तनदुरुस्ती मानव-शरीर की स्वाभाविक अवस्था है। मनुष्य, जैसा कि वह देखने में मालूम होता है, वैसा नहीं है। उससे कहीं ऊँचा है। वह इस पृथ्वी पर रोगी बने रहने के लिए नहीं आया है। वह स्वर्गीय है, ईश्वरीय है, दिव्य है। यदि वह अपने वास्तविक बड़प्पन को समझे और उसी के अनुसार जीवन बिताये तो वह कभी भी रोग-ग्रस्त न हो। बहुत समय तक अपने शरीर को अच्छी तरह धारण करने के बाद जब शरीर-त्याग करने का समय आयेगा तो जिस तरह कपड़े उतार कर रखे जाते हैं उसी तरह अपने पुराने शरीर को उतार कर वह चल देगा। ऐसे ही जीने को जीना कहते हैं और वैसा जीना, जिसमें हर रोज़ कोई न कोई रोग पीछे लगा है, मरने से भी बुरा है।

शरीर रखने के कुछ नियम हैं। बनावटी सभ्यता के इस युग में वे नियम खो से गये हैं और समझाने पर भी जल्दी समझ में नहीं आते। यदि उनके बारे में कोई कुछ कहता है तो सुनने वाले ताज्जुब करते और हँसते हैं, पर अब धीरे धीरे उन नियमों के मानने वालों की संख्या बढ़ रही है। इस छोटी सी किताब में वे नियम दुहराये जायंगे। साथ ही यह विश्वास दिलाया जाता है कि जिस तरह दिन के बाद रात और फिर रात के बाद दिन आता है उसी तरह प्राकृतिक नियमों के पालन करने के बाद तनदुरुस्ती आती है और यदि वह ख़राब हो गई है तो अच्छी हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

रोगों का कारण

पहले कहा जा चुका है कि, और बातों की तरह, रोगों के बारे में भी कारण और कार्य का संबंध देखना चाहिए। जब रोगों के सच्चे कारण का पता चल जायगा तो हम उन कारणों को दूरकर रोग को जड़-मूल से भगा सकते हैं। और यदि सच्चे कारण को न जाना, केवल इधर-उधर की या ऊपरी बातों को ही जान कर सन्तुष्ट हो गये, तो एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा रोग बना रहेगा, और, जैसा कि अब है, हकीम-वैद्य-डाक्टरों के होते हुए भी मनुष्य-जाति रोगों से पीड़ित रहेगी। सच्चा कारण जानने के बाद सच्चा उपचार भी सीखना चाहिए, लेकिन पहले आइये और गंभीरता-पूर्वक विचार कीजिए कि रोगों का सच्चा कारण क्या है।

एक ही कारण--विकार--

सच पूछिए तो सारे रोगों का एक ही कारण है--शरीर में विकार का आ जाना। मनुष्य शरीर, प्रकृति के नियमों के अनुसार, अपने को बराबर ही साफ-सुथरा और अच्छी हालत में रखना चाहता है। इस बात को अच्छी तरह समझना चाहिए। हर रोज़ हम देखते हैं कि शरीर के अन्दर वह क्रिया बराबर ही जारी रहती है, जिससे भीतर की गन्दगी शरीर के बाहर निकाल दी जाती है। गंदगी दूर होने के चार ढंग या रास्ते हैं--फेफड़े से सारे शरीर की एक ख़ास तरह की गंदगी लेकर सांस का बाहर आना, चमड़े से पसीने के रूप में गन्दगी का बाहर निकलना, पाख़ाना और पेशाब के रूप में गन्दगी का फेंका जाना। यदि इन साधारण ढंगों से शरीर के अंदर का विकार नहीं निकल पाता तो असाधारण ढंग काम में लाये जाते हैं। इस हालत में शरीर की शक्तियां तेज़ी के साथ दूसरे ढंगों से सफ़ाई का काम शुरू कर देती हैं। या तो शरीर के अन्दर की गर्मी ज्वर के रूप में बढ़कर शरीर की गन्दगी को जला देती है या कुछ दस्त ज्यादा आते हैं या ऐसी ही कोई असाधारण बात होती है, जिससे शरीर के अन्दर की सफ़ाई हो जाती है। याद रहे, शरीर की रक्षा के लिए विकारों का बाहर निकल जाना जरूरी है। इसी से जब जब यह असाधारण सफ़ाई होने लगती है तभी कहा जाता है कि रोग हुआ। वैसे तो रोग का नाम

ही बुरा है, लेकिन इस तरह गहराई में जाकर देखने से पता चलता है कि शरीर की गंदगी को बाहर निकाल फेंकने के लिए, विकारों को जला देने के लिए, प्रकृति की ओर से रोग का साधारण ढंग एक जबरदस्त साधन है। जितने नये (तीव्र) रोग (acute deseases) होते हैं, जैसे जुकाम, जोरदार बुखार, पतले दस्तों का आना, आंव (पेचिश) गिरना, फोड़ा-फुन्सी निकलना, वे सभी गंदगी को निकाल देने के लिए शरीर की सफल चेष्टाएं (कोशिशें) हैं। शरीर बराबर ही इस कोशिश में रहता है कि वह विकारों को दूर कर अपने को फिर से अच्छा और साफ़-सुथरा बना ले; और यदि वह सांस, पसीना और पेशाब-पाखाने के रूप में अपने अन्दर की गन्दगी को नहीं निकाल पाता तो रोग प्रकट कर अपनी गंदगी को जला देता है या बाहर फेंक देता है। इस-लिए इन दोनों बातों पर ध्यान देना चाहिए:--(१) अधिकतर अंदर के ही विकार से रोग होते हैं और (२) अपने बाहर गन्दगी को निकाल कर फिर से अपने को अच्छा बना लेने वाली शरीर की कोशिश को ही रोग कहते हैं।

शरीर के अंदर विकार--

विकार उन फ़जूल और खराब चीज़ों को कहते हैं, जो हमारे शरीर के लिए बेकार हैं और जो शरीर के अन्दर के खून और मांस के साथ मिलकर शरीर का हिस्सा नहीं बन सकतीं। प्रकृति का नियम है कि शरीर के अन्दर जो चीजें किसी भी ढंग से आ जाती हैं उन्हें या तो शरीर से मिल कर एक हो जाना चाहिए (खून, मांसपेशी या हड्डी के रूप में आ जाना चाहिए) या, यदि वे शरीर के साथ नहीं मिल सकतीं तो उन्हें, शरीर के बाहर निकल जाना चाहिए। बेकार चीजों के बाहर निकल जाने में ही शरीर की भलाई है और तभी तनदुरुस्ती रह सकती है। यदि वे अन्दर ही रह जायें तो गड़बड़ी अवश्य पैदा हो-- तरह-तरह के जहर बनें, रक्त-संचार में रुकावट हो और नाड़ियां कमजोर हों। इसीलिए शरीर कोशिश करता है कि विकार बाहर निकल जाय। यदि शरीर इस विकार को सांस, पसीना और पेशाब-पाखाने के रूप में अपने मामूली तरीके से नहीं निकाल सकता तो, जैसा कि ऊपर कहा गया है, रोग-रूपी असाधारण तरीक़े से निकालता है।

इस संबंध में एक और बात याद रखने योग्य है। कुछ चीजें ऐसी होती हैं कि शरीर उन्हें जरूर बाहर निकाल देता है--जैसे, यदि कोई मनुष्य किसी फल की सख्त गुठली खा ले, जो शरीर के साथ मिल कर एक नहीं हो सकते, या चवन्नी, दुअन्नी, या पैसा निगल जाय तो शरीर उसे पाखाने के साथ बाहर निकाल

देता है। लेकिन यदि बन्दूक़ से निकली हुई गोली खाल को छेदती हुई मांस की किसी तह में जा बैठे तो चीरा देकर उसे निकालना होता है, क्योंकि वह गोली उस रास्ते में नहीं है, जिससे शरीर अपने अन्दर की बेकार चीज़ों को निकालता है। कुछ भी हो, लेकिन यह ज़रूरी है कि शरीर के अन्दर वैसी चीज़ें नहीं रहतीं या रहने नहीं दी जातीं, जो उससे मिल कर एक न हो सकें। या तो वे खून, मांस या हड्डी बन जायँ या शरीर के बाहर निकल जायँ---यही शरीर-संबंधी प्रकृति का नियम है।

विकार की उत्पत्ति—

अब प्रश्न यह है कि शरीर के अन्दर विकार कैसे आते हैं। सुनिए। शरीर में विकार कई तरह से आ जाते हैं--(१) सांस के साथ हवा में उड़ने वाले छोटे छोटे कीड़े और पदार्थ, और उसी तरह पिये गये जल के साथ भी बहुत छोटे छोटे कीड़े अन्दर जाकर शरीर की सफ़ाई वाली शक्तियों द्वारा बाहर फेंक दिए जाते हैं। (२) शरीर के अन्दर ही हरकत और मेहनत से टूट जाने वाले रेशे (tissues) भी विकार-स्वरूप हो जाते हैं। हर रोज़, हर समय, हर क्षण के काम-काज, हरकत और परिश्रम से शरीर के अन्दर बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े, जिन्हें रेशा कहते हैं, टूटते और नष्ट होते रहते हैं। ये रेशे या तो पसीने के रूप में बाहर निकाल दिये जाते हैं या ख़ून की संचार-क्रिया (दौरान) में पड़ कर फेफड़े में आते हैं और वहां सांस के साथ ली हुई आक्सीजन से जलाये जाने के बाद सांस के ही साथ बाहर फेंक दिये जाते हैं। इन टूटे हुए रेशों का बाहर निकल जाना ज़रूरी है, नहीं तो ये बहुत तरह के विकार और ज़हर पैदा करते हैं। (३) खाये हुए पदार्थों का जो भाग पचने के बाद रस और ख़ून बन कर शरीर का हिस्सा नहीं हो जाता उसे शरीर के बाहर पाख़ाना और पेशाब के रूप में बिलकुल निकल जाना चाहिए। यदि उसका कुछ अंश अन्दर ही रह जाता है तो वह विकार कहा जाता है और शरीर के अन्दर तरह तरह के ज़हर पैदा करता है। उसी से ख़ून भी विकार-युक्त हो जाता है और चूंकि ख़ून शरीर के सब हिस्सों में पहुँच कर उन्हें उनकी खूराक दे आता है अतः शरीर के सभी हिस्सों में ख़ून के साथ ज़हर भी पहुँच जाता है।

एक बात और है। खाई हुई चीज़ों से ख़ून में खारापन और खटाई आती है। अगर खटाई की मात्रा २०% (सैकड़े बीस के अंदाज़) से ज़्यादा है तो तरह-तरह के रोग पैदा होते हैं। इस विषय को आगे (भोजन के नियम वाले अध्याय में) अच्छी तरह समझाया जायगा। पर यहां इतना समझना चाहिए

कि अगर खून में खटाई की मात्रा ज़्यादा है तो शरीर में कई तरह की गड़बड़ी होती है। पर क्या शरीर इन ख़राबियों को अपने अन्दर रहने देता है? नहीं, यदि जहर या विकार रह जाय तो शरीर का नाश हो जाय। इसलिए शरीर रोग के रूप में झटपट उस जहर को निकाल देने का प्रबन्ध करता है। इस प्रकार हमने देख लिया कि शरीर के अन्दर विकार किस तरह आते हैं और यह भी समझ लिया कि शरीर उस विकार को या तो अपने मामूली रास्तों से (सांस, पसीना, पाख़ाना, पेशाब के रूप में) निकाल देता है या रोगरूपी असाधारण ढंगों से निकाल कर अपने को फिर से साफ़-सुथरा बना लेता है।

विकार का निकलना—

ऊपर कहा जा चुका है कि शरीर से विकार का निकल जाना बहुत जरूरी है और यह भी कि उसके बाहर निकल जाने के लिए शरीर के मामूली रास्ते सांस, पसीना, पाख़ाना और पेशाब हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि शरीर इन रास्तों से अपने अन्दर के विकार को निकालने में समर्थ नहीं होता। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे जीवन में बहुत बनावटीपन आ गया है, जिससे अपने बाहर विकार निकालने की शरीर की शक्ति बहुत कुछ कमज़ोर पड़ गई है। इन दिनों हालत यह है कि सांस बाहर आती है पर पूरी पूरी और बिलकुल फेफड़े के अन्दर से नहीं आती और इससे उस रास्ते से आने वाला पूरा पूरा विकार निकल नहीं पाता। हम गहरी सांस लेना और धीरे-धीरे बाहर हवा निकालना भूल गये हैं। इसी से यह कठिनाई हो गई है। पसीना बहुतों के शरीर पर होता ही नहीं। जो हल्के कपड़े नहीं पहनते, खाल में धूप और हवा लगने नहीं देते, कसरत और परिश्रम के काम नहीं करते उन्हें पसीना नहीं आता। कहने की जरूरत नहीं कि अपने देश के सभ्य समाज में ऐसों की संख्या अधिक है। फिर पाख़ाना न होना या बिलकुल साफ़ न होना तो एक मामूली बात है। पेशाब वैसे तो सभी के आता है, पर यदि अच्छी तरह देखा जाय तो मालूम होगा कि सभी के पेशाब से उस रास्ते से आने वाला विकार पूरी मात्रा में नहीं निकल पाता। इस तरह ज़्यादातर आदमियों के शरीर अपनी सफ़ाई के काम में पूरा पूरा समर्थ नहीं होते। फिर अनुचित भोजन से भी हम अपने शरीर में खटाई की मात्रा अधिक भरते रहते हैं। प्रकृति (कुदरत) ने शरीर को सफ़ाई के रास्ते दिये हैं और शक्ति भी दी है, लेकिन प्रकृति के रास्ते से बहुत दूर हट जाने से शरीर की यह ताक़त कमज़ोर पड़ जाती है। इसी से सारा बखेड़ा पैदा होता है।

विकार निकालने में शरीर की शक्ति-हीनता क्यों——

अब यह देखना है कि शरीर की वह ताक़त, जिससे वह अपने को साफ़ करता है, क्योंकर कमज़ोर हो जाती है। यह एक पुराना क़िस्सा है और उसका सच्चा कारण बहुधा मनुष्य के जन्म के पहले से ही शुरू हो जाता है। यह कहानी करुण है। सुनिये——

कमज़ोर माता-पिता के बच्चे भी कमज़ोर होते हैं। इसलिए ऐसे बच्चों के शरीर में सफ़ाई की ताक़त भी कमज़ोर होती है। यदि ये बच्चे अच्छी तरह रखे और नियम-पूर्वक खिलाये-पिलाये जायँ तो उनकी सफ़ाई की ताक़त ज़ोरदार हो सकती है, पर ऐसा नहीं होता। हमारे देश के प्रायः सभी बच्चे, चाहे व कमज़ोर माता-पिता के हों या मज़बूत के, बड़े बुरे ढंग से रखे जाते हैं। उनके बदन में धूप और हवा लगने नहीं पाता, वे ठीक ठीक नहलाये नहीं जाते, उनके कपड़े साफ़ नहीं किये जाते, वे दिन-रात किसी न किसी की गोद में पड़े या बैठे रहते हैं; और जो इन सब से ज़्यादा ख़राब और आपत्तिजनक है वह यह है कि उनके खाने-पीने का समय बँधा नहीं होता। बच्चा जभी रोया माता ने उसे दूध पिलाया। इस तरह हमारे यहां के बच्चों को १५-१५ मिनट और आध-आध घंटे पर दूध पिलाया जाता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस तरह जन्म के बाद से ही उनकी पाचन-शक्ति ख़राब होने लगती है। ख़राब पेट और ख़राब हाज़मे के कारण उनका ख़ून विकार-युक्त हो जाता है। अगर सिर्फ़ ख़ून ही ख़राब होकर रह जाय तो कुछ ज़्यादा बात नहीं। लेकिन ख़राब ख़ून का प्रभाव शरीर के नाड़ी संस्थान * (स्नायु-संस्थान, nervous system) पर पड़ता है। शरीर के सब अंगों और यन्त्रों को ख़ून से पुष्टि और ख़ूराक मिलती है। नाड़ी-

---

*नाड़ी (स्नायु) संस्थान शरीर के अन्दर एक बहुत ज़रूरी चीज़ है। नाड़ी दिमाग़ से निकल कर (चित्र देखो) रीढ़ से होती हुई सारे शरीर को ढके है। उसकी शाखा-प्रशाखायें शरीर के हर भाग में फैली हैं। नाड़ी के ही प्रभाव और संचालन से शरीर के सब काम (भोजन का पचना, पाखाना होना, नींद आना इत्यादि) होते हैं। नाड़ी के कमज़ोर पड़ जाने से ये काम ठीक-ठीक नहीं हो पाते, जिससे शरीर दुर्बल और रोग-ग्रस्त हो जाता है। कुढंगे भोजन के साथ-साथ ब्रह्मचर्य का तोड़ना, उचित कसरत न करना और उचित आराम न लेना नाड़ी संस्थान के कमज़ोर पड़ने के कारण हैं।

नाड़ी (स्नायु) संस्थान
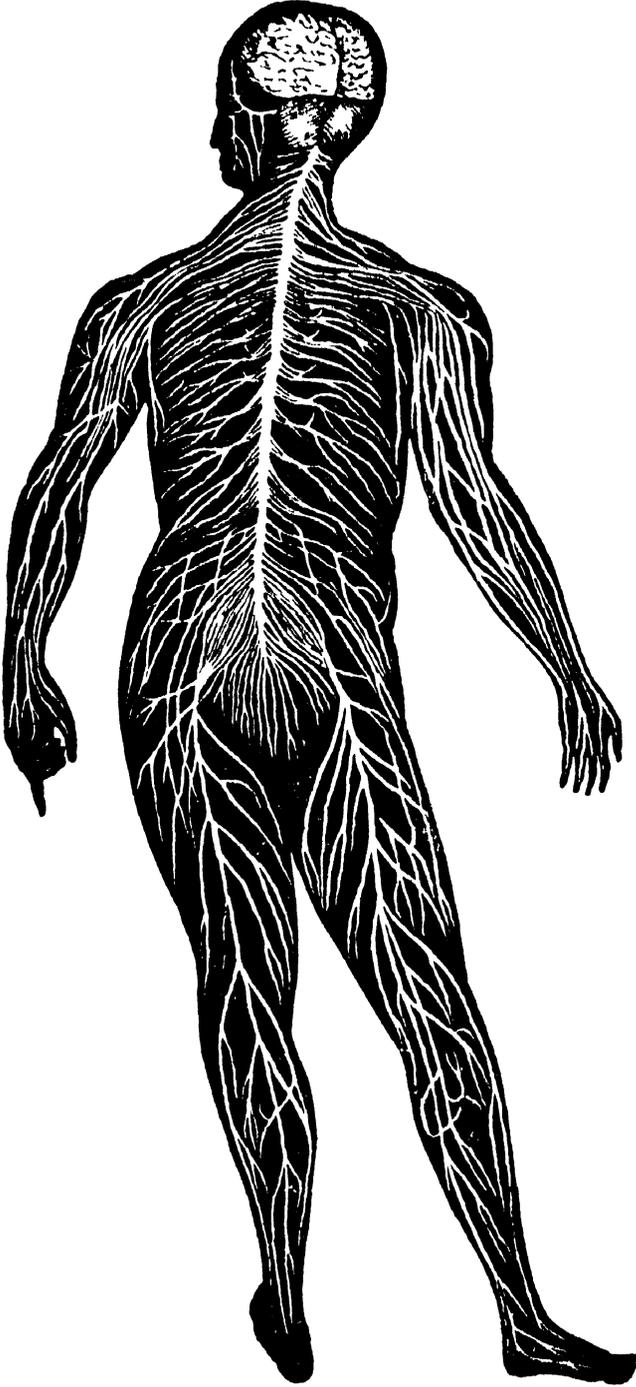
नाड़ी दिमाग़ से निकलकर रीढ़ से होती हुई अपने जाल से सारे शरीर को ढके है। उसी के प्रभाव से शरीर के सब काम होते हैं

संस्थान भी .ख़ून से ही पालित-पोषित होता है। जैसा .ख़ून है वैसा ही नाड़ी-संस्थान भी होगा। इसलिए यदि पेट और हाज़मे की ख़राबी से ख़ून विकार-युक्त हुआ तो नाड़ी-संस्थान भी विकार-युक्त और क्षीणशक्ति होगा। नाड़ियों की कमज़ोरी से पाचन-शक्ति और पेशाब-पाख़ाना द्वारा सफ़ाई की शक्ति कमज़ोर पड़ेगी, जिसका असर हाज़मे पर ख़राब पड़ेगा, और फिर ख़राब हाज़मे से .ख़ून ख़राब होगा और ख़राब .ख़ून से नाड़ियों की दुर्बलता और भी बढ़ेगी। इस तरह बे-ढंगा खाने-पीने से ख़राब .ख़ून, खराब हाज़मा और ख़राब नाड़ी-संस्थान का एक अटूट चक्कर सा जारी रहता है, जो शरीर को बिलकुल निकम्मा बना देता है। इसके साथ साथ और भी बहुत सी ख़राबियां चलती हैं, जैसे नशीली चीज़ों का इस्तेमाल, बिलकुल परिश्रम (मेहनत) न करना, बहुत परिश्रम करना, ब्रह्मचर्य का पालन न करना; और इन सबों का नतीजा यह होता है कि १०० साल तक अच्छी तरह चलने वाला शरीर ३०-४० साल में ही बुड्ढा और जर्जर हो जाता है। बहुत तो इसके पहले ही चल बसते हैं। फिर ऐसे कमज़ोर शरीर वालों की सन्तान (औलाद) भी कमज़ोर होती हैं और यह क़िस्सा पुश्त-दर-पुश्त जारी रहता है।

कमज़ोर माता-पिता के बच्चे तो कमज़ोर होते ही हैं, पर यह कठिनाई सिर्फ़ उन्हीं के साथ नहीं है। तनदुरुस्त और तगड़े लोगों की संतान भी कमज़ोर हो सकती है। अगर वह अच्छी तरह न रखी जाय। जन्म के बाद से बच्चे किस तरह रखे और खिलाये-पिलाये जाते हैं, इस पर बहुत कुछ निर्भर है।

ऊपर कहा गया है कि बच्चों को ज़रा ज़रा सी देर पर दूध पिलाया जाता है, जिससे उनका हाज़मा ख़राब हो जाता है। लेकिन यह ज़ुल्म सिर्फ़ बचपन में ही नहीं होता। बच्चे ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं यह ज़ुल्म बढ़ता जाता है। ज्योंही लड़का अनाज खाने लगता है पिताजी के साथ बैठ कर उसका खाना जरूरी हो जाता है। बहुत से परिवारों में पिताजी और माताजी एक साथ खाना नहीं खाते। इसलिए लड़का पहले पिताजी के साथ और फिर घंटे आध घंटे बाद माताजी के साथ बैठ कर खाता है। पहले का खाया हुआ भोजन पचने भी नहीं पाता कि ऊपर से कुछ और डाल दिया जाता है। इतना ही नहीं, मकान के पास घंटे दो घंटे बाद अगर खोंचेवाला कुछ बेंचने आया तो माता जी कुछ मिठाई-नमकीन खरीद कर बड़े प्यार के साथ लड़के को दे देती हैं। इसका कुछ विचार नहीं किया जाता कि हल्के भोजन के पचने

के लिए भी कम से कम चार-पांच घंटे का समय चाहिए। फिर लड़का जैसे-जैसे सयाना होता है यह ज़ुल्म वह अपने ऊपर आप ही करता है, और इस तरह ख़राब ख़ून, ख़राब नाड़ी-संस्थान और ख़राब स्वास्थ्य का चक्कर मरते दम तक चला जाता है। शरीर में सफ़ाई की ताक़त के कमज़ोर पड़ने का मुख्य कारण यही है। जिसका नाड़ी-बल (nerve tone) दुर्बल होगा उसकी विकारों के निकालने की शक्ति भी दुर्बल होगी। जैसा कि ऊपर बताया गया है, नाड़ी-बल का ह्रास और कई कारणों से होता है। ज़रूरत से ज़्यादा खा लेना भी इस ह्रास का एक कारण है, क्योंकि अधिक भोजन के पचाने में अधिक नाड़ी-बल लगता है। ब्रह्मचर्य-भंग से तो ह्रास होता ही है।

विकार निकालने के लिए प्रकृति का प्रबन्ध—रोग—

जैसा कि ऊपर बताया गया है, शरीर अपने को बराबर साफ़ रखना चाहता है,—यह प्राकृतिक नियम है। वह अपने अन्दर किसी तरह की गंदगी नहीं रहने दे सकता, क्योंकि अगर गंदगी रह जाय तो उसके कल-पुर्जों का काम ठीक-ठीक न चले। इसलिए प्रकृति का इन्तज़ाम है कि अगर शरीर अपने साधारण ढंग से (सांस, पसीना, पेशाब-पाख़ाना के साथ) अपने अन्दर का विकार नहीं निकाल सकता तो रोग के रूप में असाधारण प्रबंध के सहारे उसके विकार निकाल दिये जायँ। रोग शरीर की ओर से सफ़ाई की असाधारण चेष्टा है, जिससे वह कि फिर से स्वच्छ और अच्छी तरह काम करने वाला हो जाय।

असाधारण प्रबन्ध आवश्यक नहीं है—

सच पूछिए तो यदि शरीर अच्छी तरह रखा जाय, उसको उचित खान-पान दिया जाय, उससे उचित मेहनत ली जाय और उचित आराम दिया जाय और साथ ही साथ उसे उचित मात्रा में धूप और हवा मिलती रहे तो उसे अपनी सफ़ाई के लिए रोग के रूप में असाधारण प्रबन्ध की ज़रूरत न पड़े। हमारी पहली चेष्टा होनी चाहिए कि रोग होवे नहीं। अभी हालत यह है कि रोग के सच्चे कारण को न जानने के कारण लोग पहले से डरते रहते हैं कि कहीं कोई रोग न हो जाय और जब रोग हो जाता है तो घबराते और उससे लड़ाई ठानते हैं। पर जब हम कारण और कार्य का, रोग के कारण और रोग का, सम्बन्ध ठीक ठीक समझ लेंगे तो हम अपने शरीर को इस तरह प्रकृति के नियमों

के अनुसार रखेंगे कि रोग-रूपी असाधारण प्रबंध की आवश्यकता ही न होगी, और यदि रोग हो जायगा तो, बिना डरे, घबराए हुए, हम ऐसी विधियों को काम में लायेंगे कि रोग द्वारा शरीर के विकारों की पूरी पूरी सफ़ाई हो जायगी, और रोग के बाद शरीर फिर से स्वच्छ और निर्मल हो जायगा। इसलिए हमारा पहला लक्ष्य इस तरह जीवन व्यतीत करना होना चाहिए कि हम बीमार ही न हों।

रोग बढ़ता क्यों है—

अब यह देखना चाहिए कि अच्छे अच्छे डाक्टर या वैद्य-हकीमों का इलाज रहते हुए भी बहुत से रोगियों के रोग क्यों बढ़ जाते हैं। होना तो यह चाहिए कि चिकित्सक (इलाज करने वाला) के लगते ही रोग कम होने लगे, पर बहुत बार ऐसा देखा गया है कि रोग पेचीदा और उससे भी ज्यादा पेचीदा होता जाता है। डाक्टर लोग मिल मिल कर रोग के नाम धरते हैं, यह पता लगाते हैं कि रोग कैसे हुआ, कई तरह के जर्म्स (कीड़ों) को दोषी ठहराते हैं, फिर रोग दूर करने के लिए अनेक प्रकार की दवाएँ झोंकते हैं, इन्जेक्शन (सुई) देते हैं, सब कुछ करते हैं, फिर भी रोगी की अवस्था ख़राब होती जाती है, और अन्त में यही कहना होता है कि सब कुछ तो किया पर क़िस्मत ही अच्छी न थी। ऐसा क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर कठिन नहीं है। इस बात की जड़ में भी वही कारण और कार्य के सच्चे संबंध की ना-समझी है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, रोग प्रकृति की ओर से शरीर के विकारों को दूर करने के लिए एक असाधारण प्रबंध है। ऐसी अवस्था में हमारा कर्त्तव्य है प्रकृति का साथ देना, और सफ़ाई के काम में किसी तरह की अड़चन न डालना। यदि रोग में हम कुछ भी खा लेते हैं, चाहे वह साबूदाना, बार्ली या आरारोट की तरह हल्का पदार्थ ही क्यों न हो, अगर हम दूध भी पी लेते हैं, तो शरीर के अन्दर पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है, जिसमें नाड़ी-बल लगता है और जिससे सफ़ाई के काम में बाधा पड़ती है। बुखार की हालत में दूध पीना ग़लत है। दूध और चीज़ों से हल्का ज़रूर है पर है वह पूरा खाना। उससे भी सफ़ाई के काम में रुकावट पड़ती है। इसके अलावा यदि हम दवाओं का सेवन करते हैं, ख़ास कर ऐसी दवाएँ जो विषैली हैं, तो रोग अन्दर ही अन्दर दब जाता है और सफ़ाई का काम पूरा नहीं हो पाता। विषली दवाओं* से छोटे मोटे लक्षण तो दब

*कहने की ज़रूरत नहीं कि प्रायः सभी विदेशी दवाएँ विषैली हैं। वैद्य

जाते हैं पर दबने का अर्थ यह नहीं है कि रोग का शमन हो गया। थोड़े ही दिनों के बाद वे लक्षण या तो पहले की तरह या दूसरे रूप धारण कर फिर प्रकट होते हैं, क्योंकि प्रकृति सफ़ाई चाहती है। यही कारण है कि आज पतले दस्तों का आना बन्द किया तो कल ज़ुकाम (सर्दी) हो जाता है, कल ज़ुकाम दबाया तो परसों बुखार हो आता है, परसों बुखार को रोका तो नरसों खुजली और खारिश हो जाती है। इस तरह तकलीफ़ें जारी रहती हैं और एक के बाद दूसरी बीमारी का आना लोग स्वाभाविक समझने लगते हैं। बीमारी का तांता तो तब टूटे जब कि एक बीमारी के आने पर उसका सच्चा उपचार किया जाय और उसके बाद ठीक आहार-विहार से शरीर में गन्दगी आने न दी जाय। लेकिन हम तो रोग होते ही उसके असली कारण को दूर न कर सिर्फ़ ऊपरी लक्षणों के दबाने में लग जाते हैं। ऐसी हालत में भी कभी कभी प्रकृति सफ़ाई पर तुल जाती है और लाखों दवाओं के झोंकने पर भी लक्षण उभड़े पड़ते हैं। चिकित्सक उन लक्षणों को जितना दबाना चाहता है उतना ही वे बढ़ते हैं और बहुत बार मरीज़ की जान पर आ बीतती है। रोगों के बढ़ने का सच्चा कारण यही है--प्रकृति के सफ़ाई के काम में बे-ज़रूरी पथ्य और ज़हरीली दवाओं से अड़चन डालना।

रोगों के कारण--कीड़े--

इस सम्बन्ध मे एक प्रश्न यह उठता है कि यदि रोग शरीर के अन्दर के विकारों के ही कारण पैदा होते हैं तो क्या रोगों की उत्पत्ति में कीड़ों का, जिन्हें अंगरेजी में 'जर्म्स' (germs) कहते हैं, कुछ हाथ नहीं है? बीसवीं सदी में इस सभ्य संसार का पढ़ा-लिखा डाक्टर-समुदाय गला फाड़ फाड़ कर जर्म्स की महिमा और रोगोत्पादक शक्ति (रोग पैदा करने वाली ताक़त) का बखान करता है, प्रायः सभी रोगों की जड़ में किसी न किसी कीड़े की ही करतूत बताता है, फिर भी इस किताब में सारा दोष विकारों पर ही क्यों छोड़ा जाता है? क्या वे पढ़े-लिखे डाक्टर भ्रम में पड़े हुए हैं या झूठ बोलते हैं? झूठ तो नहीं बोलते पर भ्रम में जरूर हैं। विशेष रोगों से संबंध रखने वाले जर्म्स-विशेष हो सकते हैं, पर वे वहीं जमते और जा बसते हैं, जहां उनके टिकने

और हकीम की बहुत सी दवाएँ जड़ी-बूटी की होती हैं, पर भस्म और कुश्तों के बहुत से पदार्थ हानिकारक हो सकते हैं। सच पूछिए तो शरीर को इनकी आवश्यकता नहीं। इसके बारे में आगे और भी बताया जायगा।

लायक गन्दे विकार मौजूद हैं। यदि शरीर के अन्दर विकार नहीं है तो किसी प्रकार का बाहर से आया हुआ कीड़ा वहां टिक नहीं सकता। यदि शरीर के विकारों की सफ़ाई कर दी जाय तो पहले से बसे हुए कीड़े खुद-ब-खुद (स्वयं) गायब हो जाते हैं। बहुत से आचार्यों का यह मत है कि ये कीड़े विकार से ही पैदा होकर फिर मेहतर का काम करते हैं। विकारों को खा-पीकर खुद ही नष्ट हो जाते हैं, पर वे होते वहीं हैं जहां विकार हैं। देखिए न, मकानों में जहां पर गंदगी होती है वहां झुंड की झुंड मक्खियां आ बैठती हैं और गन्दगी को चाट-खाकर उड़ जाती हैं। जहां गन्दगी नहीं रहती वहां मक्खियां आती ही नहीं। जिस शरीर में विकार है वह तो कीड़ों का ख़ास अड्डा बनेगा ही, पर जिसका शरीर अन्दर-बाहर से साफ़ है, उसके ख़ून में वह शक्ति है कि न तो उसके अन्दर कीड़े पैदा होंगे और न बाहर से आने वाले कीड़े उसमें जी सकेंगे।

अगर जर्म्स का ही सारा खेल होता तो सभी लोग बराबर बीमार होते और थोड़े ही दिनों में जर्म्स के प्रभाव से सारी मनुष्य-जाति नष्ट हो जाती। लेकिन ऐसा न हुआ और न होता है। इससे यह साफ़ साफ़ पता चलता है कि अगर जर्म्स से ख़राबियां होती भी हों तो भी शरीर के अन्दर कुछ ऐसी शक्ति है जिसके बने रहने से बहुत लोग बीमार नहीं होते। इसी शक्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए और उसे उचित आहार-विहार से बढ़ाना चाहिए।

इस युग में जो भी इलाज जारी है उसमें बहुत बड़ा स्थान विषैली दवाओं और इन्जेक्शन (सुई लगाना) की मदद से बीमारियों के जर्म्स को, मारने और दूर करने का है। इन ढंगों से जर्म्स मरते तो जरूर हैं पर शरीर के अन्दर विकार बने रहने के कारण वहां फिर से हो जाते हैं। यह वैसा ही है जैसा कि कमरे के अन्दर की गन्दगी के कारण वहां रहने वाले चूहों और छछून्दरों को बार बार मारना। अगर कमरे में गन्दगी है तो चूहे और छछून्दर फिर से आ जाते हैं, पर अगर कमरा साफ़ है तो वे वहां आते ही नहीं। आज-कल हमारे विद्वान डाक्टरों की जर्म्स से लड़ाई, मकान को बिना साफ़ किए हुए, बार-बार छछून्दरों को मारते रहने की तरह है। असल काम है शरीर-रूपी मकान को साफ़ रखना, जिससे छछून्दर-रूपी जर्म्स वहां आवें ही नहीं, न कि शरीर-रूपी मकान की अन्दरूनी गंदगी को भूल कर छछून्दर-रूपी जर्म्स को मारने में ही अपनी योग्यता और समय को लगाना। इसलिए जर्म्स के भ्रम

में न पड़ कर शरीर को विकार-रहित रखना हमारा परम कर्त्तव्य है, और यह तभी हो सकता है जब कि हम प्रकृति के नियमों के अनुसार खायें और रहें। भोजन से इस विषय का बहुत बड़ा संबंध है, क्योंकि भोजन से ही ख़ून बनता है और ख़ून पर ही शरीर की तनदुरुस्ती निर्भर है, पर इस विषय पर आगे रोशनी डाली जायगी।

अक्सर ऐसा देखा गया है कि उन जगहों में, जहां कोई ऐसा रोग फैल गया है, जिससे सभी बीमार हों, यदि एक या दो अन्दर और बाहर से साफ़-सुथरे शरीर वाले लोग भी रहते हैं तो वे बिना किसी बचाव के ही बीमार नहीं होते। एक बार मेरे एक मित्र इंगलैण्ड के एक अस्पताल में काम कर रहे थे। उन दिनों वहां इनफ्लुएंजा (एक प्रकार का बुखार) का प्रकोप था। अस्पताल के सभी मरीज़ इस बुखार से पीड़ित हुए। धीरे धीरे कम्पाउंडर और डाक्टर भी बीमार होने लगे और कुछ ही दिनों में सब के सब बीमार हो गये। केवल मेरे मित्र ऐसे थे, जो बीमार न हुए। कारण इसका यह था कि उचित खान-पान, कसरत, आराम इत्यादि से उन्होंने अपने शरीर को बिलकुल साफ़-सुथरा रखा था।

यह भी पूछा जा सकता है कि महामारी के दिनों में गांव के गांव और शहर के शहर हैज़ा या प्लेग से एक साथ ही कैसे आक्रान्त हो जाते हैं। उत्तर यही है कि ९५ फी सदी से भी अधिक लोग अपने शरीरों को ठीक हालत में नहीं रखते। आस-पास के रहने वाले बहुत से लोग एक ही तरह की कुरीतियों के कारण एक तरह के विकारों को अपने शरीर के अन्दर छिपाये रखते हैं, जिसका यह नतीजा होता है कि सब के सब एक तरह की महामारी के शिकार बनते हैं।

इन सब बातों को देखते हुए फिर यही दुहराना पड़ता है कि रोगों का असली कारण शरीर के अन्दर अपनी करनी से आया हुआ विकार है, और यह भी कि विकार के बाहर निकल जाने में ही भलाई है।

हमारा कर्त्तव्य—

जब हमने यह जान लिया कि रोग का सच्चा कारण शरीर के अन्दर का विकार है, जिसे प्रकृति रोग के रूप में बाहर निकालना चाहती है, तो रोगों के दूर करने में हमारा एक मात्र कर्त्तव्य है प्रकृति के साथ मिल-जुल कर काम करना, न कि उसके मार्ग में रोड़े अटकाना। प्रकृति से सहयोग में पहला

काम भोजन बन्द कर देना है, जिससे शरीर के अन्दर पाचन की क्रिया बन्द हो जाय और सिर्फ एक ही क्रिया--सफ़ाई की क्रिया--जारी रहे। इसके साथ साथ उन तत्वों का भी समझदारी के साथ प्रयोग करना चाहिए, जिनसे हमारा शरीर बना है। 'क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।' इस शरीर के बनने में मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश-तत्व लगे हैं। इन्हीं के प्रयोग से हम सारे रोगों को भगा सकते हैं। इस विषय की ओर बातें अगले अध्यायों में बताई जायँगी।

रोगों के प्रकार

नामों की भरमार--

संसार में इतने प्रकार के रोग देखने को मिलते हैं कि बुद्धि चकरा जाती है और ऐसा मालूम होता है कि ये सब रोग एक दूसरे से अलग हैं। चिकित्सा करने वाले इन रोगों की चिकित्सा भी अलग अलग दवाओं और ढंगों से करते हैं। ऊपरी दृष्टि से तो रोगों के कई प्रकार हैं ही--जैसे, जुकाम (सर्दी), खांसी, दमा, बुखार, अपच, सूजन, फोड़ा-फुंसी निकलना, गठिया, बवासीर इत्यादि--लेकिन एक रोग के अन्दर भी लक्षण-भेद (अलग अलग हालतों) से अनेक प्रकार के रोग बताये जाते हैं। खांसी के दर्जे में सूखी खांसी, गीली खांसी, रात को उभरने वाली खांसी और सुबह को तकलीफ़ देने वाली खांसी सम्मिलित हैं। बुखार के तो अनेकों बच्चे हैं--मामूली बुखार, जाड़ा-बुखार, गर्दन-तोड़ बुखार, प्लेग का बुखार इत्यादि। वैसे ही अपच (बदहज़मी) का परिवार बहुत बड़ा है--पेट का फूला रहना, दस्त न आना, बहुत दस्त आना, पतले दस्त आना, पेचिश होना, संग्रहणी इत्यादि। इन बीमारियों के बड़े बड़े नाम भी रखे गए हैं। हमारे देश में कुछ देशी नाम और कुछ अंगरेज़ी नाम प्रचलित हैं। देशी नामों में फ़ारसी और संस्कृत के शब्द भी सुनने को मिलते हैं। इन दिनों अंगरेजी नामों का इस तरह प्रचार हो गया है कि जिससे सुनिए चार-छः बीमारियों के अंगरेजी नाम बता देगा। मैलेरिया (जाड़ा-बुखार), थाइसिस (यक्ष्मा), प्लेग, टाइफायड (बहुत दिनों तक चलने वाला मियादी बुखार, डायरिया (पतले दस्तों का आना) इत्यादि कुछ ऐसे नाम हैं, जो दिहाती आदमियों के मुंह पर भी बने रहते हैं। सचमुच अंगरेजी में रोगों की बड़ी लम्बी-चौड़ी लिस्ट (सूची) बन गई है और हर रोज यह लिस्ट लम्बी हो रही है, पर इन नामों में से अधिकतर नामों के देखने से पता चलता है कि वे किसी अंग-विशेष की सूजन, जलन या उसके विकारमय होने को बताते हैं। सूजन या जलन या किसी और तरह की तकलीफ़ सब में एक सी रहती है, लेकिन अलग अलग अंग में रहने के कारण उन तकलीफ़ों के नाम अलग अलग रखे गये हैं। इन अलग नामों के होते हुए भी ध्यान देने की बात यह है कि सभी रोगों में असली तकलीफ़ एक ही है।

अंगरेजी के बहुत से नामों के अन्त में 'आइटीस' (itis) लगा होता है, जैसे ब्रांकाइटीस (bronchitis), टान्सिलाइटीस, (tonsilitis), कोलाइटीस (colitis) इत्यादि। 'आइटीस' (itis) का अर्थ है 'दाह या जलन या ज्वर की अवस्था'। जिस अंग में दाह या जलन या सूजन होती है उस अंग के नाम के साथ 'आइटीस' (itis) लगा देने से उस रोग-विशेष का नाम तैयार हो जाता है। ब्रांकाइटीस (bronchitis) का अर्थ है वायु-नाली की सूजन और ज्वरावस्था। लेकिन अंगरेजी का नाम सुनकर जरूरत से ज्यादा डर मालूम होता है। इसी तरह टॉन्सिलाइटीस (tonsilitis) का अर्थ है गले की कौड़ियों की सूजन और कोलाइटीस (colitis) का बड़ी आंतों के अन्दर की दाह और पीड़ा। संस्कृत और उर्दू-फ़ारसी भाषाओं में भी जो रोगों के नाम प्रचलित हैं उनसे भी प्रायः अंग विशेष की पीड़ाएँ या उन पीड़ाओं के लक्षण मालूम होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही प्रकार की तकलीफ़ होते हुए भी अलग अलग अंगों के कारण रोगों के नाम अलग अलग रखे गए हैं, जिससे रोगों के प्रकार के संबंध में बड़ा भारी भ्रम हो जाता है, और अलग अलग रोगों के लिए अलग अलग इलाज की जरूरत मालूम पड़ती है। ऐसा मालूम होता है कि हर रोग का खास इलाज है। पर सच पूछिए तो रोग केवल एक है--शरीर के अन्दर के विकार के कारण कभी इस अंग में और कभी उस अंग में और कभी कभी एक ही साथ कई अंगों में उठने वाली पीड़ा।

तीन मुख्य प्रकार--

फिर भी एक ही रोग रहते हुए रोगों के तीन मुख्य प्रकार कहे जा सकते हैं। वे इस तरह हैं:--

तीव्र (नये) रोग--ऐसे रोग, जो तेजी के साथ उठते हैं, जिनमें बहुत जलन या पीड़ा होती है और जो दो-चार दिन या दो-चार हफ़्ते या कुछ ऐसे ही निश्चित समय तक रह कर चले जाते हैं और शरीर को भला-चंगा और निरोग छोड़ जाते हैं। ऐसे रोग बच्चों, जवान, हृष्ट-पुष्ट (तगड़े) और काफ़ी मात्रा में जीवन-शक्ति रखने वालों को ही होते हैं। जैसे-जैसे जीवन-शक्ति क्षीण पड़ती जाती है, तेज रोगों के बदले कोई जीवन के साथ-साथ चलने वाला रोग, जैसे बवासीर, दमा, गठिया इत्यादि आ घेरता है। तेज रोगों में लेटे रहना या कम से कम आराम करना रोगियों (मरीजों) के लिए जरूरी हो

जाता है। इसी दर्जे में सब तरह के बुखार, पतले दस्तों का आना, पेचिश (आंव गिरना), जुकाम, नई खांसी, चेचक, खुजली (खारिश), हैजा, प्लेग इत्यादि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

ऐसे रोगों को हम 'तीव्र' या 'नया' रोग कह सकते हैं। अंगरेजी में इन्हें 'एक्यूट' (acute) कहते हैं। ये शरीर की वे असाधारण चेष्टाएँ (गैर-मामूली कोशिशें) हैं, जिनसे अपने अन्दर के विकारों को दूर कर शरीर अपने को फिर से भला-चंगा बना लेता है। अगर इन तीव्र रोगों की राह में दवा और भोजन की अड़चनें न डाली जायें तो ये जल्दी ही दूर हो जाते हैं और अपने साथ शरीर के विकारों को ले जाते हैं। छेड़-छाड़ करने से या तो ये भयंकर रूप धारण करते हैं या देर से जाते हैं। जाने पर भी शरीर हल्का और ताजा नहीं मालूम होता। विषैली दवाओं के सेवन करने वाले ज्वर के रोगी बाहरी तौर से ज्वर के चले जाने पर भी अन्दर से सच्ची तनदुरुस्ती का आनन्द, नहीं उठाते। बुखार नहीं रहने पर भी बहुतों को भूख नहीं लगती बहुतों को कब्ज (कोष्ठवद्ध) बना रहता है, कुछ के कंठों में खुश्की रहती है और ऐसी ही बहुत सी गड़बड़ी मालूम होती है। होना यह चाहिए कि ज्वर जैसे तेज रोग के चले जाने के बाद तबीयत हरी-भरी हो जाय और शरीर के अन्दर के मामूली काम (भूख लगना, पाखाना साफ़ होना इत्यादि) अच्छी तरह होने लगें। कुछ दिनों तक कमजोरी तो जरूर मालूम होगी, पर यह कमजोरी जल्द दूर होगी और बीमारी के जाते ही शरीर की हालत नई हो जायगी। लेकिन अनुभव बताता है कि औषधि सेवन करने वाले और बीमारी की ही हालत में पथ्य (गिजा) खाने (चाहे वह पथ्य हलका ही क्यों न हो) वाले रोगियों की हालत ऊपर से अच्छी दीखती हुई भी अन्दर से अच्छी नहीं रहती। कारण इसका यही है कि शरीर के अन्दर की सफाई अच्छी तरह न हो पाई। दवा इत्यादि से रोग अन्दर ही दबा दिया गया और शरीर के अन्दर का विकार अन्दर ही बना रहा। पर क्या इस विकार को शरीर अपने अन्दर रख लेगा? नहीं, वह दूसरी, तीसरी और चौथी कोशिश करेगा और किसी न किसी रोग के बहाने विकार को निकालना चाहेगा। यदि शरीर की कोशिशें दवा इत्यादि से बार-बार असफल कर दी जायँगी तो भी वह कोशिश करता रहेगा पर उससे कोई खास लाभ (फायदा) न होगा, और तब कोई जीर्ण (chronic) रोग खड़ा हो जायगा।

याद रहे, तीव्र रोग उन्हीं को होते हैं, जिनकी जीवन-शक्ति अच्छी है या जिनके शरीर अन्दर से इतने सबल और योग्य (लायक) हैं कि वे अन्दर से विकारों को तेज़ लक्षण के सहारे निकाल देते हैं।

कभी-कभी घातक रोगों में भी तीव्रावस्था चलती है, जैसे कि यक्ष्मा में, पर अनुभव से वह जान लिया जाता है कि यह रोग तीव्र है या घातक रोग की तीव्रावस्था है। घातक रोग का वर्णन आगे आया है।

(२) जीर्ण (पुराने) रोग--जो रोग बहुत दिनों तक बने रहते हैं, जिनमें किसी प्रकार की हल्की हल्की लेकिन बराबर ही बनी रहने वाली तकलीफ़ जारी रहती है, जिनमें आदमी चलते-फिरते और साधारण तौर से काम करते हुए भी दुखी और लाचार से बने रहते हैं, जिनके कारण जीवन भार सा मालूम होता है, उन रोगों को 'जीर्ण' या 'पुराना' रोग कहते हैं। पुराना दमा, गठिया में शरीर के जोड़ों का सख्त पड़ जाना, बवासीर, दमा, हल्के हल्के बुखार का बना रहना, किसी न किसी ज़ख्म का बना रहना, संग्रहणी, बहुमूत्र रोग इत्यादि जीर्ण रोगों की श्रेणी में सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए दमा या बवासीर का रोगी चलता-फिरता और सभी साधारण काम करता है, पर उसके जीने से न जीना ही अच्छा है। ऐसे रोग अक्सर अधेड़ अवस्था में (लगभग चालीस साल की उम्र होने पर, कभी कभी इससे पहले ही) और जीवन-शक्ति के कमज़ोर पड़ जाने के कारण होते हैं, लेकिन इनका मुख्य कारण एक है--तीव्र रोगों के साथ अनुचित छेड़-छाड़ कर विकारों का शरीर के अन्दर ही बार-बार दबाया जाना। जब अनुचित दवा और अनावश्यक पथ्य के कारण तीव्र रोग अपना काम अच्छी तरह नहीं कर पाता और शरीर की कोशिश विफल हो जाती है तो विकार अन्दर ही बना रहता है। इससे शरीर की जीवन-शक्ति भी क्षीण पड़ती जाती है। फिर भी उस विकार को निकालने की कोशिश शरीर करता है, पर क्षीण शक्ति के कारण वह सफल नहीं हो पाता। नतीजा यह होता है कि किसी न किसी अंग से संबंध रखने वाला कोई जीर्ण रोग खड़ा हो जाता है। बहुत बार तो कई अंग से संबंध रखने वाले कई जीर्ण रोग एक ही साथ खड़े हो जाते हैं। इसलिए याद रहे कि जिस तरह तीव्र रोग अपने अन्दर के विकार को बाहर निकालने के लिए शरीर की सफल चेष्टाएं हैं, उसी तरह जीर्ण रोग विकार को दूर करने के लिए शरीर की असफल चेष्टाएँ हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये रोग लगभग चालीस वर्ष की अवस्था में, जब कि शरीर और दिमाग़ कमज़ोर पड़ते जाते हैं, होते हैं, पर ऐसे रोगों का कम उम्र

में ही हो जाना असंभव नहीं है। देखा गया है कि १८-२० वर्ष वाले नौजवानों (नवयुवकों) को भी दमा हो जाता है और २०-२५ वर्ष वाले आदमियों को या १४-१५ वर्ष वाले लड़कों को बवासीर के कारण दुख भोगना पड़ता है। इसका कारण कुछ तो रोगी और कमज़ोर माता-पिताओं से आया हुआ रोगी के शरीर में रोग और कमज़ोरी, कुछ रोगी की जीवन-चर्या (रोज के रहने का ढंग) की गड़बड़ी और कुछ तीव्र रोग में विकारों को शरीर के अन्दर ही बारबार दबा देने वाली दवाओं की करतूत है। कुछ भी हो, एक बात तो पक्की है। वह यह है कि जिनकी जीवन-शक्ति काफ़ी कमजोर होती है उन्हीं के शरीर में जीर्ण रोग पाये जाते हैं, क्योंकि यदि जीवन शक्ति अच्छी होती तो वह विकारों को तीव्र रोगों के रूप में बाहर फेंक देती।

कोई भी जीर्ण रोग, जिसमें शरीर का कोई जरूरी कल-पुर्ज़ा--दिल, फेफड़ा, जिगर (यकृत), प्लीहा--बिलकुल खराब नहीं हुआ है, अचूक चिकित्सा-विधि से अच्छा किया जा सकता है। उचित उपचारों से तीव्रावस्था में आकर वह दूर होगा।

(३) घातक रोग--जो रोग किसी भी उपचार से अच्छे नहीं होते, जैसे पुराना (शुरू-शुरू का नहीं) यक्ष्मा (थाइसिस, क्षयी रोग), पुराना बिगड़ा हुआ कोढ़ इत्यादि, उन्हें 'घातक' या 'विनाशकारी' रोग कहते हैं। इन रोगों के रोगियों की जीवन-शक्ति इतनी कमज़ोर पड़ जाती है कि वह 'नहीं' के बराबर रहती है, और उस पर किसी तरह के इलाज का कोई असर (प्रभाव) नहीं पड़ सकता। ऐसे रोगियों के शरीर को मौत से ही छुटकारा मिलता है।

इस तरह रोगों के तीन मुख्य और सच्चे विभाग ऊपर बताये गये। अब इनके संबंध में कुछ और बातें, जो जानने योग्य हैं, नीचे दी जाती हैं :--

(१) 'तीव्रता' रोगों की पहली अवस्था, 'जीर्णता' दूसरी अवस्था और 'घातक' तीसरी अवस्था है।

(२) इसलिए रोगों के तीन प्रकार होते हुए भी एक ही रोग तीव्र से जीर्ण और जीर्ण से घातक हो सकता है। जैसे ज्वर पहली अवस्था में तीव्र है, पर छेड़-छाड़ किये जाने के कारण वह जीर्ण हो सकता है और उसके बहुत दिनों तक बने रहने के कारण और कई कारणों के मिल जाने से वही यक्ष्मा के साथ रहने वाले ज्वर के रूप में घातक बन जा सकता है। फिर से यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यदि ज्वर या किसी और रोग के साथ उसकी पहली अवस्था में इलाज

के ग़लत तरीक़ों से छेड़खानी न की जाय तो वह जीर्ण या घातक नहीं बनता बल्कि शरीर के अन्दर की सफ़ाई करके खुद-ब-खुद (स्वयं ही) दूर हो जाता है।

(३) इसी बात को ध्यान में रखते हुए यदि जीर्ण रोगों की हालत में शरीर को सबल बना दिया जाय, उसकी जीवन-शक्ति को उचित भोजन और रहन-सहन से प्रबल कर दिया जाय, तो शरीर इस योग्य हो जाता है कि वह जीर्ण लक्षणों को तीव्र रोगों के रूप में लाकर अपने अन्दर के विकारों को बाहर निकाल कर और फिर से भला-चंगा हो जाय।

(४) इसी तरह जो जीर्ण रोग जीर्णता की अवस्था से बढ़ कर अभी हाल में ही घातक बने हैं वे उचित उपायों से घातक की अवस्था से जीर्णता की अवस्था में लौटाये जा सकते हैं, और फिर जीर्णता तीव्रता में बदली जाकर वे रोग बिल्कुल दूर किये जा सकते हैं।

(५) कोई कोई रोग एक ही साथ जीर्ण और तीव्र दोनों रहते हैं। जैसे, किसी किसी के महीनों और वर्षों खांसी चलती है। पुरानी हो जाने पर खांसी दबी सी रहती है, लेकिन बीच बीच में उभड़ कर तीव्र रूप धारण कर लेती है ऐसे रोगों को भी पूरी तीव्रावस्था में लाकर दूर किया जा सकता है।

हमें क्या सीखना चाहिए—

मनुष्य को (१) पहले तो यह सीखना चाहिए कि वह इस तरह रहे कि उसके शरीर के अन्दर विकार जमा ही न हो, और इसके बाद यह कि (२) विकार अगर जमा हो जाय तो किस तरह उसे बाहर निकालना चाहिए। (३) यह भी सीखना चाहिए कि जब प्रकृति के प्रबन्ध के अनुसार शरीर की अन्दरूनी सफ़ाई के लिए तीव्र रोग हों तो क्या उपचार किया जाय, जिससे सफ़ाई का काम न रुके। (४) साथ ही साथ यह भी जानने की जरूरत है कि अगर सफ़ाई का काम बराबर रोके जाने के कारण और शरीर की जीवन-शक्ति कमज़ोर हो जाने के कारण जीर्ण रोग पैदा हो गये हैं तो किस तरह वह जीवन-शक्ति फिर से जगाई और पुष्ट की जा सकती है और किस तरह रोग दूर किया जा सकता है। पर ये विषय अगले अध्याय में दिये गये हैं।

विन्सेंज़ प्रीसनीज़

साइलीसिया निवासी किसान । आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के जन्म-दाता।

चिकित्सा-सिद्धान्त

एक बहुत जरूरी बात--

चिकित्सा-सिद्धान्त के बारे में एक जरूरी बात यह है कि अगर रोग से न लड़कर स्वास्थ्य बनाने पर ही जोर दिया जाय तो काम आसान हो जाता है। स्वास्थ्य के अभाव को ही 'रोग' कहते हैं, इसलिए अपना दृष्टिकोण और उपचार इत्यादि रचनात्मक हों, स्वास्थ्य बनाने की मनोवृत्ति हो न कि रोग से लड़ने की। यह बात आगे के एक अध्याय में ज़्यादा साफ़ हो जायगी। यहां इतना ही कहना जरूरी है कि अगर 'रोग' के संबंध में ज़्यादा सोच-विचार किया जायगा, जैसा कि रोग से लड़ाई ठानने के मनोभाव से होता है, तो रोग पुष्ट होगा पर अगर स्वास्थ्य बनाने के दृष्टिकोण से उपचारों का प्रयोग किया जायगा तो स्वास्थ्य का भाव पुष्ट होगा और स्वास्थ्य जल्दी बन सकेगा। नियम यह है कि जो बार-बार सोचा जायगा वह होकर ही रहेगा। इसलिए 'स्वास्थ्य' सोचना चाहिए न कि 'रोग'।

मनुष्य 'शरीर' नहीं है। वह 'विचार' और 'इच्छाओं' से घिरा हुआ 'ईश्वर का अंश', 'जीवात्मा' है। 'शरीर' और उसकी क्रियाएं विचार और इच्छाओं का बाहरी रूप है। इसलिए चिकित्सा-क्रिया में 'जीवात्मा' भाव पर विशेष ध्यान देते हुए 'विचार' और 'इच्छाओं' को ठीक करने की कोशिश करनी चाहिए। तभी सफल चिकित्सा हो सकती है।

अब शरीर की एक विचित्रता सुनिए।

शरीर की विचित्रता--

रोगों की सफल चिकित्सा करने वाले को शरीर की एक विचित्रता अच्छी तरह समझनी और जाननी चाहिए। जो इस विचित्रता को नहीं जानता और उसमें पूरा पूरा विश्वास नहीं रखता वह शरीर के संबंध में सब बातों को जानता हुआ भी कुछ नहीं जानता और न उसे चिकित्सा करने का अधिकार है। वह विचित्रता है—जीवधारियों के शरीर इस तरह बने हुए हैं और उनके अन्दर ऐसे ऐसे कल-पुर्जे हैं कि वे गड़बड़ी को दूर कर अपने अन्दर की सफ़ाई आप ही कर लेते हैं, या बिना किसी बाहरी

सहारे के शरीर अपने आपको ठीक कर लेने में समर्थ है। इस विचित्रता को समझना प्रकृति की ज़ोरदार शक्ति को मानना और उसमें विश्वास रखना है। जो प्रकृति की शक्ति में--शरीर की आप ही आप अपने को सम्हाल लेने की शक्ति में--विश्वास रखता है वही सच्चा और सफल चिकित्सक हो सकता है।

शरीर के संबंध में यह एक बड़ी बात है, जिससे यह निष्कर्ष (नतीजा) निकलता है कि शरीर को तनदुरुस्ती की हालत में लाने के लिए औषधि जैसी बाहरी वस्तु की जरूरत नहीं है। पूछा जा सकता है कि इसका पता कैसे चला। इसका पता ऐसे चलता है कि जब गिरने-पड़ने से किसी अंग की हड्डी टूट जाती है तो डाक्टर सिर्फ़ ऊपर से पट्टी इत्यादि बांध कर छोड़ देता है। हड्डी के टूटे टुकड़ों को जोड़ने के लिए खाल और मांस की तह को काटकर हड्डी पर कोई दवा नहीं लगाता। यह शरीर की प्राकृतिक विचित्रता है कि हड्डी स्वयं जुट जाती है और फिर वह अंग ज्यों का त्यों हो जाता है। इसी तरह लड़कों के या बड़े लोगों के भी छोटे-मोटे जख्म खुद-बखुद भर जाते हैं। बड़े जख्मों में दवाओं का प्रयोग जरूर किया जाता है, लेकिन इसका भी रिवाज अब कम हो रहा है, और यदि उन जख्मों को सिर्फ़ अच्छे पानी से धोकर साफ़ रखा जाय तो वे बिना औषधि के ही जल्द अच्छे हो जायँ। फिर जानवरों को भी देखकर पता चलता है कि शरीर को दवा की जरूरत नहीं है। पालतू जानवर तो आदमियों के संग-साथ से कुछ बिगड़ गये हैं, लेकिन अक्सर यह देखने में आता है कि अगर घर में कुत्ता बीमार होता है तो वह आप ही आप अच्छा हो जाता है। जब तक वह बीमार रहता है भोजन देने पर भी नहीं खाता। जंगल के जानवर न तो बीमार होते हैं और न उनको दवा ही मिल सकती है। इसलिए, ऐसी बातों से साफ़ जाहिर है कि प्रकृति की ओर से शरीर के अन्दर वह गुण मौजूद है, जिससे वह अपने अन्दर की गड़बड़ी को आप ही ठीक कर लेता है। शरीर की इस विचित्रता पर जितना भी जोर दिया जाय ज़्यादा न होगा, और सफल चिकित्सक को शरीर की इस विशेषता का पूरा पूरा ख़याल रखना होगा। जैसे पहले बताया गया है, अगर शरीर नियम-पूर्वक रखा जाय तो उसमें रोग होते ही नहीं और अगर नियमों के तोड़ने से रोग हो जाय तो उसके साथ अनुचित छेड़-छाड़ न की जाय। दो-चार बार इसे करके देखने से ही

पता चल जायगा कि बिना छेड़-छाड़ के शरीर रोगों को दूर करने में किस आसानी से और कितना जल्द समर्थ होता है।

औषधि का प्रयोग—

औषधि का प्रयोग करना चाहिए या नहीं? ऊपर जो शरीर की विशेषता बताई गई है उससे तो यही सिद्ध होता है कि रोग को दूर करने के लिए दवाओं की कुछ भी जरूरत नहीं। देखने में आता है कि यदि दवाओं से कुछ रोग अच्छे होते (अच्छे क्या, थोड़े दिनों के लिए दबते) हैं तो बहुत से रोग दवाओं के दिये जाने की हालत में भी बढ़ते जाते हैं। टाइफ़ॉयड में यही होता है। कई दिन तक दवा देने से जब बुखार नहीं जाता तो कहा जाता है कि टाइफ़ॉयड हो गया। इन सब बातों को देखते हुए कहना पड़ता है कि ऐसी चीज का भरोसा ही क्या जो कि हर हालत में अचूक न हो। हमें तो ऐसी चीज, ऐसा ढंग चाहिए, जो हर हालत में काम कर जाय।

औषधियों में बहुत-सी ऐसी हैं, जो विषैली हैं। अंगरेजी एलोपैथिक दवाएँ तो अधिकतर विष की ही बनी हैं। जब हम तनदुरुस्ती की हालत में विष नहीं खाते तो बीमारी की हालत में बिषमयी दवाओं के सेवन के लिए क्यों विवश किये जाते हैं, यह समझ में नहीं आता। विदेशी या देशी, किसी भी प्रकार की औषधि में यदि विष की थोड़ी सी मात्रा भी हो तो वह ग्रहण करने के योग्य नहीं है।

ऐसी जड़ी-बूटी और औषधियां भी हैं, जिनमें विष नहीं है। ऐसी ही बहुत सी आयुर्वेदीय और यूनानी दवाएँ हैं। उनके इस्तेमाल करने में कोई हर्ज नहीं। लेकिन उनका इस्तेमाल भी बहुत सी हालतों में अनावश्यक है। यह भी अनुभव की बात है कि बहुत से रोगी आयुर्वेदीय या यूनानी इलाज में होते हुए भी अच्छे नहीं होते और तब वे अंगरेजी एलोपैथिक डॉक्टर के सुपुर्द किये जाते हैं। डाक्टर साहब अगर रोग को दबा पायें (निर्मूल करना तो दूर रहा) तो ठीक, नहीं तो रोगी बिचारे किसी होमियोपैथिक डाक्टर के हाथ में दिये जाते हैं या फिर वैद्य जी या हकीम साहब के ही पास लौट आते हैं। इसलिए सच्ची बात यह है कि शरीर को बिना विष वाली औषधियों की भी ख़ास जरूरत नहीं।

जीर्ण रोगों में, तीव्र में नहीं, औषधियों की जरूरत पड़ सकती है, क्योंकि जीर्ण रोगों से उद्धार (छुटकारा पाना) तभी होता है जब कि शरीर की क्षीण जीवन-शक्ति फिर से पुष्ट होकर रोग की जीर्णता को तीव्रता में बदलकर शरीर के विकार को पूरा-पूरा बाहर निकाल देती है। लेकिन ये औषधियां प्रायः उचित भोजन से ही मिल जाती हैं। इस बात को भी अच्छी तरह समझने की जरूरत है। भोजन इसलिए किया जाता है कि उससे शरीर की सभी जरूरतें पूरी हों, अंग-प्रत्यंग के लिए जो जो पदार्थ जरूरी हैं, वे सब के सब .खून के अन्दर आ जायें, न कि सिर्फ़ इसलिए कि पेट का खन्दक भर जाय और जीभ की साध पूरी हो जाय। यदि यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाय तो भोजन इस प्रकार किया जाने लगेगा कि उससे बढ़िया, सर्व-गुणसम्पन्न (सब गुणों को रखने वाला) .खून तैयार होगा। तब रोग होगा ही नहीं, और यदि किसी तरह खून के विकार-युक्त होने के कारण जीर्ण रोग हो जायं तो फिर भोजन को ही दुरुस्त कर .खून साफ़ कर लिया जायगा, जिससे रोग भी दूर हो जायगा। जीर्ण रोगों में दवा की जरूरत पड़ती है पर यह दवा उचित आहार से मिल सकती है। जो दवा खाई जाती है वह भी तो पाचन-क्रिया में पड़कर भोजन की तरह पचती है और .खून के अन्दर कुछ तबदीली (परिवर्तन) पैदा करती है। उसी से रोगी को लाभ होता है। पर यदि यह काम भोजन से ही हो जाय---पेट भरने और .खून में तबदीली पैदा करने के काम दोनों ही यदि भोजन से हो जायें---तो फिर अलग अलग भोजन और दवा खाने की क्या जरूरत? अब सवाल यह है कि जीर्ण रोग की हालत में क्या खाया जाय कि पेट भी भरे और .खून साफ़ होकर रोग भी दूर हो जाय। भोजन के विषय पर प्रकाश तो किसी अगले अध्याय में डाला जायगा, पर यहां इतना ही समझना काफ़ी है कि किसी भी हालत में दवा की उतनी जरूरत नहीं जितनी कि आज कल प्रचलित है।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सक (जैसे अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर हेनरी लिण्डलहार) की राय में होमियोपैथिक औषधियों का प्रयोग प्राकृतिक पद्धति के अन्तर्गत है और प्राकृतिक उपचारों के साथ-साथ किया जा सकता है। अनेकों ने जड़ी-बूटियों और बायोकेमिक (शुस्लर की निकाली बारह) औषधियों द्वारा चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत माना है। असल बात यह है कि जो औषधि रोग के लक्षणों को नहीं दबाती, जो विकारों के निकलने

में अड़चन नहीं डालती, वह प्राकृतिक चिकित्सा के प्रतिकूल नहीं है, पर, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सभी तीव्र रोगों में और सैकड़े ९५ से भी अधिक जीर्ण रोगों में किसी भी औषधि की आवश्यकता नहीं है।

जो जल-चिकित्सा इत्यादि प्राकृतिक उपचारों के साथ होमियोपैथिक या बायोकेमिक दवाओं का प्रयोग करते हैं उन्हें दोनों के प्रभाव और शरीर पर क्रिया-प्रतिक्रिया को अच्छी तरह समझना चाहिए। कोई कोई होमियो-पैथिक या बायोकेमिक दवा प्राकृतिक उपचारों के प्रतिकूल पड़ती हैं। बहुतों से सहायता मिलती है, पर कुछ से हानि होती है—इसलिए बिना अच्छी तरह जाने-समझे दोनों को मिलाना ठीक नहीं।

कुछ दवाएं सहायक हो सकती हैं, होती हैं, फिर भी दवा का भरोसा करना एक दृष्टि से खराब है। दवा खाने वाला मनुष्य रोगी होने का जिम्मेदार अपने को नहीं समझता। वह यह नहीं समझता कि अनियमित जीवन से रोग होता है और न यही समझता है कि नियमित और प्राकृतिक जीवन के बिना आदमी तनदुरुस्त नहीं रह सकता। जो तनदुरुस्त होना और रहना चाहता है उसे अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझनी चाहिए। अपने आप को ठीक रखना तभी हो सकता है जब आदमी अपनी जिम्मेदारी समझे और दवा जैसी भी चीज का भरोसा न रखे। फिर जो ज़्यादा खा लेने के बुरे असर को चूरन-पाचक खाकर दूर कर देने में विश्वास रखता है वह क्योंकर तनदुरुस्त रह सकता है।

यह हमने जान लिया कि जीर्ण रोगों में उचित भोजन से मिलने वाली दवा से ही फ़ायदा होता है और यह भी कि ऐसी दवा रोगों को दूर करने के लिए जरूरी है। अब यह भी समझना चाहिए कि तीव्र रोगों में भोजन से प्राप्त दवा की भी जरूरत नहीं; या यों कहिये कि तीव्र रोगों में न भोजन की जरूरत है न दवा की।

औषधि-प्रयोग के बारे में सब कुछ कहने के बाद यह बताना जरूरी नहीं है कि इन्जेकशन देना चिकित्सा के सही ढंगों में नहीं है। इन्जेक्शन से औषधि मुंह में न डाली जाकर और रास्ते से शरीर में पहुँचाई जाती है। ये औषधियां प्रायः जहरीली होती हैं। इसलिए इन्जेक्शन देना वैसा ही है जैसा कि विषधर काले नाग से अपने को डसवाना। ज़्यादातर इन्जेक्शन से शुरू में कुछ फ़ायदा मालूम होता है, पर सच्चा और स्थायी लाभ किसी रोग में नहीं होता है; बहुतों में खराबी होती है।

तीव्र रोग, अपना चिकित्सक आप ही—

तीव्र रोग के संबंध में एक विशेष बात यह है कि वह आप ही अपना चिकित्सक है। वह बाहर से रोग की तरह मालूम होता हुआ अन्दर के असली रोग, विकार, को दूर करने की क्रिया है। जैसा कि पहले कई बार कहा गया है, तीव्र रोग, यदि उसके साथ छेड़-छाड़ न की जाय तो, शरीर के विकारों को दूर करने का अच्छा साधन है। तीव्र रोग इसीलिए होता है कि शरीर के अन्दर की गन्दगी जल्दी से बाहर निकल जाय और शरीर फिर से स्वस्थ हो जाय। बल्कि यह समझना चाहिए कि जब तक तीव्र रोग नहीं हुआ था तब तक शरीर ख़तरे में था, क्योंकि उसके अन्दर बेकार और जहरीले पदार्थ भरे थे। पर जब तीव्र रोग हो गया तो समझना चाहिए कि प्रकृति की तरफ़ से सफ़ाई का काम शुरू हो गया, जिससे ख़तरा जाता रहा, इस दृष्टि से तीव्र रोग दुश्मन न होकर दोस्त है। हमारा काम उसकी मदद करना, उसके उद्देश्य को पूरा करना है, न कि उसके साथ लड़ना, उसे दबाना और उसके अच्छे काम को रोकना। इस दोस्त की सच्ची मदद तभी हो सकती है जब कि हम शरीर के अन्दर की सफ़ाई का काम पूरा पूरा जारी रहने दें और किसी तरह का भी पथ्य देकर सफ़ाई के काम के साथ साथ भोजन पचाने का बोझ शरीर को न दे दें। जब तीव्र रोग के कारण शरीर के अन्दर सफ़ाई शुरू होती है तो सफ़ाई के काम के अलावा और कोई भी काम शरीर में न होना चाहिए। साथ ही शरीर के सब अंगों और कल-पुर्जों को पूरा पूरा आराम मिलना चाहिए। तभी सफ़ाई अच्छी तरह हो सकती है। हां, अगर सफ़ाई के काम में किसी तरह की एसी मदद पहुँचाई जाय, जिससे सफ़ाई अच्छी तरह हो जाय और शरीर के अन्दर किसी तरह का नुकसान न पहुँचे तो, बहुत अच्छा हो। ऐसी मदद मिट्टी, पानी, धूप इत्यादि के सहारे पहुँचाई जा सकती है। इस तरह की मदद के बारे में आगे बताया जायगा।

सभी रोगों की एक ही चिकित्सा—

सच्ची चिकित्सा के सिद्धान्तों के जानने वाले यह जानते हैं कि रोग के अनेक आकार-प्रकार होते हुए भी वास्तव में रोग एक ही है—शरीर के अन्दर का विकार। जुकाम हो या ज्वर, प्लेग हो या हैज़ा, फोड़ा हो या

पेचिश, खांसी हो या खुजली, जो कुछ भी हो सच्चा चिकित्सक बाहर लक्षणों से न घबराकर अन्दर के विकार की ओर अपना ध्यान देगा। वह अच्छी तरह समझता है कि अगर रोग एक ही है तो चिकित्सा भी एक ही है। यदि रोग विकार है तो चिकित्सा केवल उस विकार को बाहर निकाल देने का सही ढंग है। बाहरी लक्षणों को भी, जिनसे तकलीफ़ होती है, वह जरूर शान्त करेगा, पर अपनी चिकित्सा को वह विकार निकालने में ही लगायेगा।

चिकित्सा किसकी--शरीर की या बाहरी लक्षण की--

यह प्रश्न भी गहरा है और इसका उत्तर ऊपर की बातों से संबंध रखता है। मिसाल के लिए, अगर सिर में दर्द है तो चिकित्सा केवल सिर की न की जाकर सारे शरीर की की जायगी। सिर का दर्द तो सिर्फ़ बाहरी लक्षण है। सच पूछिए तो उसका असली कारण पेट की ख़राबी, पेट की ख़राबी से ख़ून की ख़राबी और ख़ून की ख़राबी से नाड़ी-संस्थान (देखो पृष्ठ १६ का फुटनोट) का ठीक हालत में न होना है। अब अगर इलाज सिर्फ़ सिर का किया जाय तो रोग क्योंकर जा सकता है। यह अक्सर देखा जाता है कि ग़लत इलाज से थोड़ी देर के लिए सिर का दर्द चला जाता है, पर वह फिर हो आता है। इसी तरह खुजली (खारिश) में शरीर की खाल में ख़राबी दीखती है, पर सच्ची बात तो यह है कि ख़ून की ख़राबी और पेट की ख़राबी से ख़ून की खराबी हुई है। खांसी में क्या सिर्फ़ कंठ और वायुनाली की ही ख़राबी है? आंखों के उठने में (आंख आने में) क्या केवल आंखें ही ख़राब हालत में हैं? नहीं, इन सब बीमारियों में अन्दरूनी कारण कुछ और है और इन सबों में सारे शरीर में 'थोड़ी बहुत ख़राबी रहती है लेकिन यह ख़राबी किसी एक अंग में या ज़्यादा अंगों में प्रकट होती है। इसलिए समझदार चिकित्सक सभी बीमारियों में साधारण तौर से सारे शरीर का इलाज करता हुआ लक्षण-विशेष का उपचार करता है।

चीरा या नश्तर--

इसी से मालूम होता है कि टॉन्सिलाइटीस (tonsilitis—गले की कौड़ियों की सूजन, जिससे खांसी भी आती है) में चीरा देकर कौड़ियों को निकलवा देना या बवासीर में मस्सों को कटवा देना या अपेन्डि-

साइटीस (उपान्त्रदाह, appendicitis—उदर में छोटी आंत और बड़ी आंत के मिलने के स्थान के पास 'अपेन्डिक्स' नामक एक बहुत छोटे अंग की दाह और पीड़ा) में अपेन्डिक्स का नश्तर करा देना रोग का सच्चा इलाज नहीं है। ऐसे नश्तरों से रोग के लक्षण दब जाते हैं और रोगी और चिकित्सक दोनों ही इस भ्रम में रहते हैं कि रोग जाता रहा। पर रोग तो पेट की ख़राबी, ख़ून की ख़राबी, नाड़ी-संस्थान की ख़राबी या यों कहिए कि सारे अंग की ख़राबी से हुआ है। जब तक ये ख़राबियां बनी रहेंगी रोग भी बना रहेगा और महज़ ऊपरी चीर-फाड़ से सच्चा लाभ न होगा।

गले की कौड़ियों का सूजना तो सिर्फ़ एक ऊपरी लक्षण है, लेकिन उसके पीछे सारे शरीर की ख़राबी और कमज़ोरी है। सिर्फ़ लक्षण को दूर कर—टॉन्सिल को काट कर—यह समझना कि सच्चा रोग दूर हो गया अपने आप को धोखा देना है। आज-कल नश्तर देने का ऐसा रिवाज चल गया है कि जहां बुद्धि काम नहीं करती नश्तर दे दिया जाता है। जिस अंग से रोग ज़ाहिर होता है वह सिर्फ़ अपनी तसल्ली के लिए, अपने को भ्रम में डालने के लिए, काटकर फेंक दिया जाता है। गले की कौड़ी, आंतों का अपेन्डिक्स, नाकों की गिल्टियां, गर्भाशय इत्यादि स्थानों का नश्तर तो साधारण हो गया है। इसी तरह दांत भी उखड़वा दिये जाते हैं। अब कान, नाक और आंखें बच गई हैं। कुछ दिनों में शायद नाक-कान भी काटे जायंगे और आंखें भी निकाली जायेंगी! पर क्या कौड़ियों के निकलवा देने से टॉन्सिलाइटीस की सच्ची तकलीफ़ जाती रहती है? वह तो फिर किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाती है। देखा गया है कि टॉन्सिल कटवाने वाले को सर्दी-ज़ुकाम बराबर बना रहता है। इसी तरह मस्सों के काट देने से बवासीर का रोगी अच्छा नहीं होता। उसको या तो फिर से मस्से निकल आते हैं या बवासीर बादी से ख़ूनी, या ख़ूनी से बादी हो जाता है या किसी और तरह की तकलीफ़ हो जाती है। चिकित्सा के सच्चे ढंग के प्रचार से नश्तर का रिवाज बहुत कुछ कम हो जायगा और नश्तर उन्हीं हालतों में दिया जायगा, जिनमें चोट-चपेट या दुर्घटना के कारण नश्तर देना ज़रूरी हो गया है। उचित चिकित्सा-प्रणाली में नश्तर का स्थान अवश्य है, पर इतना बड़ा नहीं जितना कि उसे आज दिन मिला हुआ है।

शरीर के तत्वों से काम लेना—

रोग की अवस्था में यदि किसी चीज या पदार्थ से लाभ हो सकता है तो वह है जीर्ण रोगों में उचित भोजन और तीव्र और जीर्ण दोनों ही प्रकार के रोगों में उन तत्वों से काम लेना, जिनसे यह शरीर बना है। हवा, पानी, आग या धूप, मिट्टी और आकाश-तत्व के प्रयोग से तीव्र और जीर्ण दोनों ही प्रकार के रोगों में समुचित लाभ पहुँचता है। पर जैसा कि ऊपर बताया गया है, इन सबों के साथ उचित आहार-विहार, मेहनत-आराम का ध्यान रखना होगा।

भोजन और व्यायाम (कसरत)—

सैकड़े निन्यानवे तीव्र रोगों में भोजन बन्द कर देना जरूरी है। बचे हुए एक प्रकार के रोग में बहुत हल्का भोजन करना हितकर हता है। जीर्ण रोगों में पहले ही भोजन बन्द करना बराबर जरूरी या हितकर नहीं होता। उनमें पहले ख़ास तरह के भोजन की आवश्यकता होती है और बीच बीच में उपवास करना पड़ता है।

तीव्र रोगों में कसरत की आवश्यकता नहीं होती। उनमें से बहुतों में ऐसी तकलीफ़ रहती है कि आराम करना जरूरी हो जाता है। जीर्ण रोगों में कसरत से बहुत लाभ होता है, पर रोग के भेद के साथ कसरत के भी भेद हैं, जो आगे बताये जायँगे।

चिकित्सा के मोटे मोटे सिद्धान्त ऊपर बताये गये। इनको अच्छी तरह समझ लेना जरूरी है, क्योंकि इन्हीं की बुनियाद (नींव) पर अचूक चिकित्सा के ढंग बताये जायंगे। अब इन सिद्धान्तों से संबंध रखने वाले विषय—भोजन, तत्वों के प्रयोग इत्यादि पर—प्रकाश डाला जायगा।

भोजन

अचूक चिकित्सा और भोजन—

शरीर को बनाये रखने और साथ ही शरीर के बिगाड़ने, शरीर के अन्दर बिकार पैदा करने और साथ ही इस विकार को निकालने में भोजन का इतना हाथ है कि अचूक चिकित्सा के ढंगों में हम उचित भोजन को पहला स्थान देते हैं।

भोजन ही हमारा क्षिति (पृथ्वी) तत्व है। यों तो प्राकृतिक उपचारों में मिट्टी की पट्टी और मिट्टी के लेप से बहुत काम लिया जाता है और मालूम ऐसा होता है कि वही पृथ्वी तत्व का प्रयोग है। मिट्टी का प्रयोग पृथ्वी तत्व का प्रयोग अवश्य है, पर इसके वास्तविक प्रयोग का साधन भोजन ही है। पृथ्वी से ही पृथ्वी तत्व का बहुत बड़ा अंश लेकर खाद्य पदार्थ उगते हैं और स्थूल शरीर के पृथ्वीमय पिंड के निर्माण में यह खाद्य पदार्थ लगते हैं।

आज-कल जो प्राकृतिक चिकित्सा के बहुत से तरीक़े निकले हैं उनमें भोजन का उचित ख़्याल किया जाता है, फिर भी किसी में पानी, किसी में भाप, किसी में बिजली और कुछ में पानी-भाप-बिजली तीनों को ही अधिक श्रेय दिया जाता है। आप हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शहरों में जगह जगह पर बड़े बड़े साइनबोर्ड लगे देखेंगे, जिन पर मोटे मोटे अक्षरों में लिखा होता है, 'पानी का इलाज', 'बिजली का इलाज' या कहीं कहीं एकसाथ दूर से चमकता हुआ दिखाई देता है, 'पानी, भाप और बिजली का इलाज।' प्राकृतिक चिकित्सा का दम भरते हुए सिर्फ़ पानी या भाप या बिजली की दुहाई देना अपने आपको और जन-सधारण को धोखा देना है, क्योंकि यदि पानी या भाप या बिजली के प्रयोग के साथ भोजन दुरुस्त न किया जाय तो कभी आरोग्य-लाभ नहीं हो सकता, और यदि बिना इन चीज़ों के ख़ास प्रयोग के भी सिर्फ़ भोजन दुरुस्त कर दिया जाय तो सैकड़े पंचानबे रोग दूर हो जायेंगे। स्वयं लेखक का और बहुत से भारतीय तथा यूरोप और अमेरिका के प्राकृतिक चिकित्सकों का अनुभव है कि गठिया, बवासीर, दमा और एक्ज़िमा जैसे कठिन और हठी रोग केवल भोजन-सुधार से ही जाते रहे हैं। जर्मनी के लूई कुने के 'नया चिकित्सा-विज्ञान' (New Science of Healing) के अनुसार स्नानों के साथ भोजन की
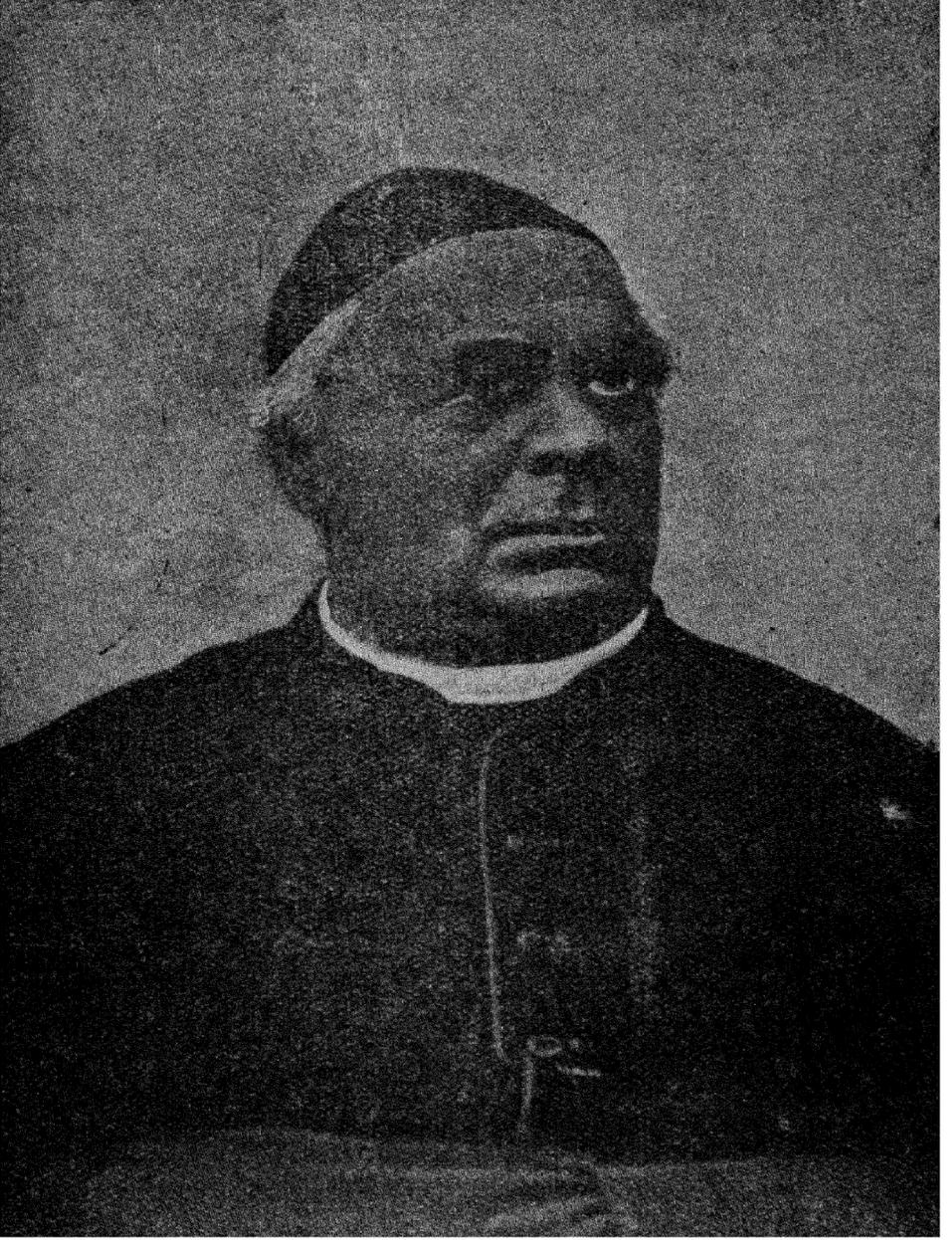
फ़ादर नीप

बवेरिया-निवासी । जल-चिकित्सा और जड़ी-बूटी-द्वारा चिकित्सा के प्रवर्त्तक

बहुत कड़ी पाबन्दी है। यदि यह पाबन्दी न की जाय तो उन स्नानों से कुछ लाभ न हो। इसलिए अचूक चिकित्सा-विधि में ठीक ठीक भोजन पर बहुत ज़ोर दिया जाता है। दावा यह है कि यदि भोजन ठीक हो तो रोग अपने पास फटकने न पावे और यदि पहले के अनुचित भोजन इत्यादि से रोग हो भी जायँ तो उनमें से सैकड़े पंचानबे से अधिक भोजन-सुधार से ही निर्मूल हो जायँगे।

भोजन प्राणदाता नहीं है—

भोजन से शरीर इस हालत में रहता है कि उसके अन्दर प्राण रह सके। एक भूल जो बहुतों के दिमाग़ में बनी है यह है कि भोजन से ही शरीर जीवित रहता है। नहीं, जीवन एक अलग चीज़ है, पर उसके धारण करने की योग्यता शरीर में उचित भोजन से आती है। जीवन, या यों कहिए कि प्राण, उसी शरीर में रहता है, जो अच्छे भोजन (और भोजन के ही साथ साथ व्यायाम, आराम, सफ़ाई इत्यादि) के कारण अच्छी हालत में है। यदि शरीर स्वस्थावस्था में न रहेगा तो प्राण उसके अन्दर काम न करेगा और प्राण के न रहने और न काम करने को ही जीवन का अन्त या मृत्यु (मौत) कहते हैं। इसलिए जीवन के लिए प्राण आवश्यक है न कि भोजन, लेकिन भोजन इसलिए आवश्यक है कि बिना उसके शरीर इस योग्य न रहेगा कि प्राण उसके अन्दर बसेरा करे। यह बात इसलिए बताई गई कि लोग भोजन को इतना ज़रूरी समझने लगे हैं जितना कि वह है नहीं। इसी से यदि किसी से कहा जाय कि दो दिन भोजन न करो तो वह बिना कारण ही बहुत डर जाता है और समझता है कि खाना बन्द कर देने से ही प्राण निकल जायँगे। एक दो दिन का उपवास तो हर कोई—एक बच्चा भी—हँसता-खेलता कर सकता है। जभी ज़रूरत हो पेट और पाचन-क्रिया को एक दिन की छुट्टी दी जा सकती है।

पूछा जा सकता है कि प्राण कहां से आता है? इसका उत्तर देना कठिन है। कोई कहता है कि प्राण ईश्वर की ओर से मिलता है और कोई सूर्य को प्राण का भंडार बताता है। पर इतना ठीक है कि वह किसी बाहरी शक्ति से आकर दिमाग़ से होता हुआ सुषुम्ना (नाड़ी-संस्थान की धड़ जो रीढ़ में रहती है) में आता है। वही जीवन-शक्ति देता है।

भोजन जिलाने वाला और मारने वाला, दोनों है—

यद्यपि हर रोज़ देखने में आता है कि लोग ज़्यादा खाने से, बिना ज़रूरत के खाने से, जो नहीं खाना चाहिए उसे खाने से, बीमार होते हैं और मरते हैं,

बीमारी से अच्छा होते होते फिर भी बीमार हो जाते हैं, तो भी यह बात हृदय में अंकित नहीं होती कि भोजन, यदि जिलाने वाला है तो, मारने वाला भी है। हमारी सारी शारीरिक दुर्गतियों का कारण यही एक ना-समझी है। संस्कृत के 'अन्न' (अनाज) शब्द का अर्थ इस बात पर प्रकाश डालता है। 'अन्न' शब्द 'अद्' धातु से बना है। 'अद्' का अर्थ है, 'खाना', इसलिए लिखा है कि 'जो (दूसरों से) खाया जाय' और 'जो (दूसरों को) खाय' उसे 'अन्न' कहते हैं। यह बात जानकर 'अन्न' से सावधान रहना चाहिए, क्योंकि यदि उसे अच्छी तरह पचा पाया और यदि उसके स्वास्थ्यप्रद होने के कारण शरीर में अच्छा ख़ून बना तो सचमुच उसे खाया और यदि पचा न पाया या शुद्ध रक्त न बना तो वह हमें ही खा जायगा। कहने की जरूरत नहीं कि ज्यादातर ऐसा ही हो रहा है।

भोजन का पचाना--

भोजन का पचाना शरीर के लिए शायद सब से बड़े परिश्रम का काम है। जो लोग इसे नहीं जानते--सैकड़े निन्यानबे इसे नहीं जानते--वह महज स्वाद के लिए अपने पेट मे तरह तरह की चीजें बहुत बहुत मात्रा में ठूंसते जाते हैं। फिर उनको पचाने के लिए चूरन, सोडा वाटर इत्यादि चीजों और दवाओं का व्यवहार करते हैं। इस तरह के अति-भोजन का बुरा परिणाम (फल) क्या होता है, सभी जानते हैं।

भोजन के पाचन के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि भोजन के पेट में पहुंचते ही शरीर की सारी शक्तियां उसके पचाने में लग जाती हैं। इससे देखा जाता है कि भोजन, ख़ास कर अति-भोजन, के थोड़ी देर बाद कुछ सुस्ती मालूम होने लगती है। इसका कारण यही है कि पचाने का काम जारी करने के लिए शरीर के सभी अंगों का बल खिच खिच कर पेट की ओर चला जाता है। बहुत ज़्यादा खा लेने पर यह शक्ति-हीनता साफ़-साफ़ मालूम होती है।

शरीर उतना ही भोजन पचा सकता है, जितने के लिए उसे शक्ति है, और यह शक्ति सब आदमियों में एकसी नहीं होती। यदि अपनी शक्ति से अधिक काम शरीर को करना पड़ा तो कुछ दिनों तक तो वह जैसे-तैसे निभा लेगा, पर फिर बोल जायगा। आज-कल जो थोड़ी उम्र के ही बहुत से रोगी देखे जाते हैं, जिन्हें अपच की शिकायत रहती है, चूरन खाने और जुलाब लेने से

पेट साफ़ नहीं होता, जिन्हें महीनों, वर्षों, भूख नहीं लगती और ख़ून की कमी के कारण जिनका बदन पीला पड़ता जाता है, वे सब के सब अपनी शक्ति से अधिक खाने वाले भोजन-भट्ट हैं। अचूक-चिकित्सा-प्रणाली में शुरू शुरू इन महाशयों के भोजन की मात्रा कम कर दी जाती है, और फिर धीरे-धीरे इन्हें सिर्फ फलों के रस पर रखा जाता है। यह रस इन्हें दिन में तीन-चार बार दिया जाता है। हल्के पथ्य के बाद से ही उनकी तबीअत पहले से ज़्यादा अच्छी मालूम होने लगती है। फिर नियमित भोजन और बीच-बीच में उपवास कराया जाता है, जिससे और भी लाभ होता है।

भोजन किस लिए—

भोजन इसलिए किया जाता है कि उससे शरीर की छीजन दूर हो, शरीर के अन्दर की ज़रूरियात पूरी हों, न कि केवल स्वाद के लिए। इसलिए अपनी ज़रूरत और शक्ति को ध्यान में रखते हुए भोजन करना चाहिए, नहीं तो अति-भोजन से बहुत सी ख़राबियां, विशेषकर नाड़ी-बल का ह्रास होता है। भगवान मनु कहते हैं—

अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यञ्चाति भोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्।

अर्थात्

अधिक भोजन रोग पैदा करने वाला, आयु को कम करने वाला, स्वर्गावस्था के प्रतिकूल, पुण्यावस्था के विरुद्ध और लोक-व्यवहार के विपरीत है—इसलिए उसे छोड़ देना चाहिए। इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि भोजन केवल स्वाद के लिए नहीं बल्कि शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए है।

भोजन से ख़ून बनता है और ख़ून शरीर के अंग अंग में पहुँच कर उसकी ख़ूराक दे आता है। यदि ख़ून अच्छा है, ख़ूराक की सभी सामग्री रखता है, विकार-हीन है, तो इन अंगों को उससे पुष्टि और शक्ति मिलेगी और भोजन का सच्चा काम पूरा होता रहेगा। इसलिए भोजन के विषय में यह जानना चाहिए कि किन चीजों के खाने से ख़ून में कौन कौन सामग्री आ जाती है यह आगे बताया जायगा।

भोजन और स्वाद--

तो क्या स्वाद का कुछ भी ख़याल न करना चाहिए ? ज़रूर करना चाहिए। स्वाद से भोजन में आनन्द आता है, और आनन्द के साथ खाया हुआ भोजन अच्छी तरह पचता और खून बनाता है। लेकिन ऐसा भी न होना चाहिए कि स्वाद के लिए पेट में इतना और ऐसा खाना ठूंस दिया जाय, जिसे वह सम्हाल न सके और जिसके पचाने में ज़रूरत से ज़्यादा नाड़ी-बल लगे।

साथ ही यह भी जानने की बात है कि इन दिनों हम लोगों का स्वाद बहुत बिगड़ गया है। अमरूद अमरूद की तरह यों ही न खाकर नमक और काली मिर्च के साथ हम खाते हैं। गुणकारी तरकारी और सब्ज़ियां तब तक हमें नहीं भातीं, जब तक कि वे अच्छी तरह जलाई नहीं जातीं और बहुत मिर्च-मसालों से उनका प्राकृतिक स्वाद नष्ट नहीं किया जाता। तरबूज़ और खर-बूज़ों को जब हम शकर के साथ खाते हैं तभी वे हमें अच्छे लगते हैं। सच पूछिए तो न हमें आटे का असल स्वाद मालूम है न आलू, लौकी इत्यादि साग-सब्ज़ियों का। बिना मसाले की या अन्दाज़ से मसाला देकर अगर तरकारी बने तो हम नाक-भौं सिकोड़ते हैं, कहते हैं कि यह तो गाय-बैल का खाना है। इसका कारण यही है कि हमने प्राकृतिक स्वाद का मज़ा अप्राकृतिक चीज़ों को खा खाकर खो दिया है। इसलिए सादी चीज़ों में हमें कुछ स्वाद नहीं मालूम होता। पर कुछ दिन नियम-पूर्वक जीवन चलाने से हम फिर भी अपना सच्चा स्वाद पा लेंगे, और तब हमें लौकी, आलू, भिन्डी, पालक इत्यादि के सच्चे स्वाद की फ़िक्र रहेगी न केवल मसालों की ही। बहुत मसालों से, अधिक घी या तेल और बहुत नमक डालने और तलने-भुनने से, साग-सब्ज़ियों का प्राकृतिक स्वाद और साथ ही साथ प्राकृतिक गुण जाता रहता है। इन बातों से कृत्रिम स्वाद का आनन्द भले ही आवे, लेकिन भोजन से जो लाभ होना चाहिए वह नहीं होता। इसलिए स्वाद के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि स्वाद बहुत ज़रूरी है, पर स्वाद के लिए (१) न तो भोजनों का गुण कम करना चाहिए और (२) न इतना खा जाना चाहिए कि उसका पचना असम्भव हो जाय और अनपच के कारण शरीर रोगों का अड्डा बन जाय।

भोजन और ख़ून--

भोजन से रस और रस से ख़ून बनता है, फिर ख़ून ही शरीर को ख़ुराक देकर उसके अंग-अंग को पुष्ट करता है। इसीलिए भोजन पर पूरा पूरा ध्यान

देना चाहिए और नियमानुसार भोजन करना चाहिए। अगर हम अच्छी चीजें (अच्छा क्या है, यह आगे बताया जायगा) खायेंगे और उसे ठीक ठीक पचा पायेंगे तो अच्छा ख़ून बनेगा। यदि हम अच्छी चीजें न खाकर ऐसी चीजें खायेंगे, जिनसे विकार पैदा होते हैं, तो ख़ून भी विकार-युक्त बनेगा और तरह तरह की बीमारियां पैदा करेगा। लेकिन अगर ख़ून ख़राब है, जिससे कोई बीमारी या बहुत सी बीमारियां हो गई हैं, तो भोजन में कमी या रद्दोबदल करने से ख़ून साफ़ हो जायगा और रोग भी जाते रहेंगे, क्योंकि ख़ून में वह शक्ति आ जायगी जो रोगों को रहने नहीं दे सकती। यह एक सीधी-सादी बात है, जिसे समझने में कठिनाई न होनी चाहिए, और इसी एक बात को समझ लेने और उस पर अमल करने से शरीर अच्छी हालत में रहेगा, रोगी न होगा और तब जीवन सुखमय होकर आनन्द से दिन कटेंगे।

इन बातों पर ध्यान दीजिए--

कोशिश यह रहे कि भोजन से पूरा पूरा लाभ हो। बे-ढंगे भोजन के लिए पैसा खर्च करना और उसके कारण बीमार होकर डाक्टर की फीस और दवा पर पैसा खर्चना बुद्धिमत्ता नहीं है। इसके लिए यह बातें जरूरी हैं :--

(१) भूख को शान्त करने, अर्थात् शरीर की आवश्यकता पूरी करने के लिए ही, भोजन किया जाय। मामूली हल्के नाश्ते और भोजन में साढ़े तीन, चार, घंटे का अंतर जरूरी है, भोजन के बाद कम से कम छः घंटे तक कुछ न खाना चाहिए। यह एक मामूली बात है कि जो लोग दिन में २ बार डट कर नाश्ता और फिर २ बार जी खोल कर खाना खाते हैं वे ही ज़्यादातर बीमार रहते हैं। चौबीस घंटे में सिर्फ़ २ बार खाने वाला बहुत कम, या नहीं, बीमार होता है।

(२) जो भी खाया जाय अच्छी तरह चबाये जाने के बाद हलक़ के नीचे उतारा जाय। नियम है—'ठोस पदार्थों को पिओ और तरल पदार्थों को खाओ।'

(३) कभी अति भोजन न करना चाहिए।

(४) क्या खाया जाय, इसपर ध्यान देना बहुत जरूरी है। इस विषय पर आगे प्रकाश डाल जायगा।

भोजन का विषय बहुत आवश्यक है, इसलिए इस संबंध की बातें बार-बार दुहराई जायेंगी।

अचूक चिकित्सा के ढंग

भोजन के नियम; खाद्य पदार्थ; हवा से फ़ायदा उठाना; पानी को काम में लाना; धूप या भाप से काम लेना; मिट्टी को काम में लाना; एनीमा के सहारे आंतों की सफ़ाई

भोजन के नियम

ख़ून की सफ़ाई—

जैसा कि पहले बताया गया है, अचूक चिकित्सा के ढंगों में ठीक ठीक भोजन करने का पहला और सब से ऊँचा स्थान है। यहां फिर से उसी पुराने सिद्धान्त को दुहराने में कुछ हिचक नहीं मालूम होती कि भोजन से ही खून बनता है और खून के विकारों से ही रोग होते हैं। अगर मामूली सिर-दर्द भी हो तो समझना चाहिए कि खून विकृत है। साधारण सिर-दर्द से लेकर डाक्टर और वैद्यों को चक्कर में डालने वाले गर्दन-तोड़ बुखार या हैजा या प्लेग या दमा या गठिया जैसे कठिन से कठिन रोग में खून का विक र-मय होना ही रोग का सच्चा कारण है। इसलिए चतुर चिकित्सक खून को ही साफ़ करने की कोशिश करता है। एक तो तीव्र रोग खुद ही प्रकृति की ओर से विकार को शरीर से बाहर निकाल देने और ख़ून को साफ़ करने की कोशिश है। दूसरे, चतुर चिकित्सक प्रकृति को मदद पहुंचाकर इस सफ़ाई की क्रिया को और भी पूरा और प्रभावशाली कर देता है।

प्राकृतिक चिकित्सक तीव्र रोग में खाना न देगा। तीव्र रोग में खाना देना, चाहे वह कितना ही हलका क्यों न हो, प्रकृति के रास्ते में अड़चन डाल कर रोग को बढ़ाना है या जल्दी दूर होने से रोकना है। इसी से मामूली बुखार बढ़कर मियादी बुखार या चेचक का बुखार हो जाता है और मामूली जुकाम और बुखार न्यूमोनिया के रूप में बदल जाता है।

जीर्ण रोगों में चतुर प्राकृतिक चिकित्सक भोजन को बदल कर और साथ ही साथ उपवास का सहारा लेकर खून को साफ़ करता है और वर्षों से जकड़े हुए रोग को निकाल फेंकता है। यह सिर्फ़ कहने की बात नहीं है। यह हर रोज़ के अनुभव की बात है कि गठिया या दमा के रोगी, जिनके रोगों को विद्वान डाक्टरों ने असाध्य कह कर उनकी चिकित्सा करना छोड़ दिया था, प्राकृतिक चिकित्सक के हाथ में आने के कुछ दिन बाद से ही अपने रोग में कमी और विशेष आराम का अनुभव करने लगते हैं। पूरा आराम तो देर से होता है लेकिन उसकी शुरुआत हो जाती है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि ख़ून को साफ़ करने के लिए किसी बाहरी उपाय की ज़रूरत नहीं है। जैसा कि बताया जा चुका है, शरीर की बनावट ही ऐसी है और उसका धर्म ही यह है कि वह अपने आपको दुरुस्त कर ले और फिर से भला-चंगा बना ले। उसकी राह में अड़चनें न होनी चाहिए, फिर तो अपने आपको वह जल्दी ठीक कर लेगा। शरीर की इस विचित्रता को प्राकृतिक चिकित्सक कभी नहीं भूलता और वह या तो भोजन बन्द कर के या उचित भोजन देकर ख़ून की सफ़ाई में शरीर की मदद करता है। यदि वह किसी बाहरी चीज़ों का प्रयोग करता है तो, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उन्हीं पदार्थों का जिनसे कि यह शरीर बना है--पानी, मिट्टी, हवा, आग या धूप।

अचूक चिकित्सा संबंधी भोजन के नियम--

अब अचूक चिकित्सा से संबंध रखने वाले भोजन के नियमों को एक एक कर के बताया जाता है :--

(१) तीव्र (नये) रोगों में भोजन न देना चाहिए--किसी तरह के बुखार, ज़ुकाम (सर्दी), बदन के किसी हिस्से में दर्द, बड़े फोड़े का आरम्भ, खांसी, पेचिश, दस्त आना इत्यादि नये रोगों के लक्षण देखते ही खाना बन्द कर देना चाहिए। ऐसे रोगों में शरीर अपने अन्दर के विकारों की सफ़ाई करने पर तुला हुआ है। इस हालत में किसी प्रकार का भी भोजन देने से पाचन-क्रिया जारी हो जायगी और सफ़ाई के काम में रुकावट होगी। इससे शरीर ख़तरे में हो जायगा।

यह ख्याल गलत है कि उपवास से रोगी कमज़ोर हो जाता है। सच्ची बात यह है कि रोगी की रक्षा के लिए और रोग के जल्दी से जल्दी निकल जाने के लिए उपवास सब से अच्छा साधन है।

नये रोगों में भूख स्वयं ही जाती रहती है, जिसका अर्थ है कि शरीर को भोजन की ज़रूरत नहीं। फिर ज़रूरत नहीं रहने पर शरीर को भोजन देना उसपर बेकार भार लादना और अपनी मूर्खता साबित करना है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह सोचना ही ग़लत है कि भोजन न देने से रोगी कमज़ोर हो जायगा। रोगी कुछ कमज़ोर हो सकता है पर रोग के वेग से ऐसा होता है न कि उपवास से। फिर यह भी है कि उचित चिकित्सा से अच्छे होने पर वह शीघ्र ही पहले से भी अधिक बलवान और ताज़ा हो जाता है।

ख़ास हालतों में कुछ चीजें नये रोगों में दी जा सकती हैं। हर प्रकार के बुख़ार में और जुकाम-खांसी में भी एक प्याला ठंढे या गरम पानी के साथ आधे नींबू का रस निचोड़ कर हर तीन या चार घंटे पर रोगी को पिला सकते हैं। बुखार इत्यादि में यदि भीतरी दाह ज़्यादा हो तो या पेचिश या दस्त लगने की हालत में ठंढे पानी में ही नींबू का रस निचोड़ कर पिलाते हैं। कुछ लोग जुकाम-खांसी में नींबू का रस पिलाने से डरेंगे, पर नींबू का व्यवहार प्रायः हर हालत में लाभदायक है। नींबू भीतरी विकारों को बाहर निकालने में सहायता पहुँचाता है, दस्त साफ़ लाता है, खून को साफ़ करता है और बहुत से उपद्रवों को दूर करता है। जुकाम में हो सकता है कि नाक से और भी पानी निकले और छींकें अधिक आवें, पर इन बातों से तो विकार जल्द दूर हो जाते हैं। जुकाम में, कब्ज़ में, पेट के दर्द में, गरम पानी के साथ नींबू का रस पिलाने से लाभ होता है। कोई भी नींबू अच्छा है पर कागज़ी नींबू ज़्यादा अच्छा है।

नये रोगों में बच्चे को, बहुत बुड्ढे को, कमजोर को और गर्भिणी स्त्री को सन्तरे (नारंगी) का रस, मीठे नींबू या मौसंबी का रस, कंधारी या मीठे अनार का रस, पके (लेकिन बिना आग पर पकाये) टमाटर का रस, अगर कमजोरी ज़्यादा नहीं है तो जामुन का रस, अनन्नास का रस, नाशपाती का रस या सेब का रस पानी के साथ या अकेला ही, थोड़ी थोड़ी मात्रा में और हर तीन या चार घंटे के बाद, दे सकते हैं। अंगूर का रस भी दिया जा सकता है, पर उसमें चीनी की मात्रा अधिक रहती है, इसलिए यदि उसके बदले किसी और फल का रस दिया जाय तो अच्छा हो। कुछ न मिले तो पानी में ५-६ घंटे किशमिश भिगों कर उस पानी को काम में लाना चाहिए। पानी निकालने से पहले चमचे से १५-२० बार किशमिश और पानी को अच्छी तरह चला लेना चाहिए।

ऊपर की बातें कहने के बाद फिर भी मैं यही कहूंगा कि जुकाम में २-३ दिन, बुखार में जब तक बुखार रहे या लंबा चलने वाले बुखार के शुरू में ४-५ दिन, दस्त लगने की बीमारी में जब तक दस्त न रुके सिर्फ पानी पीकर रह जाना या पानी में सिर्फ नीबू का रस मिलाकर पीना बहुत अच्छा है। बहुत कमज़ोर रोगी को रस देना आवश्यक है पर साधारण हालतों में रसाहार भी बहुत ठीक नहीं है।

अपनी चिकित्सा में मैं बच्चों को पहले और दूसरे दिन सिर्फ़ नींबू के रस और पानी पर रखने की कोशिश करता हूँ। तीसरे दिन किसी फल का रस दिन में तीन बार पिलाता हूँ। नये रोग उपवास करने और एनीमा लेने से, (एनीमा के बारे में आगे बताया जायगा) दो तीन दिन में ही चले जाते हैं। अधिक उम्र

या कमजोर रोगियों को पहले दिन कुछ भी नहीं देते। प्यास मालूम होने पर सिर्फ़ पानी पीने को देते हैं। दूसरे दिन नींबू का रस पानी के साथ दिन में तीन-चार बार देते हैं। आगे भी इसी तरह रखते हैं, पर यदि रोगी ने इच्छा प्रकट की तो तीसरे-चौथे दिन से ही फल का रस देना शुरू कर देते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि बड़े लोगों के नये रोग भी, जो बहुत पेचीदे नहीं हैं, दो-तीन दिनों के उपवास और एनीमा-प्रयोग से जरूर चले जाते हैं। पेचीदे रोगों में, जैसे टाइफॉयड बुखार में, ज़्यादा दिन लग सकते हैं, लेकिन उनमें भी बिना किसी उपद्रव के सफलता होती है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, सबल रोगियों को रोग रहने के समय तक पानी या नींबू के रस मिले पानी के साथ उपवास कराना अच्छा है। ऐसा उपवास प्रकृति के अनुकूल है और कुछ हानि नहीं करता। फिर भी नये रोगों में फल के रस देने से कोई ख़ास हानि नहीं होती। यह रस पाचन-क्रिया पर भार नहीं पहुँचाते और इनके पीने से रोगी को तसल्ली रहती है। नींबू के रस के प्रयोग से तो फ़ायदा ही होता है।

कुछ चिकित्सकों की राय है कि लौकी, परवल, नेनुआ, तरोई, टमाटर, शलजम, पालक इत्यादि हरी और ताज़ी भाजियों में से तीन-चार को हल्की आंच पर एक डेढ़ घंटे धीरे-धीरे उबालकर और फिर उनका अर्क़ (सूप) निकालकर दे सकते हैं। जो चाहे तो उस अर्क में नींबू का रस भी छोड़ सकते हैं। रोग-वेग में नमक न देना ही अच्छा है। इस सूप (अर्क़) में भाजी के टुकड़े न होने चाहिए, फल और तरकारी के रस दवा का काम भी करते हैं। उनके अन्दर बहुत से प्राकृतिक लवण (कुदरती नमक) रहते हैं, जो खाने में नमकीन नहीं मालूम होते पर जिनसे शरीर को बहुत लाभ पहुँचता है। मेरी अपनी राय है कि नये रोगों के आरंभ में सूप न देना ही अच्छा है। अगर चार-पांच दिन के बाद यह मालूम हो कि रोग कुछ दिन चलेगा और फल न मिलते हों तो सूप दे सकते हैं।

नये रोगों के चले जाने पर एक-दो दिन रोगी को सिर्फ़ दूध या मठा या फल या तरकारी पर रखना चाहिये। धीरे धीरे उसे रोटी-भाजी पर लाना चाहिए। मान लीजिए कि एक रोगी है, जिसका बुखार ३-४ दिनों के बाद आज उतर गया। कल हम उसको लगभग ८ बजे सुबह, २ बजे दिन और ६ बजे शाम को बिना पानी मिलाये फलों के रस पर रखेंगे। परसों उसे हम दो बार कोई एक हलका फल (दो छोटे सन्तरे या थोड़े से अनार के दाने या १ सेब या थोड़े से

अंगूर या किशमिश या आधा पपीता) और एक बार रस देंगे। नरसों हम सुबह के फल के साथ आधा पाव कच्चा या एक उफान का उबला दूध भी, बिना चीनी या मिश्री के, देंगे। दो बजे दिन में फिर सिर्फ़ फल और शाम को एक मामूली तौर पर बनी हरी भाजी (जैसे लौकी या भतुआ (पेठा) या नेनुआ या तरोई या परवल) देंगे। आलू, घुइयां, बंडा जैसी कन्द-भाजी या गोभी बैगन जैसी बादी भाजी एक हफ़्ते या और ज़्यादा दिनों तक न दी जायगी। चौथे दिन सुबह में ७ या ८ बजे दूध, ११-१२ बजे दोपहर में रोटी और ऊपर की भाजियों में से कोई एक भाजी देंगे, और फिर शाम को सिर्फ़ भाजी या दूध-मुनक्के देंगे। भोजन का क्रम नमूने के लिए बताया गया है। आशा है कि पाठक इस नमूने से सच्चा आशय समझ जायंगे। नये रोग के जाते ही रोटी या चावल दाल शुरू नहीं करना चाहिए, क्योंकि शरीर उस हालत में थका और कमजोर सा रहता है। उसे एक प्रकार की लड़ाई लड़नी पड़ी थी। इसलिए धीरे धीरे उसे अन्न देना चाहिए।

ऊपर बताया गया है कि बड़े फोड़े के आरंभ होने की हालत में भी भोजन न देना चाहिए। बड़े फोड़े जब उठने लगते हैं तो थोड़ी या ज़्यादा हरारत भी रहती है। डाक्टर लोग तो ऐसी हालत में सभी कुछ खाने को देते हैं। वे समझते हैं कि आगे इस फोड़े को पकाकर इसमें नश्तर दिया जायगा। इसलिए भोजन रोकने से क्या लाभ। पर बड़े फोड़ों में से बहुत से भोजन के परहेज़, एनीमा प्रयोग, मिट्टी के लेप (यह आगे बताया जायगा) और दूसरे उपचारों से शीघ्र ही या तो दब जाते हैं या फूट कर अच्छे हो जाते हैं--चीरा लगाने की जरूरत ही नहीं पड़ती।

(२) जीर्ण रोगों में या तो उपवास कराना चाहिए या क्षारमय (*alkaline*) भोजन देना चाहिए--मान लीजिए कि मेरे पास कोई गठिया जैसे जीर्ण रोग से ग्रस्त रोगी आया। अगर वह साधारण तौर पर अच्छी हालत में है, बहुत कमज़ोर नहीं है, तो मैं पहले ही उसे तीन दिन का उपवास पानी या अध-खट्टे (प्रभाव में क्षार) फलों (जैसे सन्तरा) के रस पर कराऊँगा और तब फल और भाजी पर ७ से १० दिनों तक रखूंगा, जिससे शरीर के अन्दर का खून बदल जाय। खून के बदलने पर रोग का दूर होना निर्भर है, और खून का अच्छा या बुरा होना भोजन पर निर्भर है। इसलिए या तो उपवास या भोजन के बदलने से ही मैं अपनी चिकित्सा शुरू करूँगा। अगर रोगी कुछ कमज़ोर है तो पहले उसे मैं केवल ऐसी चीजें खाने को दूंगा, जो क्षारमय हैं और जिनसे ख़ून सौ फ़ी सदी यानी बिल्कुल क्षार-मय हो जाय। क्षार-मय भोजनों के बारे में अभी आगे बतलाया

जायगा, पर उदाहरण के लिए यहां यह कहा जाता है कि गठिया के रोगी को मैं पहले एक-डेढ़ सप्ताह तक एक समय रोटी-भाजी और एक या दो और समय फल (सेव या सन्तरा या गाजर या अमरूद) पर रखूंगा, फिर ७ दिन सिर्फ़ फल और भाजी पर रखूंगा। उसे इन दिनों हर रोज़ और आगे भी बीच बीच में एनीमा दिया जायगा, जिससे वर्षों का इकट्ठा विकार शरीर से निकल जाय। साथ ही आवश्यकतानुसार कुछ जल और भाप या धूप का सहारा भी लिया जायगा। पुराना गठिया देर से जाता है, लेकिन जाता जरूर है, इसलिए इस रोगी को १५-२० दिन फल और भाजी पर रख कर तीन दिन का उपवास रस पिला-कर या पानी पर ही करा दूंगा। इस तरह के तीन दिनों के उपवास के बाद उसे फिर फल ओर भाजी पर ७-८ दिन रखूंगा और तब सुबह को फल, दोपहर में कच्ची सब्ज़ी (सलाद, आगे देखिए) और एक-दो चोकरदार आटे की रोटी और शाम को पकी भाजी और मुनक्के या सिर्फ़ मुनक्के खिलाना शुरू करूंगा। इस तरह दो-ढाई महीने चलाऊँगा। इस अर्से में रोग बहुत कुछ दूर हो जायगा। अगर फिर भी उपचार की ज़रूरत रहेगी तो दो-ढाई महीने के बाद फिर तीन दिन का उपवास कराऊँगा। इसके बाद उसे फिर एक सप्ताह फल और तरकारी पर रखा जायगा और तब रोटी-भाजी का साधारण भोजन शुरू हो जायगा। आशा है कि इतने दिनों के फलाहार, शाकाहार और बीच बीच में तीन दिनों के उपवास से रोगी ज़रूर ही तनदुरुस्त हो जायगा।

अगर कोई ख़ारिश (खुजली-कलकल), दाद या एक्ज़िमा (एक प्रकार का ज़ख्म, जो चमड़े पर फैलता है, कभी दब जाता है और कभी उभड़ता है) का रोगी हुआ तो उसे तरकारी न दे कर सिर्फ़ फलों पर रखा जायगा। तरकारी में नमक मिलाना ज़रूरी सा हो जाता है, और पुराने ज़ख्म वाले रोगी को नमक से परहेज करना चाहिए। ऐसे रोगों को फलाहार और बीच-बीच के उपवास के साथ-साथ एनीमा-प्रयोग इत्यादि के सहारे अच्छा किया जाता है।

अगर कोई ऐसा रोगी है, जिसका रोग जीर्ण है पर बीच बीच में उभड़ कर तीव्र हो जाता है और जिसका शरीर बहुत दुर्बल नहीं है, तो इलाज के शुरू से ही उससे उपवास कराया जायगा।

उपवास से कुछ लोग बहुत डरते हैं, पर प्राकृतिक चिकित्सकों का अनुभव बताता है कि जिन बीमारियों में दर्द, जलन और सूजन है, चाहे उनके नाम कुछ भी हों, उपवास और एनीमा से बढ़ कर उनका कोई इलाज नहीं है। एक-दो दिन के ही इस तरह के उपचार से उनकी तकलीफ़ या तो बिलकुल चली जाती है या

बहुत कुछ कम हो जाती है। इसी तरह दमा, बवासीर, गठिया, रक्तचाप का बढ़ना (high blood-pressure) इत्यादि जीर्ण रोगों में भी उपवास या फलों के रस पीकर रहने से ही आश्चर्य-जनक लाभ होता है। इसलिए अचूक चिकित्सा-विधि में उपवास एक बड़ा ज़ोरदार अस्त्र है। फिर तीन दिन के छोटे उपवास से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। उपवास में कुछ कमज़ोरी ज़रूर मालूम होती है, पर वह ऐसी नहीं है कि कुछ हानि पहुँचावे। बहुतों को यह कमज़ोरी सिर्फ़ सोचने के कारण होती है। जो समझदार हैं वे यह सोचते ही नहीं कि मैं कमज़ोर होता जा रहा हूँ। उपवास के बाद उचित भोजन से पहले से भी ज़्यादा बल शरीर में आ जाता है। उपवास में एनीमा-द्वारा हर रोज़ पेट साफ़ करना बहुत ज़रूरी है।

फलाहार के सम्बन्ध में याद रखना चाहिए कि जहां तक हो सके मीठे और हल्के फल खाये जायं। किसी भी रोग के रोगी को केला और कटहल न खाना चाहिए। केला बहुत अच्छा फल है, पर केले और रोटी में बहुत कम अन्तर है। हल्कापन और लाभ के विचार से रोगियों को दिये जाने वाले फलों का क्रम इस प्रकार हो सकता है—सन्तरा (नारंगी), मोसंबी, मीठे नींबू और चकोतरे, शरीफ़ा इत्यादि, अनार, मकोय (रसभरी), टमाटर, अंगूर, गन्ना, अनन्नास, सेव, नाशपाती, शहतूत फालसा, पपीता, तरबूज़, खरबूजा, खीरा, ककड़ी, अमरूद आम। किसी भी रोगी को चिकित्सा काल में केला, कटहल नहीं दिये जायंगे और दस्त लगने की बीमारी वालों को जहां तक हो सकेगा रसदार फल ही दिये जांयगे।

फलों के रस के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि जहां तक हो वे मीठे फल के रस हों। संतरा और उसकी जाति के फल (नीबू भी) कुछ-कुछ या बिलकुल खट्टे होते हुए भी शरीर के अंदर पहुँच कर मीठे फलों जैसा ही काम देते हैं। पर जिनके खटास की बीमारी (जैसे बहुत खट्टी डकारों का आना) है उन्हें पहले मीठे रसों के फल से शुरू कर इस तरह के अध-खट्टे फलों का रस शुरू करना चाहिए। उन्हें इन खट्टे या अध-खट्टे फलों से हानि नहीं होगी पर शुरू शुरू में कुछ तकलीफ़ बढ़ सकती है।

(३) बराबर ही भोजन में क्षार की अधिकता होनी चाहिए—यह नियम बहुत ही ज़रूरी है। अगर इस नियम की पाबन्दी की जाय तो कभी रोग न हो और अगर रोग हो गया है तो वह अच्छा हो जाय। इस नियम को समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि खून में खारापन (क्षारता—alkalinity,) और खटाई (अम्लता—acidity) दो विशेष गुण हैं। ख़ून के अंदर बहुत से पदार्थ हैं, पर

साधारण ज्ञान वाले चिकित्सक का काम इतना ही समझने से चल जायगा कि ख़ून में खारापन और खटाई है और यह भी कि शरीर को निरोग और तनदुरुस्त रहने के लिए यह ज़रूरी है कि ऐसी ही चीज़ें खाई जायँ, जिनसे ख़ून में ८० फी सदी खारापन रहे और सिर्फ़ २० फ़ी सदी खटाई की मात्रा। अगर कोई रोग हो जाय, चाहे वह मामूली सर-दर्द हो या प्लेग या टाइफ़ॉइड या पक्षाघात (फ़ालिज), तो यह निश्चय है कि ख़ून में खटाई की मात्रा बढ़ गई है। इसलिए अगर भोजन-क्रम को सुधार कर ख़ून के अन्दर के खारेपन और खटाई का अन्दाज़ ठीक कर दिया जाय तो रोग जाता रहेगा, और इसीलिए अगर रोज़ के भोजन में ऐसी ही चीज़ें ज़्यादा खाई जायँ जिनमें खारेपन का गुण है तो न तो ख़ून ख़राब होगा और न रोग होगा।

याद रहे कि ख़ून में खटाई का होना भी जरूरी है पर उसकी मात्रा २०% ही होनी चाहिए।

लोगों के दिलों में खेद पैदा करने वाली बात यह है कि जितने पकवान और मिठाई और बहुत मसालेदार तरकारियां और स्वादिष्ट भोजन आज-कल मिलते हैं वे सभी खटाई पैदा करने वाले हैं। सच पूछिए तो ये भोजन स्वादिष्ट नहीं हैं। हमारा स्वाद कुछ ऐसा अस्वाभाविक और बनावटी हो गया है कि हम उन्हीं भोजनों को पसन्द करते हैं, जिनके गुण नष्ट कर दिये गये हैं।

एक बात और भी है। एक ही चीज क्षारमय और खटाई पैदा करने वाली दोनों हो सकती हैं। बिना छने आटे की रोटी कुछ खारापन रखती है, पर घी की बनी पूरी, पराठा या मैदे की बनी हुई कोई भी चीज़ खटाई पैदा करने वाली है। ऊख (ईख) के रस से तैयार गुड़ क्षारमय है पर उसी गुड़ से बनी हुई चीनी या मिश्री अम्लगुण वाली है। चीनी को तो सफ़ेद जहर समझना चाहिए। बच्चों को सूखा रोग का खास कारण माताओं से खाई गई बहुत चीनी है।

अब नीचे एक सूची दी जाती है कि कौन कौन पदार्थ क्षारमय हैं और कौन अम्ल :—

क्षारमय पदार्थ, जिनसे ख़ून में खारापन आता है

(अ) सभी मीठे फल और ऐसे फल जो पक कर मीठे हो जाते हैं—नींबू नारंगी, सन्तरा, चकोतरा और अनन्नास थोड़ा या ज़्यादा खट्टे होते हुए भी क्षारमय हैं। लेकिन बेर, जो पकने पर भी कुछ खट्टा रह जाता है, क्षारमय नहीं है। किशमिश, मुनक्के, अंजीर, पिन-खजूर क्षारमय हैं।

(ब) सभी पत्तीदार भाजियां (सभी तरह के साग, करमकल्ला इत्यादि) और ऐसी फलदार हरी भाजियां, जो ज़मीन के ऊपर होती हैं, जैसे लौकी, तरोई, नेनुआ, परवल, टिन्डा, सहजन इत्यादि। ताज़े सेम, लोभिया (बोड़ा) क्षारमय हैं, लेकिन कुछ कम। सभी कन्द भाजियां, जैसे आलू, खटाई वाली नहीं हैं पर भारी और देर से पचने वाली होती हैं। रोगी को ये भाजी नहीं देते। छिलकेदार आलू क्षारमय है, पर देर से पचता है।

कई कन्द भाजियां, जैसे शलजम, गाजर, मूली, बहुत अच्छी हैं लेकिन उन्हें ठीक तरीक़े से बनाना चाहिए। शलजम, गाजर और मूली के साथ उनकी मुलायम पत्तियों को मिलाकर तरकारी बनानी चाहिए। फूलगोभी (कोबी) बहुत अच्छी क्षारमय है पर बादी है, इसलिए रोगियों को नहीं देते। लौकी, तरोई, नेनुआ इत्यादि के छिलके को न फेंकना चाहिए। इन्हीं छिलकों में प्रकृति ने बहुत सी चीजें दी हैं, जो दवाई का काम करती हैं। आलू का छिलका न फेंकना चाहिये। जिन तरकारियों के छिलके कड़े और कड़वे हों उन्हें फेंक सकते हैं। तरकारियों के छिलके में गुण है और उनसे पेट भी साफ होता है, लेकिन इस संबंध में याद रखने लायक एक बात यह है कि जिन्हें अक्सर पेट का दर्द उठता है या पतले दस्त आते हैं या आंव गिरती है उनको पहले बिना छिलके की बनी भाजी देनी चाहिए। इनरोगियों को छिलके से पेट में जलन सी होगी और दस्तों की मात्रा बढ़ जायगी। जब और उपचारों से बँधे दस्त आने लगें तो फिर छिलकेदार भाजी शुरू करनी चाहिए।

(स) दूध और दूध से बने पदार्थ, घी, मक्खन क्षारमय जरूर हैं, पर भारी होने के कारण सभी हालत में रोगियों को नहीं दिये जाते। दूध बहुत रोगों में काम में लाया जा सकता है। पर घी, मक्खन का व्यवहार तनदुरुस्ती की हालत में ही लाभदायक हो सकता है।

दही या मठा, जो खट्टा नहीं हुआ है, अच्छा क्षारमय पदार्थ है।

मठा एक बहुत उत्तम पदार्थ है। उसमें दूध के सभी गुण रह जाते हैं, पर मक्खन नहीं रहने से दूध का भारीपन उसमें नहीं रहता। इसके अलावा जब दूध का दही जमता है तो उसमें एक खटाई (लैक्टिक एसिड--lactic acid) आ जाती है, जो पेट के लिए अच्छी है। वह खटाई मठे में रहती है। सभी जीर्ण रोगों में, पुरानी खांसी और दमे में भी, मठे का इस्तेमाल कर सकते हैं। मठे को खट्टा न होना चाहिए। उसमें मक्खन बिलकुल न हो और मठा गाय के दूध के दही से बना हो। एक दमा के रोगी और एक दूसरे गठिया के रोगी को मैंने पहले तीन दिन का

उपवास कराया, फिर उनको दिन में चार बार मठा पिला पिलाकर रखा। दो महीने में दोनों के रोग जड़ से जाते रहे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन रोगियों को पहले कुछ दिनों तक बराबर और फिर अक्सर एनीमा दिया जाता था, जिससे वर्षों का इकट्ठा विकार बाहर निकल गया। मठा पीकर रहने से शरीर का बल भी बना रहा और पाचन-क्रिया भी ऐसी हल्की रही कि शरीर भोजन के पचाने से बची हुई अपनी बहुत-सी शक्तियों को अपनी सफ़ाई और मरम्मत में लगा सका।

मठे से अक्सर वायु पैदा होती है और किसी किसी को मठा बिल्कुल अनुकूल नहीं पड़ता। एक दो दिन के प्रयोग से जाना जा सकता है कि मठा या कोई विशेष खाद्य पदार्थ अनुकूल होगा या नहीं। मठे के साथ संतरा या मोसंबी का रस मिला कर देने से वह अनुकूल होने लगता है।

बहुत से जीर्ण रोगों में, खास कर जिनमें रोगी बहुत कमजोर हो गया है, दूध का इस्तेमाल जरूरी हो सकता है।

(द) ऐसा आटा, जिसका चोकर नहीं निकाला गया है, और ऐसे चावल, जिनकी ऊपर की भूसी (कन) नहीं निकाली गई है--आटे के चोकर और चावलों की लाल-पीली ऊपर वाली तह में बहुत तरह के प्राकृतिक लवण (नमक) रहते हैं, लेकिन इनको हम निकालकर आटे और चावल के गुण ख़राब कर देते हैं।

अक्सर लोग आटे में चोकर मिला देते हैं या सिर्फ़ चोकर की ही रोटी बनाते हैं। यह भी ठीक नहीं है। गेहूँ जैसा खाद्य भी प्रकृति से बनाया गया है हमारे काम के लिए ठीक है। न हम उसमें से कुछ निकाल सकते हैं और न ऊपर से कुछ डाल सकते हैं। सफ़ेद चावलों के कारण इन दिनों बहुत से रोग फैल रहे हैं। 'बेरी-बेरी' रोग से सभी लोग परिचित हैं। इसका ख़ास कारण सफ़ेद चावल और बिना चोकर वाले आटे का व्यवहार है।

चावल गुण में आटे से थोड़ा ही कम है, अगर चावल से उसकी भूसी और उसका पानी माड़ के रूप में न निकाला जाय। माड़ फेंकने से चावलों के सभी गुण निकल जाते हैं। चावल को उतनी आसानी से नहीं चबाया जा सकता, जितनी आसानी से रोटी चबाई जाती है, और बिना अच्छी तरह चबाया हुआ पदार्थ ठीक ठीक नहीं पचता--चावलों के साथ यही ख़ास कठिनाई है।

(प) छिलके सहित (साबुत) दाल।--दाल प्रोटीन अर्थात् मांस बढ़ाने वाला पदार्थ है। इसका इस्तेमाल तभी तक जरूरी है जब तक शरीर में मांस

बनता है और बढ़ता है। तीस साल से अधिक उम्र वालों को दाल का इस्तेमाल कम कर देना चाहिए। पचास साल लगते लगते दाल बिलकुल छोड़ देनी चाहिये।

चोकरदार आटे, भूसी वाले चावल, साबुत दाल क्षारमय पदार्थों की सूची में होते हुए भी बहुत थोड़ी मात्रा में क्षारमय हैं।

दाल छिलके के साथ और गाढ़ी बनी हो। रोटी या चावल के साथ सिर्फ़ उतनी ही ली जाय, जितनी से दाल खाने का आनन्द और लाभ मिल जाय पर पेट में कीचड़ न इकट्ठा हो। कीचड़ पर पेट के अन्दर से निकले हुए पचाने वाले रसों का असर (प्रभाव) नहीं हो पाता। अक्सर पतली दाल की तारीफ़ की जाती है, पर उसके सम्मिश्रण से खाई हुई कठिन चीज़ को अच्छी तरह चबाना कठिन होता है। स्वाद में भी कमी होती है।

रोगों की चिकित्सा करते समय दाल बिल्कुल नहीं दी जाती। सिर्फ़ रोटी भाजी या चावल भाजी या रोटी या भाजी खिलाते हैं। मैं अक्सर मरीज़ों को सिर्फ़ रोटी खाकर रहने के लिए कहता हूँ। जहां भाजी बिलकुल नहीं मिलती वहां ऐसा करना ज़रूरी होता है। मरीज़ घबराते और पूछते हैं कि रोटी किस चीज के साथ खाऊँ। उन्हें बताना पड़ता है कि तनदुरुस्ती हासिल करने के लिए अगर पहले कुछ दिनों तक अकेली रोटी अच्छी न लगे तो भी उसे चबा चबा कर खा जाओ। दो-चार दिनों में ही अकेली रोटी का स्वाद मिलने लगता है।

(न) गुड़ और शहद। जब गुड़ मामूली तौर से साफ़ किया जाता है, यानी जब उसके गुणदायक पदार्थ उससे अलग कर दिये जाते हैं, तब देसी चीनी बनती है। और जब वह देसी चीनी और भी साफ़ की जाती है तो देखने में बढ़िया लेकिन बहुत नुकसान करने वाली विलायती चीनी बनती है। दोनों ख़राब हैं, भूरी शकर ख़राब नहीं है।

शहद बहुत अच्छी चीज़ है। इसकी चीनी प्राकृतिक और शरीर में तुरन्त खप जाने वाली होती है। लेकिन शहद शुद्ध हो।

अम्ल पदार्थ, जिनसे खून में खटाई आती है

(अ) मांस, मछली—अंडे—अंडे के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि उसकी सफ़ेदी में खटाई है और जर्दी में खारापन।

इन दिनों अंडे खाने का रिवाज़ बहुत बढ़ गया है। मांसाहार के पदार्थों में अंडा सब से कम हानिकर ज़रूर है, लेकिन, जैसा कि पढ़े-लिखे समाज में समझा जाने लगा

है, वह स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि कुछ हालतों में अंडा बड़े काम का साबित होता है। कच्चे या आधे उबले अंडे की ज़र्दी बहुत जल्द पचती और ताकत पैदा करती है। इसलिए अगर अंडा खाना ही हो तो कच्चा या आधा उबला खाना चाहिए। सख़्त हो जाने से वह बहुत देर में पचता है और बहुतसे विकार पैदा करता है।

अंडा खाने का सब से अच्छा ढंग यह है—कच्चे अंडे की ज़र्दी (पीले हिस्से) को नींबू या नारंगी के रस के साथ अच्छी तरह मिलाइए और फिर उसमें थोड़ा शहद मिलाकर पी जाइए। ऊपर से थोड़ा सा कच्चा या एक उफान का दूध पी जाइए।

जिनके शरीर में बहुत गर्मी है उन्हें अंडे का व्यवहार न करना चाहिए। वीर्य-दोष वालों के लिए भी शुरू से ही अंडा खाना ठीक नहीं है। फिर अंडे का व्यवहार अगर किया जाय तो वह जाड़े में ही ठीक होता है।

अंडा, जहां तक हो सके, ताज़ा हो। बासी अंडा के अंदर का पदार्थ बहुत तेजी से सड़ता है और उससे आंतों में बहुत कीड़े पैदा हो जाते हैं।

मांस हानिकर इसलिए है कि जानवर के शरीर के बहुत से टूटे-फूटे रग-रेशे ख़ून के विकार और ज़हरीले पदार्थ उसमें रह जाते हैं। जिस समय जानवर मारे जाते हैं उस समय मरने के डर से भी उनके ख़ून में ज़हर पैदा हो जाता है। इन सब बातों से आगे चलकर मांस खाने वाले को बहुत खराबी होती है। यूरप-अमेरिका में भी मांसाहार का रिवाज बहुत कम हो रहा है। यदि मांस खाना ही हो तो पहले उसे खौलते पानी में आध घंटे तक अच्छी तरह उबाल कर पानी और उसके साथ उसमें निकले विकार को फेंक देना चाहिए और मांस को घी-मसाले देकर तैयार करना चाहिए। मांस का सूप (रस), जिसे डाक्टर बहुत देते हैं, ज़हरों से भरा रहता है। उससे पहले ताकत मिलती है, लेकिन पीछे ज़हरों के इकट्ठा होने से ख़राबी होती है। सच पूछिए तो मांस, मछली खाने की चीज़ें नहीं।

(ब) मैदा और मैदा का आटा या बेसन के घी या तेल में बने पकवान—पूरी, कचौरी, मालपुआ, हलवा, मिठाई, पकौड़ी इत्यादि।

(स) बिना छिलके की दाल। मटर, सेम, लोभिया (बोड़ा), सूख जाने पर।

(व) ऐसे फल, जो पकने पर भी खट्टे ही रह जाते हैं। दूसरी खटाई, अचार, चटनी।

(प) सूखे मेवे, जैसे बादाम, अखरोट, चिलगोज़ा, काजू, मूंगफली, पिश्ता। यह सूखे मेवे बहुत गुणकारी हैं पर विकारों के निकलने में बाधक होते हैं। उपवास इत्यादि से सफ़ाई हो जाने के बाद नियमित भोजन में ताज़े फलों के साथ (जैसे सुबह या शाम के नाश्ते में सेब या गाजर के साथ २-४ बादाम या अखरोट) सूखे मेवे खाना बहुत स्वास्थ्यप्रद है।

(म) सफेद चीनी, मिश्री।

(न) शराब, चाय, कहवा (काफ़ी) इत्यादि।

ऊपर की सूची से समझ में आ जायगा कि खाने की कौन कौन चीज़ें खारापन पैदा करती हैं और कौन कौन खटाई पैदा करती हैं, पर इस संबंध में कुछ और बातें जाननी चाहिए और वह नीचे दी जाती हैं:—

(अ) खारापन पैदा करने वाली भी सभी चीज़ें रोग की हालत में नहीं खाई जा सकतीं। रोग और रोगी की हालत देखकर उनमें से उपयुक्त चीज़ें चुननी चाहिए।

(ब) नये (तीव्र) रोग में, जिसमें दर्द, जलन और सूजन से शरीर में कष्ट हो, किसी प्रकार का भोजन न देना चाहिए। गरम या ठंडे जल में नींबू का रस सभी हालतों में इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे लाभ होता है। कुछ हालतों में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, सन्तरे इत्यादि का रस भी पानी में मिला कर या वैसे ही दे सकते हैं।*

(स) जीर्ण रोगों में, जिनमें रोगी की पचाने की शक्ति बहुत ख़राब नहीं हुई है, रसदार फल और पत्तीदार भाजियों के इस्तेमाल से रोग की ख़राबी निकल जाने का मौक़ा मिलता है।

ऐसे जीर्ण रोगों में, जिनमें रोगी की पचाने की ताक़त बहुत कमज़ोर पड़ गई है, सिर्फ़ फलों या तरकारी का रस (सूप) तीन-तीन चार-चार घंटे पर देना चाहिए। फलों के रस के बारे में ऊपर बताया गया है कि सन्तारा, मीठा नींबू, अनार, सेव, नाशपाती, अंगूर, अनन्नास, टमाटर इत्यादि के रस निकाले जा सकते हैं। ये फल अगर न मिलें तो गरम पानी में किशमिश भिगो

*उपवास के समय एनीमा-द्वारा पेट साफ़ करना ज़रूरी है। सौ में ६० से ज़्यादा नये रोग दो-चार दिनों के उपवास और एनीमा से ही भाग जायँगे।

कर और फिर उसका रस निचोड़कर काम में ला सकते हैं। कच्चे नारियल का पानी भी बहुत लाभदायक है। सभी भाजी और तरकारियों के सूप (रस) तैयार किए जा सकते हैं, पर रोगियों के लिए टमाटर, करमकल्ला, परवल, नेनुआ, तरोई, भिंडी (राम-तरोई), पालक, बथुआ, लौकी में से किसी दो-तीन को मिलाकर रस (सूप) तैयार करना अच्छा होता है। करीब-करीब सेर भर भाजियों को पतला काट कर उसमें थोड़ा (आध-पाव) पानी देकर आग पर चढ़ा दो। आंच धीमी रहे और बर्तन का मुंह ढका रहे। पानी खुद निकलेगा। घंटे भर बाद बर्तन को उतार कर चमचे से तरकारी को ख़ूब चलाओ और साफ़ कपड़े में छान कर सूप निकाल लो। इस सूप में थोड़ा नमक और कुछ बूंद नीबू के रस की, यदि इच्छा हो तो, मिला सकते हैं। फलों के रस और भाजियों के सूप पेट भरते हैं और साथ ही दवा का काम भी करते हैं। फल और भाजियों में प्रकृति (क़ुदरत) ने वह गुण रख छोड़े हैं जिनसे ख़ून साफ़ होता है और दूसरे बहुत से लाभ होते हैं।†

कमजोरी की हालत में रसाहार के साथ साथ एक छोटे चमचे भर शहद भी दिन में दो-तीन बार लेना चाहिए। शहद से ताक़त बनी रहती है।

(द) उपवास या रसाहार के बाद बहुत धीरे धीरे रोटी-भाजी पर आना चाहिए। निरे उपवास के बाद एक-दो दिन चार बार रस पीकर ही रहना चाहिए। फिर तीसरे दिन दो बार रस लेना चाहिए और दो बार थोड़ा दूध। फिर एक बार कोई पत्तीदार भाजी या हल्का फल, थोड़ी मात्रा में, और दूध। उसके बाद एक भोजन में बिना छने आटे की एक या दो छोटी छोटी चपातियां या बिना छटे चावलों का थोड़ा सा भात—इस तरह उपवास के बाद धीरे धीरे साधारण भोजन पर आना चाहिए। दाल का व्यवहार दसवें-बारहवें दिन से शुरू करना चाहिए। दाल गाढ़ी और छिलके के साथ यानी पूरे दाने की हो और बहुत थोड़ी हो। पहले मूंग, तब मसूर और सात-आठ दिनों के बाद उड़द या अरहर, इस क्रम से दाल खानी चाहिए।

इसी तरह फलाहार के बाद रोटी-भाजी शुरू करने में जल्द बाज़ी न करनी चाहिए।

---

†फलाहार या रसाहार के समय एनीमा ज़रूर लेना चाहिए। मामूली जीर्ण रोग तीन चार हफ़्ते के फलाहार और एनीमा-प्रयोग से ही निश्चय जाते रहते हैं।

लुई-कूने
लिपज़िग (जर्मनी)-निवासी। इन्होंने सिद्ध किया कि सभी रोगों का एक कारण है—शरीर के अन्दर का विकार

(व) तनदुरुस्ती की हालत में, (चिकित्सा के समय में नहीं) प्रत्येक दिन के भोजन में क्षारमय पदार्थ की मात्रा तीन-चौथाई से भी अधिक हो। खटाई पैदा करने वाले पदार्थ एक चौथाई से भी कम हों। नमूने के लिए एक साधारण तनदुरुस्त आदमी को, जो कचहरी में काम करता है या स्कूल-कालेज में पढ़ने जाता है, इस प्रकार खाना चाहिए—

सुबह—नाश्ता, भरसक कुछ नहीं, खासकर अगर १० बजे स्कूल या दफ़्तर जाना हो। सारी रात पेट खाए हुए भोजन के पचाने में लगा रहता है, इसलिए सबेरे पेट को आराम देना चाहिए। हां, एक बात की जा सकती है। रात को एक-डेढ़-छटांक साफ और धुली किशमिश पाव-डेढ़ पाव पानी में छोड़ दी जाय और उसी समय उसमें आधे नींबू का रस निचोड़ दिया जाय। शीशे के बर्त्तन में ऐसा करना ठीक होगा। सुबह इस पानी को एक चमचे से अच्छी तरह चलाकर और पानी को बर्त्तन में निकाल कर उसे पी सकते हैं। किशमिश ९ बजे खाते समय खा सकते हैं। यह रस बड़ा लाभदायक है। यह खून साफ़ करता है और पाखाना साफ़ लाने में मदद पहुँचाता है, पुष्टिकारक है और तबीयत में ताजगी बनाये रखती है। इस रस को हर हालत में पी सकते हैं।

सुबह भरपेट नाश्ते का रिवाज बहुत बुरा और रोगों का उत्पादक है। हां, अगर भोजन देर से—१२ बजे दोपहर में—मिलता हो तो सुबह दूध या मट्ठा या उसके साथ कोई ताजा फल या किशमिश थोड़ी मात्रा में ७, ७-३० बजे ले सकते हैं। लेकिन इस हालत में फिर तीसरे पहर नाश्ता न करना चाहिए।

लगभग ९ बजे सुबह—पहला हिस्सा—मौसम अनुसार टमाटर, गाजर, खीरा, ककड़ी, पतली मूली, मूली की पत्ती, करमकल्ले की पत्ती, पालक की पत्ती, धनिया की पत्ती, लेटिस (सलाद) की पत्ती, चने का साग, प्याज़ और प्याज की पत्ती—इनमें से किसी तीन या चार का जिनमें एक पत्तीदार पदार्थ हो, कच्चा साग, जिसे अंगरेजी में 'सलाद' कहते हैं। इन कच्ची भाजियों को अच्छी तरह सज कर सलाद बनाना चाहिए। इसके बारे में आगे बताया जायगा। सारे भोजन में इस सलाद की मात्रा कम से कम एक तिहाई जरूर होनी चाहिए। यह सलाद बहुत अच्छी चीज है। इससे खून में क्षार का आधिक्य और पाखाना साफ़ होता है। सलाद में यदि इच्छा हो तो नमक और बहुत थोड़ी मात्रा में हरी मिर्च (तनदुरुस्ती की हालत में ही), नींबू का रस या मक्खन या तिल या जैतून या सरसों का तेल (सिर्फ

चार-छः बूंद) डाल सकते हैं। उसमें खोपरे (नारियल की गरी) के कुछ पतले टुकड़े और किशमिश भी ऊपर से छोड़ सकते हैं।

अगर सलाद बनाने के लिए दो-तीन चीज न मिले तो कम से कम एक प्रकार का ताजा फल या कच्ची भाजी, जैसे टमाटर या खीरा या ककड़ी या करमकल्ले की पत्ती या पतली मूली (धुली पत्ती के साथ) या अमरूद का इस्तेमाल करना चाहिए। कुछ न मिले तो थोड़ी-सी तुलसी और बेल की पत्ती चबा कर खा लेना चाहिए। भाजी के सलाद के बदले किसी किसी दिन फलों के सलाद (जैसे अमरूद, केला, संतरा, सेव, नाशपाती, मकोय इत्यादि में से किसी दो-तीन के टुकड़ों को मिला कर) दही या मलाई या क्रोम के साथ ले सकते हैं।

कच्ची सब्जी या ताजे फल जरूर खाना चाहिए। कारण यह है कि आग पर भोजन पकाने से साग-सब्जियों के बहुत से गुण नष्ट हो जाते हैं। कच्ची सब्जी या ताजे फलों से भोजन का सच्चा लाभ मिलता है। अक्सर लोग पेट भरने पर फल खाते हैं। इसका नतीजा बुरा होता है।

दूसरा हिस्सा—रोटी या चावल और एक या दो पकी भाजियां [आलू या आलू-फूलगोभी और एक पत्तीदार भाजी या लौकी या परवल या नेनुआ या तरोई या भिंडी (राम तरोई) या सहजन (मुनगा) या पत्ती के साथ शलजम की तरकारी, जिसमें मिर्च या बहुत मसाले न हों और जो हल्की आंच पर पकाई गई हो] ; घी के साथ थोड़ी सी साबुत दाल। जिसे किसी भी तरह का रोग हो उसे किसी तरह की भी दाल न खानी चाहिए। आलू का व्यवहार भी परिमित हो। इस हिस्से के भोजन की मात्रा अधिक न हो।

रोटी या चावलों के साथ आलू-गोभी का व्यवहार अच्छा नहीं है। इसका कारण यह है कि इन पदार्थों में श्वेतसार (सफ़ेदी) प्रधान है। श्वेतसार की ज्यादती से पाखाना साफ़ नहीं होता और बहुत सी खराबियां पैदा होती हैं। लेकिन तनदुरुस्ती की हालत में थोड़े आलू से खराबी न होगी। अच्छा तो यह होगा कि आलू हफ़्ते में सिर्फ़ दो तीन बार लिया जाय।

तीसरा हिस्सा—मुंह मीठा करने के लिए दो-तीन पिनखजूर या अंजीर या कुछ मुनक्के या थोड़ा गुड़ या शहद या दही-गुड़।

इस भोजन के तीन हिस्से किए गए। इसके सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि कई चीजों के रहने के कारण अति भोजन न हो। दूसरी बात यह

है कि यह तीन हिस्से तनदुरुस्ती के समय के लिए ही ठीक हैं। चिकित्सा के दिनों में रोटी और एक भाजी काफी होगी।

लगभग १२ बजे दोपहर—पानी, सादा या नींबू के रस के साथ। खाने के साथ पानी पीना ठीक नहीं है।

लगभग ३-३० बजे दिन—कच्चा या एक उफान का औटा दूध और शहद या भूरी शक्कर; या एक प्रकार का कोई ताज़ा फल; या मठा; या तरकारी का सूप (रस) या किसी फल का रस; या फल और दूध या मठा—अपनी शक्ति के अनुसार।

लगभग ७ बजे शाम—एक प्रकार का ताज़ा फल और दूध, या एक प्रकार की पकी भाजी और मुनक्क़ा या अंजीर जैसा एक प्रकार का सूखा फल; या फल या भाजी और कुछ मूंगफली या बादाम या पिश्ता या नारियल की गिरी; या रोटी, थोड़ा मक्खन या घी और एक या दो प्रकार की हरी भाजियां—इनमें से किसी एक प्रकार का भोजन खाना चाहिए। मुंह मीठा करने के लिए बहुत थोड़ा गुड़ या शहद। यह देख लेना चाहिए कि इनमें से कौन भोजन उपयुक्त होता है।

ख़्याल रहे कि रात का भोजन काफी हल्का हो। जहां तक हो सके इस भोजन को चिराग बत्ती जलने के बहुत देर बाद तक न रोक रखना चाहिए; अगर दिन रहते कर लिया जाय तो और अच्छा हो।

लगभग ९-३० बजे रात या दूसरे दिन बड़े सबेरे या रात में जब नींद खुले—पानी।

रात में सोते समय दूध पीने की प्रथा बहुत हानिकारक है। कुछ ही देर पहले खाया हुआ भोजन पचने भी नहीं पाता और ऊपर से हम दूध पी लेते हैं। ऐसा करने से आगे चल कर किसी न किसी तरह का अपच जरूर होता है। अगर दूध पीना जरूरी हो तो फल-दूध का भोजन करना अच्छा है या सिर्फ़ रोटी-भाजी (दाल नहीं) खाने के २० मिनट बाद एक प्याला दूध पी सकते हैं। ज़्यादा देर न करनी चाहिए और न साथ ही दूध पीना चाहिए। रोटी पर लार का असर २० मिनट तक रहता है। उसके बाद पेट की गिल्टियों से खट्टे रस निकलते हैं, जो दूध को पचा देते हैं।

लार का असर जारी रहे और पूरा-पूरा हो, इसके लिए २० मिनट समय देना चाहिए।

ऊपर बताए क्रम के अनुसार अगर तनदुरुस्त आदमी अन्दाज़ का ख्याल रखता हुआ भोजन करेगा तो वह कभी बीमार न होगा--इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

ऊपर के भोजन-क्रम में अपनी अपनी ज़रूरत और अवस्था के ख्याल से कुछ हेर-फेर किया जा सकता है। यदि सुबह कुछ खाना ही हो तो कुछ हल्का फल या शहद के साथ पाव भर दूध लिया जा सकता है लेकिन इस नाश्ते और अगले खाने के बीच कम से कम तीन घंटे का अन्तर जरूर होना चाहिए।

भोजन कैसा हो, यह इस पर भी निर्भर है कि खाने वाले की आर्थिक अवस्था कैसी है। कुछ लोगों के लिए शायद यह क्रम ठीक और उपयुक्त हो--

सबेरे--अंकुर निकले चने का नाश्ता। इसमें थोड़ी किशमिश या ऋतु के अनुसार थोड़ा खीरा या अमरूद भी मिलाया जा सकता है।

दोपहर--चावल या रोटी, दाल, भाजी, दही।

शाम--रोटी, भाजी और एक तरह का मीठा सूखा फल (मुनक्का या अंजीर या खजूर या छुहारा)

अच्छा है कि सुबह से ६ बजे तक कुछ न खाया जाय। बिना भूख के खाया हुआ अमृत भी विष का काम करता है और बहुतों के सच्ची भूख लगती ही नहीं।

नाश्ते में अन्न की चीज़ें खाना रोगों को न्योता देना है। अक्सर अन्न का ही व्यवहार नाश्ते में किया जाता है। कहीं डबल-रोटी-मक्खन, कहीं पूरी-कचौरी, कहीं दाल सेव और कहीं पकौड़ी की बहार नाश्ते में चलती है। यह हानिकारक सिद्ध होता है। दिन भर में ४ बार अन्न के व्यवहार से खून में खटाई आती है। अगर फल-दूध मिलना कठिन हो तो अंकुरित चना या मूंग या मसूर का व्यवहार किया जा सकता है।

तो क्या पकवान, मिठाई इत्यादि पदार्थ कभी न खाए जायें? सच पूछिए तो यह चीज़ें आदमियों के खाने की नहीं हैं। इन्हें सिर्फ़ देवताओं को दिखा सकते हैं! पर जब कभी दिन के भोजन के साथ घर की बनी एक-दो अच्छी मिठाई आ जाय तो खाई जा सकती है। लेकिन सब मिला कर भोजन की मात्रा ज़्यादा न हो। दावत के समय कभी-कभी पूरी पकवान अन्दाज़ से खा सकते हैं, वह भी अगर कोई बीमारी नहीं है तो। इन्हीं पकवान और मिठाइयों के कारण हम बार बार बीमार होते हैं और अपनी

शक्ति, समय और रुपए बर्बाद (नष्ट) करते हैं। फिर महज़ जीभ के क्षणिक आनन्द के लिए इनके खाने से क्या लाभ ?

कुछ लोग कहेंगे कि ऊपर बताए ढंग से भोजन करने का क्रम बता कर मैंने जीवन के सारे आनन्द छीन लिये। उनसे मैं कहूँगा कि वे खुद ही सोचें--सभी तरह के खाना खाते हुए बीमार रहना वे पसन्द करेंगे या परहेज़ से खाते हुए बहुत दिनों तक निरोग और हट्टा-कट्टा बना रहना ? अपने देश में जो लोग सिर्फ़ दो समय रोटी, दाल या भाजी या सिर्फ़ रोटी खाते हैं वे कैसे तगड़े बने रहते हैं ! बीमार तो वे ही होते हैं, जो अपने भोजनों पर बहुत रुपए खर्च करते हैं।

अगर कोई सब तरह की चीज़ें खाता-पीता हुआ निरोग और हट्टा-कट्टा बना रहे या सब चीज़ें खाते हुए रोग को दूर कर सके तो मेरी उससे हर्गिज़ लड़ाई नहीं है, पर ऐसा होता कहां है। कठिनाई तो यह है कि जो लोग साधारण भोजन भी अच्छी तरह पचा नहीं सकते वे भी चिकित्सा के दिनों में सब कुछ खाना चाहते हैं--संयम की सलाह पर नाक सिकोड़ते हैं। अगर असंयम के साथ-साथ स्वास्थ्य बनाए रखना संभव होता तो सभी चिकित्सक असंयम की ही सलाह देते।

इन दिनों यूरप-अमेरिका में जो भोजन-सुधार चला है वह बड़े मार्के का है। उसके अनुसार लोग इस तरह खाते हैं :--

लगभग ८ बजे सुबह--ताज़े फल और दूध।

लगभग १-३० बजे दिन--कच्ची सब्जियों का सलाद, काफी मात्रा में; चोकरदार आटे की डबल रोटी और मक्खन। कुछ सूखे मीठे फल।

लगभग ७ बजे शाम--एक या दो पकी हरी भाजी; गोश्त, मछली, अंडे में से कोई एक चीज़। जो मांसाहारी नहीं हैं वे पनीर या बादाम-अखरोट इत्यादि सूखे मेवे खाते हैं।

इस तरह के भोजन में श्वेतसार, प्रोटीन, चिकनई, विटामीन और प्राकृतिक लवण * सभी कुछ मिलते हैं। अपने देश में काम करने के समय कुछ ऐसे ऊट-पटांग हैं कि यह क्रम नहीं चल सकता। इसलिए मैंने ६ बजे सुबह, ३-३० बजे तीसरे पहर और ७-३० बजे शाम के समय रखे हैं। लेकिन

* इन पदार्थों के बारे में आगे बताया जायगा।

अगर हम भी ऊपर बताए ढंग से वे ही या वैसी ही चीजें खायें तो बहुत अच्छा हो। डबल रोटी के बदले हम अपनी हिन्दुस्तानी रोटी खा सकते हैं।

(४) खाना खाने और पानी पीने के समय अलग अलग होने चाहिए—भोजन के साथ पानी या बहुत मात्रा में कोई भी रसदार पदार्थ पीने से पेट में कीचड़ सा बन जाता है। इस कीचड़ पर पेट के अन्दर निकलने वाले पाचक रसों का असर पूरा पूरा नहीं पड़ता, जिससे बदहज़मी, कब्ज और बहुत सी और बीमारियां धीरे धीरे होती हैं। इसी नियम के अनुसार भोजन के साथ दूध, बहुत रसे वाली तरकारी, बहुत पतली दाल, मठा इत्यादि खाना अच्छा नहीं है। खीर भी स्वास्थ्य-प्रद भोजन नहीं है। दूध अगर किसी पदार्थ के साथ-साथ लिया जा सकता है तो केवल फलों के साथ।

भोजन के कम से कम दो घंटे बाद जी खोल कर पानी पीना चाहिए। जानवर भी अपने खाने और पानी पीने के समय अलग अलग रखते हैं। थोड़े अभ्यास से ही आप भोजन के समय पानी पीना बन्द कर सकते हैं। अगर भोजन में मिर्च-मसाले या तेल की ज्यादती नहीं है और आप उसे अच्छी तरह चबाते हैं तो आप खुद ही खाने के समय पानी पीना न चाहेंगे। जब तक आदत न पड़ जाय तसल्ली के लिए खाने के समय थोड़ा पानी चूस सकते हैं।

बहुत सबेरे कुल्ला करने के बाद पानी पीने की आदत बहुत अच्छी है। यदि पांच बजे सुबह चारपाई छोड़ते हों तो चार बजे पानी पीकर एक घंटे तक फिर लेटे रहना या सो जाना और भी अच्छा है। सुबह के नियमित जलपान से आदमी बहुत सी बीमारियों से बच सकता है।

पानी बिना उबाला हुआ ही पीना चाहिए। हां, यदि जाड़ों में पानी बहुत ठंढा हो तो उसे ज़रा गुनगुना कर लेना चाहिए। या यदि सन्देह हो कि पानी विकार-युक्त है तो उसे अच्छी तरह उबाल कर छान ले और फिर ठंढा कर के पियो।

बहुत लोग बताते हैं कि खूब पानी पियो। यह भूल है। जिस तरह बिना भूख के भोजन करना ठीक नहीं उसी तरह बिना प्यास के पानी पीना ठीक नहीं। पानी भी उसी तरह पचता है जिस तरह कि भोजन, पर पानी के पचने में बहुत कम समय लगता है।

(५) खाई हुई चीज को गले के नीचे उतारने से पहले उसे खूब चबा लेना चाहिए—जब तक एक ग्रास लेई की तरह न हो जाय दूसरा ग्रास न लेना चाहिए।

दांत इसीलिए दिए गए हैं कि भोजन अच्छी तरह चबाया जाय, जिससे पचाने वाले रस उस पर अच्छा काम कर सकें। पेट में दांत नहीं हैं, इसलिए यदि मुंह में भोजन न चबाया गया तो वह पेट के अन्दर लोंदे की तरह पड़ा रहेगा। भोजन चबाते समय होठों को बन्द रखना चाहिए और चबाने का काम मजबूती के साथ पर धीरे धीरे करना चाहिए। खाते समय मुंह से आवाज़ न हो।

दूध, मठा और पानी को भी चूसने की तरह धीरे-धीरे (बिना मुंह से आवाज़ निकाले) पीना चाहिए।

(६) बिना भूख के कभी नहीं और कुछ नहीं खाना चाहिए--भोजन शरीर की अच्छाई के लिए किया जाता है और शरीर अपनी ज़रूरत को भूख के रूप में प्रकट करता है। अगर भूख न लगी तो समझना चाहिए कि शरीर को भोजन की ज़रूरत नहीं; ऐसी हालत में यदि भोजन का समय हो भी गया हो तो न खाना चाहिए। अगले खाने के समय तक सच्ची भूख लग जायगी और तभी आप लाभ के साथ खा सकते हैं।

बहुतों को झूठी भूख लगती है। अगर पेट में कुलबुली मचे, भूख लगकर तुरन्त बुझ जाय और भूख की हालत में कमज़ोरी या घबराहट या गुस्सा मालूम हो तो समझना चाहिए कि सच्ची भूख नहीं लगी है। सच्ची भूख में पेट में खालीपन नहीं मालूम होता, लेकिन फिर भी खाने की ज़ोरदार इच्छा होती है, तबीयत में ताज़गी बनी रहती है और सच्ची भूख बहुत देर तक बनी रहती है। झूठी भूख में सिर्फ़ पानी (सादा या नीबू के रस के साथ) पीजिए। इससे लाभ होगा।

(७) खाद्य-पदार्थ के विविध विभागों को जानिए और समझिए। फिर भी याद रखिए कि हर रोज़ के भोजन में ८० फ़ी सदी ऐसे पदार्थ हों जो क्षारमय हैं--खाद्य पदार्थ के विविध विभाग यों हैं :—

(अ) श्वेतसार, जिससे शरीर में गर्मी और फुर्ती आती है—गेहूँ, चावल, गुड़, चीनी, फलों की मिठास और ऐसी सभी चीज़ें, जिनके चबाने से सफ़ेद लेई सी बनती है और स्वाद में कुछ मिठास आ जाती है। आलू, घुइयां, (अरवी, पेकची), बंडा (कन्दा), सूरन (ओल, ज़िमींकन्द) और केले की गणना भी इसी में है। इनमें कुछ चीज़ें क्षारमय भी हैं, पर अनियमित रूप से खाए जाने पर यह सभी खटाई पैदा करती हैं।

(ब) प्रोटीन, जिससे मांस बढ़ता है और फुर्ती और ताक़त भी आती है––मांस, मछली, अंडा, दूध, दलहन, सेम, लोभिया और सूखे मेवे जैसे बादाम, काजू, अखरोट, पिस्ता इत्यादि। इनमें बिना उबाले दूध और छिलकेदार दालों को छोड़ सभी खटाई पैदा करनेवाले हैं। उबाले हुए दूध से भी खटाई पैदा होती है।

दूध कच्चा या बहुत हुआ तो एक उफान का पीना चाहिए। धूप में घूम-घूमकर घास चरनेवाली तनदुरुस्त गाय या बकरी का कच्चा दूध पीने से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। इन दिनों जो दूध में कीड़ों (जर्म्स) का डर बताया जाता है वह योंही है। गर्मी में भी कच्चे दूध के बर्त्तन को पतले कपड़े से छिपाकर एक बड़े पानी से भरे बर्त्तन के बीच हवा में रखने से कच्चा दूध ख़राब नहीं होता। अगर शुद्ध दूध न मिले तो दूध न पीना अच्छा है।

(स) चिकनई, जिससे शरीर में फुर्ती और गरमी आती है और चेहरा इत्यादि गड्ढे वाले स्थान भरे-पूरे मालूम होते हैं। चिकनई से शरीर के जोड़ों को फ़ायदा पहुँचता है और चमड़ा चिकना और सुन्दर मालूम होता है–घी, तेल, खोपरा (नारियल, गोला), बादाम और मूंगफली का कुछ हिस्सा अंडे की ज़र्दी (पीला हिस्सा)। अगर यह पदार्थ अन्दाज़ से खाए जायँ तो ख़ून में खारापन आता है। लेकिन घी या तेल में बना हुआ आटे का पकवान या पकौड़ी इत्यादि खटाई पैदा करने वाले हैं। घी को दाल और तरकारी के साथ अन्दाज़ से खाना चाहिए। बुरे घी से शुद्ध तेल अच्छा है। रोटी के साथ मक्खन का व्यवहार तनदुरुस्ती की हालत में बहुत अच्छा है।

चिकित्सा के समय रोगियों को घी-तेल से, जितना हो सके, बचाना चाहिए।

(द) विटामीन और खनिज लवण (क़ुदरती नमक), जिनसे ख़ून साफ़ होता है और रोगों से बचने की शक्ति मिलती है––पत्तीदार शाक-भाजी, ताज़े और सूखे मीठे फल, नीबू-संतरे की जाति के खट्टे फल। यह सभी क्षार बढ़ाने वाले हैं।

विटामीन कई प्रकार के हैं। इनमें से बहुत से आग की आंच से नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए भोजन के साथ या नाश्तों में कच्चे साग और ताज़े पके फलों का आधिक्य होना चाहिए।

साग-भाजी के पकाने में हल्की आंच से काम लेना चाहिए और बर्तन का मुंह ढक देना चाहिए। इकमिक (या और किसी) कुकर में पका भोजन तनदुरुस्ती के लिए अच्छा है, क्योंकि उस में भाप से भोजन तैयार होता है और कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता। उबालकर उसका पानी फेंकना न जाहिए। बहुत मसालों से भी तरकारियों के प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाते हैं। तनदुरुस्ती की हालत में थोड़ी हल्दी, धनिया और ज़ीरा के व्यवहार से ख़राबी न होगी, पर चिकित्सा के दिनों में सिर्फ़ ज़ीरा ही काम में लाना चाहिए। काली मिर्च से हरी मिर्च अच्छी है। दोनों में ख़राबी है, पर हरी मिर्च में विटामीन और खनिज लवण की मात्राएँ हैं। स्वस्थावस्था में बहुत थोड़ी मात्रा में हरी मिर्च ले सकते हैं, पर कोई भी मिर्च न लेना अच्छा है।

प्याज़ में बहुत गुण और थोड़े अवगुण हैं। अगर कोई धार्मिक विचार न रोकता हो तो थोड़ी मात्रा में प्याज़ खाना (तनदुरुस्ती की हालत में) अच्छा है। हरे प्याज़ की पत्तियों की भाज़ी, कच्ची या पकी, बहुत लाभदायक है।

(न) जल भोजन को पचाता है, शरीर से विकार निकालता है, खून को साफ़ रखता है और शरीर को अधिक गरम होने से बचाता है।

ऊपर की सूची से खाद्य-पदार्थ के सभी विभाग मालूम हो जायँगे और पहले बताए गए भोजन के नियमों से यह मालूम हो जायगा कि किन किन चीज़ों को किस तरह खाने से .ख़ून में क्षार की मात्रा काफ़ी रहेगी, जिससे रोग न होंगे और पहले से हुए रोग भी दूर हो जायँगे। यह क्षार और खटाई की बात अभी हाल में ही निकली है। प्रयोग से यह बहुत सच्ची साबित हो चुकी है। बहुत से पुराने आहार-शास्त्रियों को इसकी ख़बर नहीं है।

भोजन की मात्रा का ख़याल ज़रूर रखना चाहिए। एक बार इतना ही भोजन करना चाहिए कि पेट कसा हुआ न मालूम हो।

(८) कुछ प्रचलित खाद्य पदार्थों से बचना चाहिए।

सफ़ेद मैदे की बनी डबल रोटी (पाव रोटी), बिस्कुट, केक, पूरी, कचौरी और अंगरेज़ी मिठाइयों और पकवानों को न खाना चाहिए। इनका रिवाज आजकल बहुत बढ़ गया है। डाक्टर और अब वैद्य-हकीम भी डबल रोटी और बिस्कुट अपने रोगियों को देते हैं। यह चीज़ें हल्की ज़रूर हैं, पर न मालूम कब की और किस तरह बनी होती हैं। फिर मैदे की बनी होने

के कारण पेट में चिपकती हैं और कब्ज पैदा करती हैं। खाद्य-पदार्थ को तो ऐसा होना चाहिए कि जल्दी पच जाय और रुखड़ापन के कारण मलबाधक न हो। फलों, साग-सब्जियों, बिना छने आटे की रोटी और छिलकेदार दालों में यह गुण मौजूद हैं। अमरूद, सेव और नाशपाती जैसे फलों को, जिनके छिलके मुलायम हैं, बिना छीले ही खाना चाहिए। सफ़ेद डबल रोटी और बिस्कुट का रिवाज अब विलायत में कम हो रहा है, पर विलायत की दुम हिन्दुस्तान में वहां की छोड़ी हुई चीजें भी बहुत दिनों तक जारी रहती हैं।

साबूदाना (सागूदाना) और बार्ली के पथ्य में कुछ तत्त्व नहीं है। बार्ली तो किसी क़दर अच्छी भी है, पर साबूदाना तो किसी काम का नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा में पहला पथ्य फलों के रस या तरकारियों के सूप से, दूसरा पथ्य दूध या हल्के रसदार फल और पत्तीदार भाजियों से और तीसरा पथ्य रोटी-भाजी या दलिया-भाजी से दिया जाता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, फलों के रस और तरकारी के सूप पेट भी भरते हैं और साथ ही साथ दवा का भी काम करते हैं।

अगर पतले दस्तों की बीमारी हो तो साबुत बार्ली का पानी नमक के साथ या पतला मठा ३-३ या ४-४ घंटे पर पिला सकते हैं।

आज कल टिन के डिब्बों में बन्द बहुत से बे-मौसम के फल मिलते हैं। इसी तरह शर्बतों की बोतलें भी मिलती हैं। अंगरेजी पढ़े-लिखे शौकीन इन फलों और शर्बतों को बड़े चाव से खाते-पीते हैं। इनके प्राकृतिक गुण सभी नष्ट हो जाते हैं और इनमें चीनी की मात्रा अधिक रहती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनका इस्तेमाल भी न करना चाहिए।

भोजन के मामले में जितनी सादगी बर्ती जाय, खाद्य पदार्थ का रूप संभवतः जितना प्राकृतिक हो और एक भोजन में एक साथ खाने के लिए जितनी कम चीजें हों भोजन उतना ही हितकर और स्वास्थ्य-प्रद होगा।

(६) भोजन पचाने के भार से कभी-कभी पेट को छुट्टी देना चाहिए—कहने का तात्पर्य है कि तनदुरुस्ती बनाये रखने के लिए कभी-कभी उपवास करना जरूरी है। पेट ही शरीर के अन्दर का इंजन है। उसे कभी छुट्टी नहीं मिलती। अधिकांश लोग अपने इस इंजन से, सोने के छः सात घंटों के सिवा, बराबर ही काम लेते रहते हैं। इसी से कुछ ही दिनों में यह इंजन मंद हो जाता है और आगे चलकर बुरी तरह बिगड़ जाता है।

सच पूछिए तो साधारणतः अच्छे जीवन में, जिसमें मनुष्य अन्दाज़ से और नियमानुसार खाता है, उपवास की बिलकुल ज़रूरत नहीं, पर खाने-पीने की जैसी मामूली हालत जारी है उसमें तो बिना बीच बीच के उपवास के काम नहीं चल सकता। अगर आप अपनी तबीयत से .खुशी .खुशी उपवास न करेंगे तो प्रकृति आपके शरीर में रोग पैदा करके आप से ज़बर्दस्ती उपवास करावेगी। अब आप तय कर लीजिए कि आप अपनी तबीयत से उपवास करेंगे या ज़बर्दस्ती प्रकृति के दबाव से।

बीमार न रहने पर भी महीने में दो-चार उपवास कर लेना बहुत अच्छा है। हमारे देश में एकादशी, इतवार इत्यादि दिनों को व्रत करने, या रमज़ान में रोज़ा रखने की प्रथा बहुत अच्छी है, पर अक्सर लोग दिन भर भूखे रहने के बाद शाम को पेट भरकर पकवान-मिठाई उड़ाते हैं। इससे भलाई के बदले नुक़सान होता है। मेरी राय में यदि इतवार को सिर्फ़ फलाहार किया जाय और दोनों एकादशी को २४ घंटे का उपवास किया जाय तो बहुत अच्छा हो। ऐसा करने से आदमी थोड़ी बहुत बदपरहेज़ी करता हुआ भी, जो नहीं करना चाहिए, निरोग रहेगा और बहुत दिनों तक सुख से जिएगा। पूरे उपवास के बाद दूसरे दिन सुबह को एनीमा लेना अच्छा है और एक दिन के भी उपवास के बाद का पहला भोजन बहुत हल्का होना चाहिए--कुछ फल और दूध या एक रोटी और थोड़ी पकी हरी भाजी।

उपवास से पेट को आराम मिलता है, जिससे उसकी शक्ति फिर से नई हो जाती है; साथ ही .खून साफ़ होता है, जिससे रोग की संभावना कम हो जाती है। जो लोग चेचक या महामारी के दिनों में टीका लगवाकर ज़हरीले पदार्थों से अपने .खून को दूषित करते हैं वे यदि बीच-बीच में नियमानुसार उपवास करें तो उन्हें यह या कोई छूत का रोग कभी न हो। साफ़ .खून वाले को छूत के रोग लगते ही नहीं।

साल में एक बार--होली या दशहरे के बाद, हो सके तो दोनों बार, अपने पेट को लगभग एक महीने के लिए आराम देना चाहिए। पहले तीन दिन का उपवास, जिसमें दिन में ३-४ बार पानी के साथ नीबू का रस और सुबह शाम दोनों समय एनीमा लिया जाय; फिर चार दिन तक दिन में तीन बार फलों के रस या तरकारियों के सूप या मठे पर रहना और दिन में एक बार एनीमा लेना; फिर एक सप्ताह तक (जिसमें भी हर रोज़ एक बार एनीमा ले सकते हैं) दिन में तीन बार सिर्फ़ फल या पकी हरी भाजी

पर रहना; तीसरे सप्ताह में बिना एनीमा लिये हुए फलों के साथ-साथ थोड़ा दूध लेना और चौथे सप्ताह में एक समय रोटी और पकी हरी भाजी (दाल नहीं) और दो बार फल खाना--इस तरह की एक महीने की क्रिया से पहले तो कुछ दुबलापन आयगा लेकिन फिर दो-तीन हफ़्ते में ही शरीर तगड़ा बन जायगा। इस तरह शरीर हर साल नया हो जाया करेगा, किसी तरह के भी रोग पास नहीं फटकेंगे, बुढ़ापा दूर हो जायगा, मरने के दिन दूर हो जायंगे, चेहरा सुर्ख देख पड़ेगा और इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग का आनन्द मिलेगा।

उपवास से बहुत से लोग बहुत डरते हैं। आजकल अंगरेज़ी सभ्यता के दिनों में, जब कि दिन में चार-पांच बार डट-डटकर खाना धर्म सा हो हो गया है, उपवास के नाम से ही लोग घबराते हैं। डाक्टर लोग तो रोग की हालत में भी ताकत बनाये रखने के लिए सभी तरह के भोजन देते हैं। इसी से लोगों के दिलों में उपवास के बारे में भ्रम हो गया है। पर अनुभव कहता है कि उपवास से किसी प्रकार का डर न होना चाहिए। स्वयं लेखक के परिवार में, जहां कुछ वर्षों से औषधि का व्यवहार नहीं होता, छोटे-छोटे बच्चे भी हँसते हँसते उपवास कर लेते हैं। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि लेखक के परिवार में पहले की अपेक्षा बीमारी कम हो गई है।

उपवास में पहले दिन भोजन का कुछ लालच बना रहता है। दूसरे दिन कमज़ोरी मालूम होती है और तीसरे दिन यह कमज़ोरी बढ़ जाती है। साथ ही जीभ (ज़बान) मैली हो जाती है, और मुंह और शरीर से बदबू निकलने लगती है। इसका कारण यह है कि पाचन-क्रिया के बन्द हो जाने के कारण शरीर अपनी सारी शक्तियों को सफ़ाई के काम में लगा देता है। शरीर के रग-रेशे, कोष और मांसपेशियों से विकार निकल-निकलकर ख़ून में आते हैं और कुछ आंतों में पहुंचते हैं। ख़ून फेफड़े में जाकर सांस के साथ आई हुई आक्सीजन से साफ किया जाता है। पर भोजन बन्द कर देने से पेट और आंतें कमजोर पड़ जाती हैं और अक्सर पाख़ाना होना बन्द हो जाता है। इसलिए ज़रूरी है कि उपवास की हालत में एनीमा-द्वारा पेट साफ़ किया जाय। यदि पहले ही दिन से सुबह-शाम दो बार एनीमा लिया जाय तो कमज़ोरी और घबराहट नहीं या बहुत कम मालूम होगी। उपवास के चौथे या पांचवें दिन कभी कभी सातवें दिन से फिर ताक़त मालूम होने लगती है और तबीयत पहले से कहीं अच्छी और ताज़ी मालूम होती है।

जो आदमी बहुत कमजोर नहीं है वह सात दिन का उपवास बिना भय के कर सकता है और उससे लाभ उठा सकता है। पर पहले तीन दिन के उपवास से ही शुरू करना चाहिए। फिर दो या तीन महीने के बाद सात दिन का उपवास किया जा सकता है। तीन दिन का उपवास तो हर कोई कर सकता है और इसमें किसी तरह का नुकसान नहीं है। किसी किसी रोग में बहुत लम्बे उपवास की जरूरत पड़ती है, जिससे रोग बिल्कुल निर्मूल हो जाता है। लेकिन लम्बा उपवास किसी अनुभवी की देख-रेख में करना चाहिए। और कोई बात नहीं है, सिर्फ कभी कभी तबीयत घबराती है। हां, कई छोटे छोटे उपवासों के बाद आदमी एक लम्बा उपवास खुद ही कर सकता है।

जिसके शरीर में ज़्यादा विकार है, या मांसाहार के कारण बहुत दूषित पदार्थ इकट्ठे हो गये हैं उसे उपवास से विशेष कष्ट होता है। इसका कारण यह है कि शरीर को बहुत विकार निकालने के लिए चेष्टा करनी पड़ती है। ऐसे लोगों को चाहिए कि वे उपवास के लिए अपने शरीर को तैयार करें—पहले सप्ताह में दिन में सिर्फ़ दो बार भोजन (रोटी-साग, नाश्ता इत्यादि नहीं), दूसरे में एक बार रोटी-साग और दो बार फल, तीसरे में दिन में सिर्फ़ तीन बार फल और चौथे में तीन-चार बार फल का रस। इन दिनों हर रोज एनीमा लेना चाहिए। इस तरह शरीर को धीरे-धीरे अभ्यास कराने से शरीर उपवास के लिए तैयार हो जाता है। ऊपर का क्रम चलाने से ही बहुत से रोग जाते रहते हैं।

उपवास के बाद, जैसा कि पहले कई बार दुहराया गया है, बहुत धीरे धीरे अपने मामूली भोजन पर आना चाहिए। तीन दिन के उपवास के बाद चौथे दिन सिर्फ़ तीन बार फल के रस या तरकारी का सूप, पांचवें दिन एक बार रस या सूप और दो बार फल या भाजी, छठे दिन तीनों बार फल या भाजी, सातवें दिन एक भोजन में रोटी सब्ज़ी—इस तरह धीरे धीरे भोजन की मात्रा बढ़ानी चाहिए। याद रखिए उपवास का ख़तरा उपवास के दिनों में नहीं बल्कि उपवास तोड़ने के दिनों में है।

उपवास में चुपचाप बैठे या लेटे रहना न चाहिए। अगर नई (तीव्र) बीमारी में उपवास करना पड़ता है तो आराम करना ज़रूरी है, पर यदि तनदुरुस्ती को तरक्की देने के लिए या किसी जीर्ण रोग में, जिसमें चलना-फिरना बन्द न हुआ हो, उपवास किया जाय तो अपना मामूली काम जारी

रखना चाहिए और शक्ति भर कसरत करनी चाहिए या टहलना चाहिए। इसका खयाल रखना चाहिए कि थकान न हो। कुछ हालतों में लेटे रहना ही अच्छा होता है। शरीर की शक्ति समझ कर काम करना चाहिए। कभी कभी बैठे रहने के बाद उठने से सिर चकराता है। इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। हां, झोंके से उठना-बैठना न चाहिए।

इस किताब में लम्बे उपवास के बारे में कोई खास बात नहीं कही जा रही है। पर दो-तीन छोटे उपवास के बाद एक लम्बा उपवास करने की योग्यता खुद ही आ जाती है। दूसरी बात यह है कि लम्बा उपवास या छोटा उपवास भी तभी करना चाहिए, जब यह निश्चय हो जाय कि अब असंयम न होगा। उपवास करना, फिर छूटकर खाना-पीना, फिर उपवास करना मानों शरीर को खींच-तान की हालत में रखना है, जिससे हानि छोड़ कर लाभ नहीं होता। साधारणतः अच्छी तरह लेकिन संयम के साथ खाने-पीने की आदत डालना कठिन न होना चाहिए।

पेट को आराम देने के लिए पूरे उपवास के अलावा और कई तरीके हैं:—

(१) तीन चार दिन या एक सप्ताह फल के रस पीकर ही रह जाना। इस हालत में भी एनीमा जरूरी है। ऐसे अर्द्ध उपवास से भी बहुत लाभ होता है।

(२) पन्द्रह बीस दिन हल्के फल या पकी हरी भाजी पर ही रह जाना। इसमें जब कभी एनीमा लेने की जरूरत पड़ती है। लेखक ने गठिया के अनेक रोगियों को महीना डेढ़-महीना सिर्फ़ फल ओर तरकारी खिलाकर ही आराम किया है।

किसी किसी के पेट में एक-ब-एक के फलाहार से गड़बड़ी होती है। इसका कारण यह है कि पहले से आंतों के अन्दर के सड़ते हुए पदार्थ फलों से और भी विकृत हो उठते हैं। ऐसे आदमियों को दो-तीन दिन के उपवास या रसाहार और एनीमा प्रयोग के बाद पहले पकी हरी (मुलायम) भाजी और तब फलाहार शुरू करना चाहिए।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई फल गुणदायक होते हुए भी किसी के अनुकूल नहीं होता। ऐसी हालत में कुछ दिनों के लिए उस फल को छोड़ देना चाहिए। फल जिसके अनुकूल न हो उसे सिर्फ़ पकी भाजी खाकर कुछ दिन रहना चाहिए और हर रोज एनीमा लेना चाहिए। फिर धीरे धीरे फलों पर आना चाहिए।

(३) दिन में तीन-चार बार मठा या दूध पीकर ही रहना। केवल इस दूध या मठा के भोजन से सभी प्रकार के पुराने रोग अच्छे होते हैं। दूध या मठे की मात्रा पर ध्यान रखना चाहिए। शुरू शुरू में एक बार तीन छटांक ही काफ़ी है। दूध में शहद मिला सकते हैं, चीनी या मिश्री नहीं। अगर पतले दस्त आने की या कमज़ोर पाचन-शक्ति की शिकायत है तो कुछ दिन मठा पीने के बाद दूध शुरू करना ठीक होता है। निरा दूध का भोजन शुरू करने से पहले दो तीन दिन उपवास करना और उपवास के दिनों में एनीमा लेना ज़रूरी है। दूध असल और कच्चा हो। मठे को भी अच्छा, घी-रहित और मीठा (या कम खट्टा) होना चाहिए। इस तरह के डेढ़ दो महीने के भोजन से न सिर्फ़ रोग ही जाते हैं बल्कि मोटे आदमी कुछ दुबले और दुबले आदमी कुछ मोटे हो जाते हैं। दूध या मठा पीने के दिनों में जब-कभी एनीमा लेने की जरूरत पड़ती है।

(४) एक बार एक ही चीज़ खाना, जैसे आज सुबह को सिर्फ़ रोटी, शाम को केवल भाजी; कल सुबह को हरे चने, शाम को आलू-गोभी की तरकारी; परसों सुबह को अमरूद, शाम को रोटी..... । इस तरह पेट को आराम देना उसके लिये अच्छा है, जिसे कोई सख्त तकलीफ़ तो नहीं है लेकिन जो कुछ भी है उसे दूर कर स्वास्थ्य को बढ़ाने की आवश्यकता है।

* * * *

अन्त में यह बताना मैं जरूरी समझता हूँ कि अवसर के अनुसार भोजन होता है। चिकित्सा के दिनों के भोजन कुछ और हैं और तनदुरुस्ती के दिनों के कुछ और। चिकित्सा के दिनों के भोजन में शरीर के विकार निकालने की शक्ति रहती है न कि शरीर को पुष्ट करने की। मिसाल के लिए, दूध पुष्टिकारक है न कि विकार निकालने वाला। ताज़े फल और सब्ज़ी (ज़्यादातर कच्ची ही) विकार निकालने वाले भोजन हैं।

खाद्य पदार्थ*

भोजन के बारे में बहुत कुछ बताया जा चुका है, लेकिन यह विषय इतना जरूरी है कि इस संबंध में कुछ और बातें बताई जाती हैं। और पुरानी बातें भी दुहराई जा रही हैं।

अबूक-चिकित्सा-विधि में भोजन के बारे में जो खयाल है वह दूसरी चिकित्सा-विधियों के खयाल से कुछ भिन्न है। उदाहरण के लिए, कुछ चिकित्सक बुखार इत्यादि के बाद मूंग की दाल के पानी का पथ्य देते हैं। कुछ लोग बुखार में ही या बुखार के बाद दूध साबूदाना देते हैं। इसी तरह बीमारी के अच्छा होते ही खिचड़ी का पथ्य दिया जाता है। अक्सर लोग फलों से डरते हैं और कहते है कि उन से ठंड लग जायगी। फिर हैजे के दिनों में भाजी खाना मना किया जाता है। इसी तरह के बहुत से विचार हैं, जिनसे अबूक-चिकित्सा-विधि वाले मतभेद रखते हैं।

पहली बात तो यह है कि नये रोगों में कुछ भी खाने को न देना चाहिए, लेकिन अगर रोग ज्यादा दिन चले तो फलों का रस देना चाहिए। रोग के अच्छा हो जाने पर एक-दो दिन तक रोगी को रसों पर ही रखकर उसके अलावा थोड़ा-थोड़ा दूध देते हैं। फिर एक दो दिन फल या भाजी और तब रोटी-भाजी या चावल-भाजी देते हैं। दाल तभी शुरू कराते हैं जब कि रोगी की पाचन-शक्ति अच्छी हो जाती है।

अबूक-चिकित्सा-विधि से रोग की अवस्था में अगर कुछ भी खाने को दिया जाता है तो वह सिर्फ़ इसी विचार से कि खून को ठीक करने के लिए रोगी को प्राकृतिक लवणों (नमक) के रूप में जरूरी दवाइयां मिल जायँ और साथ ही पचाने में भी बहुत शक्ति न लगे। यह लवण फल और भाजी से अच्छी तरह मिलते हैं।

फल—

फलों में नींबू और नींबू की जाति के सभी फल, जैसे सन्तरे, मीठे नींबू, मौसंबी, चकोतरे, अच्छे हैं। मकोइया (रसभरी) और अनन्नास का गुण

---

* इस लेख का कुछ अंश (पहले लेखक द्वारा संपादित) 'जीवनसखा' पत्र में प्रकाशित, लेखक के एक लेख से लिया गया है।

भी क़रीब क़रीब वैसा ही है। यह कुछ खट्टे होते हैं तो भी खून की खटाई को दूर कर उसमें खारापन लाते हैं। सभी बीमारियों में इनके रसों का इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन जो बहुत कमज़ोर हैं या जिनके बहुत खट्टी डकार आती है या जिन्हें वीर्य-दोष है उन्हें खट्टे फलों से या तो परहेज़ करना चाहिए या उनका इस्तेमाल थोड़ी मात्रा में करना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि कब गरम पानी के साथ, कब ठंडे पानी के साथ और कब बिना पानी के ही नींबू के रस को पी सकते हैं। जुकाम-खांसी में नींबू के रस में पहले कुछ सर्दी या खांसी बढ़ी सी मालूम हो सकती है, लेकिन उससे फ़ायदा छोड़कर नुकसान नहीं हो सकता। नींबू के रस को पानी के साथ या वैसे ही ज़ख्म या फोड़े-फुंसी पर बहुत फ़ायदे के साथ लगाया जा सकता है। यह कुछ चुभेगा, लेकिन जितना टिंक्चर आॅयडीन (tincture iodine) चुभता है उससे ज़्यादा न चुभेगा और उससे ज़्यादा लाभ पहुँचायेगा।

और रसदार फल अनार, अंगूर, टमाटर, गन्ना हैं। इनमें अनार और टमाटर के रस प्रायः सभी हालतों में सब रोगियों को दे सकते हैं। खट्टे अनारों का इस्तेमाल न करना चाहिए, लेकिन सुर्ख (लाल) कंधारी अनारों का इस्तेमाल खांसी की हालत को छोड़ कर और सभी हालतों में कर सकते हैं।

खट्टे फलों के रस में खांसी बढ़ी सी मालूम होती है। अगर उससे कष्ट बढ़े तो मीठे फलों का रस काम में लाना चाहिए। लेकिन जुकाम के शुरू होते ही नींबू के रस का प्रयोग ज़रूर करना चाहिए।

अंगूर और गन्ने में चीनी की मात्रा ज़्यादा है, इससे उनके पचने में ज़्यादा देर लगती है। रोग के चले जाने पर ही इनके रसों को देना ठीक है। नये रोग के दूर होते ही अंगूर का रस दे सकते हैं। मात्रा का भी ख़याल रखना चाहिए। सन्तरे या टमाटर का रस अगर एक बार दो छटांक दिया जा सकता है तो अंगूर का रस एक ही छटांक देना चाहिए।

सेब और नाशपाती को कुचलकर भी रस निकलता है। इसे अनार के रस की तरह समझना चाहिए।

छोटे छोटे पके बीजू (चूसने) आमों का रस पुराने रोग वालों के लिए बहुत फ़ायदेमंद है लेकिन एक-दो दिन देकर देख लेना चाहिए कि कष्ट बढ़ तो नहीं रहा है। नये रोगों में रोग के चले जाने पर ही आम का रस देना चाहिए।

जामुन का ताजा रस भी बहुत लाभ के साथ नये और पुराने रोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है, लेकिन जिसके शरीर में बहुत खटाई है उसे शुरू-शुरू में कुछ कष्टकर हो सकता है। बात यह है कि व्यक्तिगत विशेषता और आवश्यकता को भी देखना होता है।

इसके बाद गूदेदार फलों का नम्बर आता है, जैसे तरबूज, खरबूजा, शरीफ़ा, शहतूत, जामुन, अनन्नास, पपीता, देसी आम इत्यादि। इनको नये रोग के बाद या पुराने रोगों में इस्तेमाल करते हैं। तरबूज किसी किसी को शुरू में कष्ट देता है, पर है यह अच्छा फल। फिर सख़्त फलों में खीरा, ककड़ी, मीठा सेब, नाशपाती, अमरूद इत्यादि हैं। खीरा और ककड़ी बहुत अच्छे हैं, लेकिन इनके पचने में देर लगती है।

जितने तरह के भी फल हैं, रसदार या गूदेदार या सख़्त, इन सबों का इस्तेमाल शक्ति देख कर पुराने रोगों में किया जा सकता है, लेकिन एक ही फल को एक बार इच्छा भर खाना चाहिए। पहले पके और रसदार फलों से शुरू करना चाहिए। कोई भी पुराना रोग सिर्फ़ फलाहार पर रह कर दूर किया जा सकता है। एक ही दिन में कई तरह के फल अदल-बदल कर खाये जा सकते हैं, जैसे सुबह को सन्तरे, दोपहर में अमरूद या गाजर या टमाटर और शाम को सेब (या किशमिश)।

सेब बहुत अच्छा फल है, लेकिन मँहगा जरूर है। फलाहार शुरू करने पर किसी किसी को क़ब्ज रहने लगता है। ऐसे लोगों को कुछ दिनों तक लगातार एनीमा लेना चाहिए। एनीमा तब तक लिया जाय जब तक कि खुद-ब-खुद पाख़ाना साफ़ न आने लगे।

सेब, नाशपाती, अमरूद जैसे मुलायम छिलकेवाले फलों के छिलके को न फेंकना चाहिए।

केला और कटहल का इस्तेमाल रोग की हालत में न करना चाहिए। लेकिन केला वैसे बहुत गुणकारी है। जब कोई खास रोग न रहे तो ताक़त और वजन बढ़ाने के लिए केले का प्रयोग बहुत अच्छा है। इसके साथ दूध भी लिया जा सकता है। यूरप-अमेरिका वाले केले के साथ दूध मना करेंगे, पर दोनों के मेल से कोई सच्ची ख़राबी नहीं होती। हां, इसके खाने के पहले और बाद काफ़ी अन्तर होना चाहिए। दिन के भोजन में केला-दूध ही लेना बहुत अच्छा होगा। कमज़ोर लडके-लडकियों को तो केला जरूर देना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं

कि केले से कब्ज होता है। पर कब्ज तो कमजोरी में होता ही है। उसकी परवाह न करनी चाहिए।

सूखे फलों में किशमिश, मुनक्के, अंजीर और पिनखजूर का इस्तेमाल तो नये रोग के बाद या पुराने रोगों में जरूर कर सकते हैं, लेकिन बादाम, अखरोट, काजू, पिस्ता, मूंगफली इत्यादि का इस्तेमाल पुराने रोगों में भी पहले नहीं करते। नारियल की गिरि बहुत अच्छी होती है। इन गिरीदार मेवों को गाजर या टमाटर या अमरूद या सेब जैसे ताजे फलों के साथ खाना चाहिए--नाश्ते की तरह नहीं, एक समय के भोजन की तरह।

जो फल ऊपर बताये गये हैं उनके अलावा कुछ और भी फल हैं। अगर वे पक जाने पर मीठे हो जाते हों तो उन सबों का इस्तेमाल पुराने रोग की हालत में किया जा सकता है। इतना जरूर याद रखना चाहिए कि नये रोगों में सिर्फ़ रस दिया जाता है। पुराने रोगों में कुछ दिनों की सफ़ाई के बाद सबेरे हलका फल और दूध, दोपहर में रोटी-भाजी और रात में फिर सेब या गाजर या नाशपाती या अमरूद के साथ ४–६ दाने बादाम या काजू का खाना अच्छा क्रम है। यह जीवन भर चल सकता है।

भाजी-तरकारी--

नये रोगों में सिर्फ़ इनका रस (सूप) देना चाहिए, लेकिन फलों के रस ज्यादा अच्छे होते हैं। सूप में नमक देने की जरूरत होती है, और नमक रोग के दिनों का पदार्थ नहीं है। पुराने रोगों में यह फल के बदले या फल के साथ अदल-बदल कर दी जा सकती है, लेकिन यह कह देना जरूरी है कि तरकारी से फल ही अच्छे होंगे। फिर भी जहां फल न मिलें या अच्छे न मिलें वहां साग-भाजियों से वही काम निकल सकता है। पुराने रोगों में सिर्फ़ तरकारी खाकर ही रहा जा सकता है। इनको पकाने की तरकीब जाननी चाहिए। सब से अच्छी तरकारी वह होती है जो भाप से पकाई जाती है, जैसे इकमिक कूकर (icmic cooker) में। अगर यह न हो सके तो किसी बड़े बर्त्तन में पानी खौलाना चाहिए और उसी में तरकारी से भरे एक डब्बे या कटोरदान को, जिसका मुंह बन्द हो, छोड़ देना चाहिए। उस बड़े बर्त्तन को भी ढक देना चाहिए। खौलते पानी की गरमी से डब्बे के अन्दर की भाजी चुर जायगी। अगर यह भी न हो सके तो धीमी आंच पर और बर्त्तन का मुंह बन्द कर तरकारी पकानी चाहिए।

लौकी, नेनुआ, तरोई, परवल इत्यादि भाजियों के छिलके मुलायम होते हैं। उन्हें फेंकना न चाहिए। हां, अगर कोई रोगी ऐसा है, जिसकी पाचन-शक्ति बहुत ज्यादा कमज़ोर हो गई है, या जिसको पतले दस्त आते हों, या खाते ही पेट में किसी तरह की तकलीफ़ होती हो तो उसके लिए इन भाजियों के छिलके छीलकर और उन्हें ख़ूब अच्छी तरह गलाकर देना चाहिए। थोड़े दिनों के बाद छिलके सहित तरकारी पकाना और रोगी को खिलाना शुरू कर देना चाहिए। छिलकों में तनदुरुस्ती के लिए बहुत सी चीजें रहती हैं, लेकिन हम लोग सिर्फ़ दिखावे के लिए असली चीज को फेंक कर बेकार या कम फ़ायदे की चीज़ों को खाना अच्छा समझते हैं। आलू का छिलका कभी न फेंकना चाहिए।

पकाते समय तरकारी से निकला हुआ पानी भी न फेंकना चाहिए। उनमें बहुत-सी प्राकृतिक दवाइयां रहती हैं।

चिकित्सा के दिनों में पहले तरकारी में घी या तेल न पड़े। कुछ दिनों के बाद थोड़ा घी डाल सकते हैं। मसाले में सिर्फ़ जीरा। रोग के बहुत कुछ दूर हो जाने पर थोड़ी हल्दी, धनिया भी अच्छी तरह पीस कर छोड़ सकते हैं—बस, और किसी मसाले का इस्तेमाल न करना चाहिए।

भाजियों के दर्जे इस तरह हैं—

(१) पत्तीदार भाजी, जिसमें सभी तरह के साग, जैसे पालक, बथुआ, चौलाई, मर्सा (लाल साग), पोई, ऊगल, चने का साग, करमकल्ले (पात गोभी या बन्द गोभी) की पत्ती, मूली की पत्ती, शलजम की पत्ती, लेटिस इत्यादि आते हैं। इनकी तरकारी सब से ज्यादा लाभदायक है, क्योंकि इनमें प्राकृतिक नमक और प्रायः सभी तरह के विटामीन रहते हैं। लेकिन कुछ लोगों को हरा साग वायु करता है। ऐसे लोगों को चिकित्सा के दिनों में साग से परहेज रखना चाहिए। हां, सावन में भी सागों का इस्तेमाल सब को छोड़ देना चाहिए। चिकित्सा के दिनों में पहले हरी भाजी से शुरू करके फिर धीरे धीरे पत्तीदार भाजियों पर आना चाहिए, लेकिन इन्हें दिन में ही खाना अच्छा होगा।

इनमें से कुछ साग कच्चे खाये जा सकते हैं, जैसे पालक (नीबू के रस या दही के साथ, रोटी से पहले), चने का साग, करमकल्ला, मूली की पत्ती, लेटिस। कच्चा खाने से वायु नहीं होती या कम होती है।

(२) हरी भाजी, जैसे लौकी (लौआ, कदुआ), परवल, नेनुआ (परोर, गोंगरा, घीआ तरोई), तरोई (तोरी झिंगी), ककड़ी, भिंडी (राम तरोई),

करेला, बन-करेली (खेखसा, चठैल), टिंडा, चचिंडा (कैंता), सेम, लोभिया (बोंड़ा) इत्यादि। नये रोग के दूर होने के बाद ही और पुराने रोगों में इन भाजियों में से सेम और लोभिया को छोड़कर और सभी भाजियों को खा सकते हैं। इलाज के समय भिंडी और करेला का इस्तेमाल भी कम ही करना चाहिए। जब पुराने रोग आधे से ज़्यादा चले जायं तो कभी-कभी सेम और लोभिया खा सकते हैं।

टमाटर भाजी भी है और फल भी। टमाटर को आग पर पका कर खाना मानो उसको नष्ट करके खाना है। पके हुए लाल टमाटर तो कच्चा ही 'सलाद' के रूप में खाना (रोटी-भाजी से पहले) अच्छा है।

फूल-गोभी और गांठ-गोभी का स्थान हरी भाजियों में है। फूल-गोभी ज़रा वायुकारक (बादी) है। इसका इस्तेमाल तनदुरुस्ती की हालत में ही करना चाहिए। गांठ-गोभी का इस्तेमाल पुराने रोगों में कभी-कभी कर सकते हैं।

फूल-गोभी भी कच्ची खाई जा सकती है।

(३) कन्द भाजी, जैसे आलू, घुइयां (अरवी, पेक्ची), बंडा (कन्दा), सूरन (ओल, ज़िमीकन्द), रतालू (आर, खभार), शलजम, मूली, गाजर, चुकन्दर इत्यादि। इनमें शलजम, मूली, चुकन्दर और गाजर का इस्तेमाल नये रोग के बाद और पुराने रोगों में करना चाहिए। शलजम और मूली को उनकी जड़ के पास की मुलायम पत्ती के साथ पकाना चाहिए। मोटा मूली वायुकारक (बादी) होती है। रतालू भी कभी-कभी पुराने रोगों में खा सकते हैं। आलू पुराने रोगों में तभी खाना चाहिए जब कि रोग आधे से ज़्यादा दूर हो गया हो, वह भी कभी-कभी।

(४) कुछ और भाजियां, जैसे बैंगन (भंटा, बताऊँ), कोंहड़ा (कद्दू, काशीफल), टमाटर (जिसकी गिनती फलों में कर ली गई है), कच्चा केला इत्यादि। पके टमाटर के बारे में पहले कह चुके हैं। बैंगन बादी होता है और केला देर से पचता है। कोंहड़ा कुछ बादी है।

आलू और केले को रोटी के बदले खाना चाहिए। दो बड़े आलू या एक छोटा केला एक मामूली रोटी के बराबर है। अक्सर लोग रोटी-चावल के साथ आलू की बहुत तरह की तरकारियां खाते हैं। ऐसा करना कब्ज़ को निमंत्रण देना है। अगर आप चार रोटी खाते हैं और रोटी के साथ-साथ आलू की तरकारी भी खाना चाहते हैं या खाने के बाद पका केला खाना चाहते हैं तो ऊपर बताये अन्दाज़ से रोटी का नम्बर कम कर दीजिए।

आलू बहुत अच्छा और तनदुरुस्ती बढ़ाने वाली चीज़ है, लेकिन तनदुरुस्ती के दिनों में ही इसे खाना चाहिए।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, कुछ भाजियां कच्ची खाई जा सकती हैं, जैसे टमाटर, खीरा, ककड़ी, करमकल्ला, शलजम, लेटिस, चुकन्दर, फूल-गोभी, पालक, चने का साग, धनिया की पत्ती, पुदीने की पत्ती, मूली, मूली की पत्ती। इनको पकाना मानो इनकी जान लेना है। इनमें से तीन-चार भाजियों को पतला-पतला काटकर और एक साथ मिलाकर 'सलाद' (salad) बनाते हैं। इसमें नमक, नीबू का रस, घी या जैतून (olive) या सरसों के तेल की दो-चार बूंदें, अगर इच्छा हो तो, छोड़ सकते हैं। तनदुरुस्ती की हालत में सलाद में प्याज़, अदरख (आदी) और हरी मिर्च के चार छः टुकड़े भी छोड़ सकते हैं। ऊपर से नारियल की गिरी के पतले छिले हुए टुकड़े भी दे सकते हैं। सिरका न छोड़ना चाहिए। सिरका सड़ी-गली चीज़ है। उससे पहिले पचाने में आसानी तो होती है, लेकिन आगे चलकर मेदे और ख़ून पर बुरा असर पड़ता है। सिरके का सभी फ़ायदा नीबू के रस से मिल जाता है। सलाद में भरसक एक पत्तीदार भाजी ज़रूर हो। तनदुरुस्ती में और पुराने रोगों की हालत में सलाद हर रोज़ खाना चाहिए, क्योंकि इसके खाने से भाजी खाने का पूरा-पूरा लाभ ज़रूर मिल जाता है। पकाने से भाजियों का कुछ गुण ज़रूर नष्ट होता है।

फलों का भी सलाद बनता है। दो-तीन फलों या क्रीम के टुकड़ों को एक साथ मिला कर ऊपर से थोड़ा दूध या दही छोड़ देने से फल-सलाद बनता है।

अनाज—

(१) गेहूँ का आटा बहुत अच्छा है, अगर वह हाथ की चक्की से पीसा जाय और उसका चोकर न निकाला जाय। अगर हाथ की चक्की का पिसा आटा न हो तो मिल का ही सही, लेकिन चोकर न निकाला जाय। बहुत से पुराने रोगों में जिन रोगियों को फल की सुविधा न हो तो वे सिर्फ़ रोटी (गेहूँ या जौ की, और कुछ नहीं) खाकर ही अपना रोग दूर कर सकते हैं। इससे पेट भरता है, ताक़त बनी रहती है और रोग भी दूर होता है।

(२) चावल गेहूँ के बराबर है, अगर धान का छिलका निकालने के बाद चावल कूट-कूट कर साफ़ न किये जायं तो। चावल का मांड़ कभी न निकालना

चाहिए। रोटी और चावल को एक ही खाने में खाना अच्छा नहीं है। चावल की खराबी यही है कि उसका चबाना मुश्किल है और उसमें बहुत पानी है।

(३) दालों को छिलके के साथ ('साबुत' दाने की दाल) खाना चाहिए। अरहर की दाल जितनी कम खाई जाय अच्छा है। उड़द की दाल ताकत पैदा करने वाली पर बादी है। कमजोर मेदे वालों के लिए मूंग की दाल और साधारण तनदुरुस्ती वालों के लिए मसूर की दाल बहुत अच्छी है। मसूर ताक़तवर है, और साथ ही उतनी बादी नहीं है जितनी कि उड़द। दाल गाढ़ी बनानी चाहिए, जिससे कि उसके साथ खाये गये चावल या रोटी के चबाने में कठिनाई न हो। रात में दाल न खानी चाहिए। चालीस साल की उम्र लगते-लगते दालों का इस्तेमाल बहुत कम कर देना चाहिए। दाल तनदुरुस्ती के दिनों की चीज है।

मटर और चने को फ़सल के दिनों में हरा और कच्चा ही खाना चाहिए। तनदुरुस्ती के दिनों में दिन के भोजन में दिल खोलकर सिर्फ़ मटर या चना खाइए। मटर बादी है, लेकिन अकेली और कच्ची खाने से बुरा असर न होगा। सूखे चने भी अगर भिगोकर और उनके कल्ले (अंकुर) निकल आने पर खाये जायँ तो बहुत फ़ायदा हो। भुने चने खाने का रिवाज ठीक नहीं है। भुट्टे के दिनों में दिन के भोजन में किसी नाश्ते में नहीं, सिर्फ़ भुट्टे खाये जायँ तो नुकसान न होगा।

यह फिर दुहराया जा रहा है कि सभी को सब चीजें अनुकूल नहीं होतीं एक-दो दिन के प्रयोग से यह जाना जा सकता है कि क्या अनुकूल होता है और क्या नहीं। साथ ही यह भी है कि स्वस्थ और बलवान को प्रायः सभी चीजें अनुकूल होती है। इसलिए स्वस्थ और, बलवान बनना चाहिए न सिर्फ़ रोग-रहित।

दूध, दही, घी—

दूध के बारे में बहुत बहस है। दूध एक पूरी खूराक है। उसे हल्का न समझना चाहिये। किसी भी नये रोग में दूध का इस्तेमाल हानिकर होगा। पुराने रोगों में भी रोग के आधे से ज्यादा दूर होने पर दूध का व्यवहार करना चाहिए। दूध का मेल फलों के साथ ही अच्छा होता है। रोटी, चावल के साथ भरसक दूध न पीना चाहिए। रात में आठ-नौ बजे खाना खाकर सोते समय दूध पीने का रिवाज बहुत हानिकारक है। उससे न तो खाना ही पचता है न दूध।

खांसी की हालत में या जिन्हें बार-बार खांसी होती है या जिन्हें आंव या पेचिश की शिकायत रहती हो उन्हें दूध से परहेज करना चाहिये।

दूध अगर अच्छा मिल सके तो लेना चाहिए, नहीं तो उसके लिये चिंता करने की कुछ ज़रूरत नहीं। फिर दूध कच्चा ही पीना चाहिए अगर धूप में घूम घूमकर घास चरने वाली मामूली तनदुरुस्त गाय का दूध अच्छे बर्तन में दुहा जाय। कच्चा पीने में कुछ हर्ज नहीं है। औटने से दूध का गुण जाता रहता है। खीर, सेंवई अच्छी चीजें नहीं हैं। वे चबाई नहीं जा सकतीं। रबड़ी-मलाई खाना शरीर में रोग इकट्ठा करना है। ऐसी ऐसी चीज़ों को अगर त्योहार में ही कभी कभी खाया जाय तो बहुत बुरा न होगा।

गाय के दूध का मठा, घर का जमा हुआ जिससे मक्खन निकाल लिया गया है, दूध से हल्का और अपच रोग वालों के लिए दूध से ज़्यादा हितकर है। मठा से डरना न चाहिए। सुबह नाश्ते में मठा का व्यवहार अच्छा होता है। दूध या मठे में सफ़ेद चीनी नहीं, लाल शकर, गुड़ या शहद डालना चाहिए, वह भी जब कोई ख़ास रोग न हो। चीनी का इस्तेमाल बहुत बुरा है। बहुत से रोग उसी से होते हैं। दही अच्छी चीज़ है। तनदुरुस्ती के दिनों में खाने के साथ थोड़ी मात्रा में दही खाना अच्छा है। रोगियों को दही के बदले मठा ही लेना चाहिए। घी तनदुरुस्ती की हालत में दाल या तरकारी के साथ ले सकते हैं।

घोड़े, बैल इत्यादि काम करने वाले जानवर या शेर, चीते जैसे बलवान जानवर घी, दूध नहीं खाते पीते, फिर भी तगड़े बने रहते हैं। खुद गाय, जिसका दूध पिया जाता है, दूध नहीं पीती। सच पूछिए तो दूध या तो बचपन (जब दांत नहीं होते) या बुढ़ापे (जब दांत गिर जाते हैं) के दिनों का आहार है। फिर भी अगर नियम से दूध-घी लिये जायँ तो बहुत लाभ हो सकता है।

रोग दूर होने पर, और आंव की शिकायत जब किसी तरह न रहे तो, दूध के इस्तेमाल से तनदुरुस्ती बनती है।

* * * *

अगर सफ़ेद चीनी, सफ़ेद मैदा, सफ़ेद छटे चावल और बिना छिलके की दाल का इस्तेमाल छोड़ दिया जाय, घी में पके पकवान और मिठाइयों का इस्तेमाल बहुत कम कर दिया जाय, चाय, काफ़ी, कोको, ओवलटीन दिल से उतार दिया जाय और साथ ही नाश्ते में अन्न की चीजें बिलकुल न खाई जायँ तो रोग दूर या बहुत कम हो जायगा। अगर भोजन के परहेज के साथ कसरत नियमानुसार की जाय तो रोग हो ही नहीं।

* * * *

डाक्टर हेनरी लिन्डलहार

शिकागो (अमेरिका)-निवासी। इन्होंने ऐलोपैथिक डाक्टर होते हुए भी औषधि का व्यवहार छोड़ दिया और प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया। इन्होंने सिद्ध किया कि तीव्र रोग अपना चिकित्सक आप ही है

इन दिनों प्रायः सैकड़े निन्यानवे आदमियों का पेट किसी न किसी तरह ख़राब रहता है। ऊपर से देखने में वे भले-चंगे मालूम होते हैं, लेकिन सच्ची तनदुरुस्ती इनके पास नहीं होती। अगर ये सब तीन दिनों के उपवास और दोनों समय एनीमा प्रयोग के बाद एक महीने तक सिर्फ़ फल या भाजी या फल-दूध खाकर रहें और इन दिनों भी दिन में एक बार या जब ज़रूरत मालूम हो तब एनीमा लें तो शरीर करीब करीब नया सा हो जायगा। इसके बाद नियमित भोजन और कसरत से चार छः महीनों में ही वे पूरी तरह तनदुरुस्त और हट्टे-कट्टे हो जायेंगे। इस तरह का सालाना काया-कल्प प्रायः सभी २० साल से ज़्यादा उम्र वालों के लिए फ़ायदेमन्द होगा।

सभी पहलुओं से देखिये--

खाद्य पदार्थ की समस्या को सभी दृष्टिकोणों (पहलुओं) से देखना चाहिए। कुछ ज़रूरी बातें नीचे दी जाती हैं:--

(१) खाद्य पदार्थ ऐसा होना चाहिए कि शरीर को बल मिले और साथ ही शरीर के विकारों को निकाले। इस दृष्टिकोण से उसके विविध प्रकार इस तरह हैं--

(अ) तेज़ी से विकार निकालने वाले पदार्थ--संतरा, नीबू और संतरे के रस, मकोइया और उसके रस, अनन्नास और उसके रस की गणना इसमें है।

(ब) विकार निकालने वाले पदार्थ--सेब, नाशपाती, अमरूद इस विभाग में आते हैं। कच्ची सब्जियों का सलाद और कई सब्जियां इसी जाति की हैं।

(स) विकार निकालने के साथ पुष्टि देने वाले पदार्थ, जैसे गाजर, गन्ना, अंगूर इत्यादि।

(द) पुष्टि देने वाले पदार्थ, जैसे रोटी, चावल, आलू; फलों में केला इत्यादि।

(न) बहुत पुष्टिकारक पदार्थ, जैसे दाल, मांस, मछली, अंडा, दूध, दही, मठा, भाजियों में सेम, लोभिया इत्यादि।

इस संबंध में यह समझना चाहिए कि जब रोग को दूर करना है, विकारों को निकाल कर शरीर को शुद्ध करना है, तब कुछ दिनों तक पहले (अ) जाति के, फिर (ब) जाति के, उसके बाद धीरे-धीरे और जाति के खाद्य पदार्थों का इस्तेमाल करना चाहिए। तेज़ बीमारी (तीव्र रोग) में

तो तब तक कुछ न खाना चाहिए जब तक कि तकलीफ़ दूर न हो जाय। जीर्ण रोग में पुष्टिकारक भोजन खाना मानो विकारों को पुष्ट कर अपनी तकलीफ़ को बनाये रखना और बढ़ाना है।

(२) दूसरा पहलू यह है कि एक ही बार के भोजन में कई चीज़ों को एक साथ खाना पाचन-क्रिया को कठिन करना और विकार के निकलने की राह में अड़चन डालना है। इसीलिए जीर्ण रोगों में यह जोर देना होता है कि उपवास और रसाहार के बाद जब फलाहार शुरू किया जाय तो एक समय एक ही तरह का फल खाया जाय और फिर जब अन्न शुरू किया जाय तो एक समय एक ही चीज़, जैसे सिर्फ़ रोटी या दलिया खाया जाय। फिर धीरे धीरे उसके साथ और चीज़ें मिलाई जायँ।

(३) तीसरा पहलू यह है कि भोजन का सिलसिला बदलने में जल्दबाजी न करनी चाहिए। अगर कोई तेज़ तकलीफ़ है तो भोजन छोड़ ही देना चाहिए, लेकिन जीर्ण रोगों में धीरे-धीरे भोजन बदलना चाहिए। पहले एक हफ़्ता या दस दिन दोनों समय के अन्न के बदले एक समय अन्न और एक या दो समय फल या भाजी रहे। फिर अन्न छोड़कर फलों पर ही आ जाना चाहिए। इसके बाद एक समय फल और दो तीन बार रस। तब दिन में तीन-चार बार सिर्फ़ रस और सब के अन्त में उपवास। इसी क्रम से अन्न पर वापस भी आना चाहिए। हां जीर्ण रोग में भी अगर रोगी को काफ़ी ताकत है तो एक-ब-एक फलाहार या उपवास शुरू कर सकते हैं। लेकिन ऊपर बताये क्रम से बहुत अच्छी सफ़ाई होती है और बहुत से रोग चले जाते हैं।

(४) खाद्य पदार्थ के संबंध की मोटी-मोटी बातें ऊपर बताई गई। फिर भी आदमी-आदमी के शरीर पर हरेक पदार्थ का अलग अलग प्रभाव होता है, इसे समझना पड़ेगा।

(५) पांचवां पहलू यह है कि किस पदार्थ में कौन सा विटामीन और कौन सा प्राकृतिक लवण मिलता है और उनके अभाव से कौन कौन खराबियां होती हैं। इस संबंध में कुछ इशारे नीचे दिये जाते हैं।

पहले मैं विटामिनों को ही लूंगा। विटामीन क्या है, यह कहना कठिन है इसके संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि विटामीन स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। अभी तक साधारणतः नीचे दिये विटामिनों का पता चल सका है:—

(अ) विटामीन 'ए' साधारण तौर से शरीर के बढ़ने और पुष्ट होने के लिए जरूरी है। आंखों को शक्ति भी इसी से मिलती है। यह विटामीन दूध, घी, मक्खन, गाजर, टमाटर, लेटिस (एक पत्तीदार भाजी, जो सलाद में पड़ती है) और अंडे की जर्दी में पाया जाता है। मांस-मछली में भी इसका कुछ अंश रहता है।

(ब) विटामीन 'बी' नाड़ी संस्थान (nervous system) के लिए जरूरी है और टमाटर, पालक, गाजर, कच्ची बन्द-गोभी (करमकल्ला), सेम, मटर, प्याज, चुक़न्दर, लेटिस, फलों के रस, छिलके सहित साबुत अनाज और घी-मक्खन में पाया जाता है।

(स) विटामीन 'सी' दांत, हड्डी और खाल के लिए हितकर है। यह सभी पत्तीदार और हरी भाजियों, दूध, सन्तरे, टमाटर, सभी फल, बन्द गोभी, प्याज, गाजर और पालक में विशेष रूप से पाया जाता है। आंवले में इसकी मात्रा बहुत ज़्यादा है।

(द) विटामीन 'डी' बच्चों के सूखा (मिठुआ) रोग का रोकने वाला, अंडे की जर्दी, मक्खन, दूध, छिलके सहित साबुत अनाज, सभी भाजियां, मछली और अंगूर में पाया जाता है। अगर सूखे में बच्चों को धूप में रखा जाय---जितनी धूप सही जा सके---और अंगूर का थोड़ा-सा रस दूध के बाद या पहले या साथ पिलाया जाय तो कुछ ही दिनों में सूखा रोग जाता रहे।

(न) विटामीन 'ई' बन्ध्यापन (बांझपन) को रोकता है और तेल, अनाज के दानों, सेम, मटर, मसूर, पालक, अंडे की जर्दी और बादाम, मूंगफली में पाया जाता है।

अब मुख्य खनिज तत्वों का वर्णन किया जायगा।

(अ) कैलशियम (calcium---चूना) के अभाव से हड्डियां कमजोर और पतली रहती हैं; खून मे ताक़त नहीं होती और शरीर पुष्ट नहीं होता। शलजम के ऊपर का हिस्सा और पत्ते, बादाम, सूखे अंजीर, अंडे की जर्दी, फूल-गोभी, दूध, आटे का चोकर, मसूर, मटर, पालक, नींबू, लेटिस, बंद-गोभी, मूली प्याज की पत्ती, शलजम, सन्तरे और चकोतरे में कैलशियम मिलता है।

(ब) आयरन (iron---लोहा) की कमी से खून की कमी, कमजोरी और बीमारियों को रोकने की अयोग्यता होती है। यह तत्व अंडे की जर्दी, मसूर, मटर, चोकर सहित आटा, बादाम, पालक, खजूर, छुहारा, अंजीर, आलू-

बुखारा, किशमिश, मुनक्के, अखरोट, प्याज की पत्ती, लेटिस और मूली में मिलता है।

(स) सोडियम (sodium) की कमी से बदहज़मी और खून में लोहे की कमी होती है। सोडियम आलू-बुखारा दूध, फूल-गोभी, शलजम, सेब, चुकन्दर, मूली, अंडा, खीरा, ककड़ी, अंजीर, बंद-गोभी, पालक, लेटिस, किशमिश, गाजर और प्याज की पत्तियों में मिलता है।

(द) फ़ासफ़ोरस (phosphorus) की कमी से दिमाग़ की कमज़ोरी और थकावट, नाड़ियों की कमज़ोरी और हड्डियों का पतलापन होता है। यह तत्व अंडे की जर्दी, बादाम, मसूर, बे-छना आटा, जौ, मटर, अखरोट, बंद-गोभी, फूल-गोभी, खीरा, ककड़ी, लेटिस, सेब, लौकी, मूली, पालक और मछली में पाया जाता है।

(न) सल्फर (sulphur—गन्धक) की कमी से यकृत की खराबियां होती हैं और शरीर में विकार इकट्ठे होते हैं। सल्फ़र शलजम, पालक, गोभी, मूली, प्याज की पत्ती, शफ़तालू, अंडा, मूंगफली, बे-छना आटा, प्याज और सन्तरे में मिलता है।

(त) पोटाशियम (potassium) की कमी से यकृत की खराबियां, कब्ज तथा फुन्सियां पैदा होती हैं और ज़ख्म देर से भरता है। यह टमाटर, शलजम, लेटिस, प्याज, बन्द-गोभी, फूलगोभी, लोभिया (बोड़ा), दूध, अनन्नास, आलू-बुखारा, नीबू, सन्तरे, शफ़तालू, नाशपाती और चकोतरे में पाया जाता है।

(प) मैगनेशियम (magnesium) की कमी से नाड़ियों की ख़राबी, बेचैनी और खून में खटाई की ज़्यादा मात्रा होती है। चोकर, बादाम, मूंगफली, टमाटर, लेटिस, पालक, खजूर, अंजीर, आलू-बुखारा, किशमिश, नींबू, सन्तरा चुकन्दर, बन्द-गोभी और सेब में यह पाया जाता है।

(म) आॅयडीन (iodine) की कमी से गिल्टियों (glands) की बीमारी होती है और शरीर में विकार इकट्ठे होते हैं। आॅयडीन, गाजर, आलू, बन्द-गोभी, नाशपाती, अनन्नास, केला और लेटिस में मिलती है।

(ज) क्लोरीन (chlorine) की कमी से शरीर में बहुत ज़्यादा मात्रा में विकार इकट्ठे होते हैं। टमाटर, पालक, दूध, बन्द गोभी, अंडे की सफ़ेदी, लेटिस, केला, खजूर, नींबू, अनन्नास, नारियल और बे-छने आटे में मिलती है।

इनके अलावा और भी खनिज तत्व हैं, जैसे सिलिकोन (silicon), फ्लूरीन (fluorine) इत्यादि, पर मुख्य मुख्य ऊपर बताये गये ।

विटामिनों और खनिज तत्वों के संबंध में इन बातों को भी जानना चाहिए :—

निरोग रहने की अवस्था में जो जो चीज़ें खाई जाती हैं वे सारी की सारी रोग की अवस्था में नहीं खाई जा सकतीं ।

कुछ चीज़ों में इन दो पदार्थों के अलावा और भी कई तत्व हैं, जो शरीर के लिए हितकर नहीं हैं । जैसे, मांस में बहुत से रोग पैदा करने वाले तत्व हैं । अगर मांस खाया ही जाय तो उसे पहले ३० मिनट तक खौलते पानी में उबाल कर उसका सारा विकार-मय रस फेंक देना चाहिए, तब उसे पकाना चाहिए । जिस रस को डाक्टर या हकीम ताकत की चीज़ बताते हैं वह ताक़त तो देता है पर ताक़त के साथ मुर्दे की मांसपेशियों के अन्दर के सभी ज़हरीले पदार्थों को भी शरीर में छोड़ देता है ।

अंडा, अगर खाना ही हो तो, कच्चा या आधा उबला खाना अच्छा है बनिस्बत सख़्त उबले या पके हुओं के ।

फल और भाजी अनाज से ज़्यादा हितकर हैं, रोज़ के भोजन में इनकी मात्रा आधी से ज़्यादा होनी चाहिए ।

आग के सम्पर्क से कुछ विटामीन और कुछ हद तक खनिज तत्व भी नष्ट हो जाते हैं । भाजियों को बहुत हल्की आंच पर पकाना चाहिए और उनसे निकले पानी को कभी फेकना न चाहिए ।

भोजन में कुछ कच्ची सब्जी, जिसे अंगरेज़ी में 'सलाद' (salad) कहते हैं, जरूर खाना चाहिए ।

जब शरीर में किसी तत्व की कमी हो तो चुनकर अपनी पाचन-शक्ति के अनुसार उन्हीं चीज़ों को खाना चाहिए, जिनसे वह कमी पूरी हो जाय ।

कुछ लोग कहते हैं कि फलाहार में बहुत पैसे लगते हैं । उन्हें मैं सिर्फ़ यही याद दिलाना चाहता हूँ कि डाक्टरों की फ़ीस, बेशक़ीमती लेकिन ज़हरीली दवाओं और इन्जेक्शनों में फलाहार से भी ज़्यादा पैसे लगते हैं और फिर भी रोग नहीं जाता ।

—

हवा से फ़ायदा उठाना

हवा के काम—

हवा ही जीवन की सांस है। बिना पानी और भोजन के मनुष्य कुछ दिनों तक जी सकता है, पर बिना हवा के एक क्षण भी जी नहीं सकता।

हवा बिना दाम के ही घर बैठे मिलती है, इसलिए हम उसकी क़द्र नहीं करते। पर वह हमारी तनदुरुस्ती को ठीक रखने और बिगड़ी तनदुरुस्ती को सुधारने के लिए बड़े काम की चीज़ है।

हवा सांस के रूप में फेफड़े में जाकर अपनी आक्सीजन से शरीर के अन्दर के ख़ून को साफ़ करती है। यह एक बहुत जरूरी बात है, जिसे अच्छी तरह समझना चाहिए। हम जानते हैं कि शरीर को अच्छी हालत में रखने या बीमारी पैदा करने का काम ख़ून का ही है। यह ख़ून दिल से चलकर शरीर के सभी हिस्सों में जाता है, वहां उनकी ख़ूराक पहुँचाता है और उनके विकारों को अपने साथ लेकर फेफड़ों में पहुँचता है। जब वह दिल से चलता है तो चमकीले लाल रंग का रहता है, पर फेफड़ों में पहुँचते पहुँचते बहुत कुछ स्याह और धुमैला हो जाता है। इसका कारण, जैसा कि ऊपर बताया गया, यही है कि वह शरीर के अंग-प्रत्यंग को उसका आहार और पुष्टि देकर उसके अन्दर के विकारों को अपने साथ ले आता है। फेफड़ों मे ही उसकी सफ़ाई होती है। सांस के साथ आई हुई आक्सीजन से मिलकर वह साफ़ होता है और अपने अन्दर के बहुत से विकारों को वह सांस के साथ बाहर निकाल देता है। फेफड़ों मे साफ़ होकर, फिर से अपना असली लाल रंग पाकर और आक्सीजन से लदकर ख़ून दिल में आता है और दिल से फिर सारे शरीर में भेजा जाता है। ख़ून के साथ आई हुई आक्सीजन शरीर के हर हिस्से के विकारों को जलाती और साफ़ करती है। विकारों की राख (सफ़ाई के बाद उनके बदले हुए रूप) को लेकर ख़ून फिर फेफड़े में आ जाता है। इससे साफ़ साफ़ मालूम हो जायगा कि ख़ून और ख़ून के कारण शरीर को अच्छी हालत में रखने के लिए हवा कितनी ज़रूरी है।

इतना ही नहीं, हवा हमारी खालों में भी लगकर हमें तनदुरुस्त रखने में हमारी मदद करती है। खाल में बहुत छोटे छोटे अनेकों सूराख हैं। खाल

भी एक तरह से सांस लेती है। इसी से सारे बदन में हवा का हर रोज़ और अक्सर धूप का भी लगना बहुत ज़रूरी है। हवा और धूप से ही प्राण और जीवन-शक्ति मिलती है, पर इन दिनों हम अपने शरीर को इस तरह ढक कर रखते हैं, उस पर तरह तरह की पोशाकों का इतना सा ढेर लाद देते हैं कि

रक्त-संचार
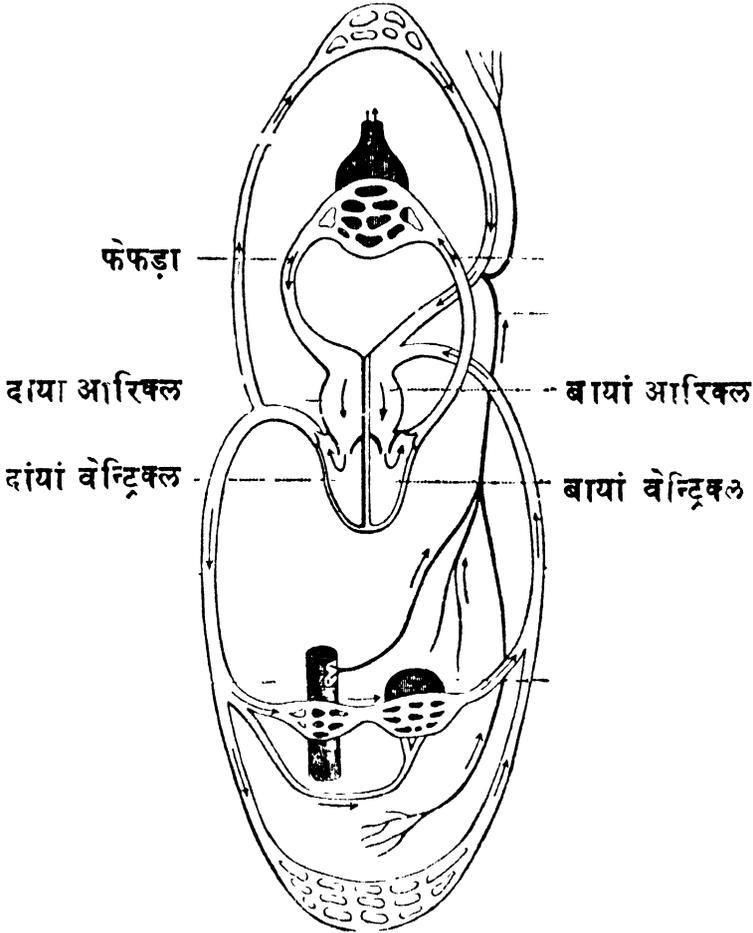
खून दिल के बायें वेन्ट्रिक्ल से चलकर शरीर के सभी हिस्सों में जाता है। वहां खूराक पहुँचाकर और उन हिस्सों से विकारों को लेकर दायें आरिक्ल में पहुँचता है। वहां से वह दायें वेन्ट्रिक्ल में जाकर फेफड़ों में भेजा जाता है। वहीं आक्सीजन से साफ़ होकर यह बायें आरिक्ल में आता है और तब बायें वेन्ट्रिक्ल में आकर शरीर में फिर भेजा जाता है।

[यह चित्र रक्त-संचार (खून का दौरान) समझाने के लिए है, यह शरीर के उन भागों का सच्चा चित्र नहीं है।]

उसे हवा और धूप से कुछ भी फ़ायदा नहीं पहुँचता। यह आजमा कर देखने की ही बात है। आप अपने सारे शरीर में घंटे डेढ़ घंटे हर रोज हवा और कभी-कभी धूप भी लगने दीजिए। आप देखेंगे कि थोड़े ही दिनों में आप के शरीर की हालत पहले से बहुत अच्छी हो जायगी।

कठिन चर्म-रोग के कई रोगियों को लेखक ने उचित भोजन के साथ-साथ हर रोज हवा और धूप में तीन-चार घंटे बिल्कुल नंगा रखकर भला-चंगा किया है। यह रोगी पहले और तरह के इलाज करके हार चुके थे। क्षय रोग में सारे शरीर में हवा और प्रकाश का लगना बहुत लाभदायक होता है।

अपने शरीर के प्रति हमारा धर्म है कि काफ़ी मात्रा में हम सांस-द्वारा हवा अपने अन्दर लें—क्योंकि उसी के साथ विकारों को जलाने और खून को फिर से लाल करने के लिए ऑक्सीजन ली जा सकती है—और साथ ही अपने सारे शरीर में हवा लगने दें। हिन्दुस्तानी रहन-सहन, पोशाक और जीवन-चर्या में हवा और धूप से फ़ायदा उठाने के बहुत मौके मिलते थे, पर अंगरेजी सभ्यता के साथ-साथ अब लोग हिन्दुस्तान को भी सर्दियों वाला इंगलैंड समझने लगे हैं, और गर्मी में भी अपने बदन को गर्दन से एड़ी तक बुरी तरह ढक लेते हैं। इसका परिणाम सभी को मालूम है—ख़ून की कमी के साथ शरीर की कमजोरी, मांसपेशियों (muscles) की क्षीणता चमड़े की बीमारियां इत्यादि इत्यादि। मामूली समझने की बात है कि जब पेड़-पौदे भी बिना हवा और धूप के नहीं बढ़ते और जब जानवर भी अपने शरीर में हवा और धूप बराबर लगने देते हैं तो मनुष्य इनसे बचकर क्योंकर तनदुरुस्त और भला-चंगा रह सकता है। जाड़ों में ज़्यादा कपड़ों की जरूरत जरूर पड़ती है, पर उन दिनों भी दोपहर में या किसी न किसी समय हवा और धूप का आनन्द लिया जा सकता है।

हवा किस तरह ली जा सकती है—

नाक के द्वारा काफ़ी हवा अन्दर लेने का सबसे अच्छा उपाय खुली जगह या मैदान में कसरत करना, खेलना और तेजी से टहलना है। बच्चों, लड़कों और नौजवानों के लिए हर रोज खेलना जरूरी है। लड़कों और नौजवानों को खेलने के अलावा हर रोज पांच-दस मिनट या इससे ज़्यादा समय के लिए कसरत करना भी जरूरी है। चालीस-पैंतालीस साल के लगभग उम्र वालों को, यदि वे पहले से कसरत करते और खेलते रहे हैं तो, इन आदतों को जारी रखना चाहिए। लेकिन ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, टहलना सब से अच्छी कसरत का

काम देता है। अपनी शक्ति भर तेजी से जितनी दूर बन सके, टहलना एक बहुत ही अच्छी कसरत है, जिसे हर कोई बहुत लाभ के साथ कर सकता है। कहने का मतलब यह है कि खुले मैदान में या किसी भी खुली जगह में खेलने, कसरत करने या टहलने से खुद-ब-खुद बहुत सी हवा फेफड़े में पहुँचती है और खून की सफ़ाई का काम अच्छी तरह चलता रहता है। रात में जहां तक हो खुले में ही सोना चाहिए। अगर कमरे के ही अन्दर सोना पड़े तो खिड़कियां जरूर खुली हों।

गहरी सांस लेने की आदत डालनी चाहिए।

गहरी सांस क्या है--

गहरी सांस उसे कहते हैं जो खुली जगह में या खुली खिड़की या दरवाजा के सामने सीधा खड़े होकर या सीधा बैठकर या पीठ के बल सीधा लेटकर इस तरह धीरे धीरे ली जाती है कि पेट और सीने के अन्दर के सभी हिस्से और कल-पुर्जे हवा से अच्छी तरह भर जाते हैं। गहरी सांस से एक खास फ़ायदा यह है कि साधारण या जीर्ण रोग की हालत में जब कि बदन में इतनी ताकत नहीं है कि खेल खेले जायँ या कसरत की जाय तो बैठे-बैठे और लेटे-लेटे मनुष्य जब कभी गहरी सांस ले-लेकर अपने को जल्द और जरूर अच्छा कर सकता है। जीर्ण रोगों में, जिनमें खून, मांसपेशियां, रग-रेशे और शरीर के कोष-प्रति-कोष विकार-मय हो जाते हैं, गहरी सांस लेने से अन्दर के विकारों की सफ़ाई जल्द होती है।

गहरी साँस कैसे ली जा सकती है--

सीधे खड़े हो जाओ या सीधे बैठो, जिससे पीठ सीधी रहे, या पीठ के बल सीधा आराम से लेट जाओ। खड़े होने या बैठने में ध्यान रक्खो कि पीठ सीधी तो रहे लेकिन इतनी न तने कि कष्ट मालूम होने लगे। चेहरे को सामने, जरा (बहुत नहीं) ऊपर को उठा रक्खो और नथनों को बिना सिकोड़े हुए खुला रखो। अब धीरे-धीरे नाक से सांस लो। सांस लेने में यह ध्यान रखो कि सिर्फ़ सीना ही फूले। कुछ लोग पेट में भी हवा भरने की सलाह देते हैं, पर यह ठीक नहीं है। सीने को ही ऊपर तक हलका हलका फूलना और तनना चाहिए। पसलियों का ही फैलना जरूरी है। अब धीरे धीरे नाक से हवा को निकालो। शुरू शुरू की अवस्था में हवा को अन्दर रोक

रखना ठीक नहीं है। काफ़ी अभ्यास के बाद हवा रोकी जा सकती है। जितनी देर में हवा अन्दर ली गई थी उससे दूनी देर में बाहर निकाली जानी चाहिए। पहिले यह कठिन होगा पर अभ्यास, से जरूर आ जायगा। पहले सांस को बाहर फेंक कर सांस लेना शुरू करना अच्छा होता है।

थोड़े अभ्यास के बाद सांस लेने और निकालने में इस नियम का पालन करना चाहिए--५ सेकंड में सांस लो और १० सेकंड में निकालो। अभ्यास से यह होने लगेगा। पहले ७ बार करो, फिर हर हफ्ते ३-३ बार बढ़ा कर २८ बार तक करो। मतलब यह है कि जब इस तरह सांस लेने का अभ्यास हो जाय तो पहले हफ्ते में ७ बार (७ बार लेना और ७ बार निकालना) करो, दूसरे हफ़्ते में १० बार, तीसरे में १३ बार--इसी तरह बढ़ाकर २८ बार तक ले जाओ।

गहरी साँस से लाभ--

(१) काफ़ी हवा शरीर के अन्दर आ जाती है।

(२) काफ़ी हवा के अन्दर आने से आक्सीजन भी पर्याप्त मात्रा में फेफड़ों में पहुँचती है।

(३) आक्सीजन से खून साफ़ होता रहता है और खून के विकार अन्दर ली हुई हवा के साथ मिल कर बाहर निकलने वाली सांस के साथ शरीर के बाहर फेंक दिए जाते हैं।

(४) खून के साथ आक्सीजन शरीर के सब हिस्सों में पहुँच कर वहां के विकारों को खून के साथ फेफड़े में आने में सहायक होती है।

(५) साफ़ खून से शरीर के सभी भाग पुष्ट और तनदुरुस्त रहते हैं।

(६) गहरी सांस लेने वाले को फोड़े, फुन्सी, जख्म या साधारणतः और कोई बीमारी नहीं होती। खान-पान का ध्यान रखना भी जरूरी है, क्योंकि उसी से तो खून बनता है।

हवा और सांस के नियम--

(१) हर मौसम में बाहर बरामदे या बिलकुल खुले कमरे में रात को सोना चाहिए। रात को ही आराम के समय शरीर के अन्दर मरम्मत का काम होता रहता है। उस समय काफ़ी हवा का मिलना बहुत जरूरी

है। आधा चैत से जेठ के अंत तक और फिर वर्षा ऋतु में भी, जिस दिन पानी न बरसे, बल्कि कुआर (आश्विन) तक, खुले मैदान मे सोया जा सकता है।

(२) मुंह ढक कर हर्गिज न सोना चाहिए। मुंह ढक कर सोने से सांस के साथ बाहर निकले हुए जहर और विकार फिर शरीर के अन्दर चले जाते है।

ऊपर के दो नियम बहुत जरूरी हैं। इनके पालन करने से जुकाम-सर्दी या खांसी नहीं होती। और बीमारियों मे भी कमी हो जाती है, क्योंकि खून अच्छी हालत मे रहता है।

ज्यादा ठंड से बचने के लिए ओढ़ने के अधिक कपड़े भी इस्तेमाल करने हों तो कोई बात नहीं, पर खुले स्थान में मुंह खोल कर (लेकिन जरूरत हो तो सर ढक कर) सोना जरूरी है। गर्मियों मे सोते समय कोई भी कपड़ा नहीं पहनना चाहिए, जाड़ों में एक हल्का और ढीला कुर्त्ता या कमीज पहन सकते है।

खांसी वालों का रोग इस तरह सोने से जल्द जाता है। आजकल इस संबंध में उल्टी गंगा बह गई है, जिससे बहुत नुकसान हो रहा है।

(३) बुखार, जुकाम और खासी या सभी नए (तीव्र) रोगों में रोगियों को खुले बरामदे या कमरे में ही रहना चाहिए। ऐसी अवस्था में रोगी को पहले के बनिस्बत ज्यादा हवा की जरूरत होती है, क्योंकि हवा प्रकृति की दी हुई मुफ़्त दवा है। अगर हवा जोर की हो तो रोगी के शरीर को अच्छी तरह ढक दो; अगर हवा मामूली हो तो हल्के कपड़े से ढको, बल्कि दिन में कुछ देर के लिए सारे शरीर मे धीमी हवा लगने भी दो।

(४) जीर्ण (पुराने) रोगों में रोगियों को नियम नम्बर (३) के पालन करने के अलावा जब कभी गहरी सांस भी लेनी चाहिए। थकावट न हो, इसका ध्यान जरूर रहे।

जीर्ण रोग की चिकित्सा के समय या वैसे भी गहरी सांस का अभ्यास आरंभ करते समय पहले दो-तीन गहरी सांस सुबह में, दो-तीन दोपहर में और दो-तीन सोने से पहले लेना काफ़ी होगा। चार-पांच दिन पर एक एक सांस तीनों वक्त बढ़ाई जा सकती है। खाने के बाद तुरन्त ही गहरी सांस न लेनी चाहिए।

टहलते समय भी गहरी सांस ली जा सकती है। हर क़दम के साथ गिनती गिनो और आठ की गिनती तक अपने सीने को हवा से भर लो, फिर सोलह गिनते गिनते हवा को धीरे धीरे निकाल दो।।

(५) कसरत करते समय हर दो कसरतों के बीच में दो-तीन बार गहरी सांस लेनी चाहिए।

*   *   *   *

सांस की और भी बहुत सी लाभदायक क्रियाएँ हैं, पर वे इस किताब में नहीं दी जा सकतीं। ऊपर जो लिखा गया है, वह साधारणतः स्वस्थ रहने और रोगों को भगाने के लिए काफ़ी है। जो कठिन क्रियाएँ हैं उन्हें किसी योग्य शिक्षक की देख-रेख में सीखना और करना चाहिए।

पानी को काम में लाना

पानी की करामात--

तनदुरुस्ती को ठीक रखने और नये या पुराने रोग को दूर करने के लिए पानी एक बहुत ज़रूरी पदार्थ है। जल की महिमा के ही कारण 'जल-चिकित्सा' (पानी का इलाज) जैसी एक चिकित्सा-प्रणाली प्रसिद्ध हो गई है। लेकिन, जैसा कि पहले कहा गया है, जल-चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा का सिर्फ़ एक अंग है। जल के उचित प्रयोग से बहुत फ़ायदा जरूर होता है, पर यदि उसके साथ साथ भोजन, हवा, धूप और उचित कसरत और आराम का ख़याल न रखा जाय तो जल-चिकित्सा के लाभ में बहुत कमी हो जाती है और कुछ हालतों में नुक़सान भी होता है।

पानी के बहुत से फ़ायदे हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं:--

(अ) पानी शरीर के अन्दर की गर्मी को दूर करता है, जिससे जलन, सूजन और दर्द में पानी के इस्तेमाल से फ़ायदा पहुँचता है। किसी भी फोड़े, फुन्सी या बुख़ार की हालत में पानी का इस्तेमाल प्राकृतिक और उचित है, पर बुख़ार में लोग बदन को पानी से धोने से डरते हैं; कहते हैं कि निमोनिया या त्रिदोष हो जायगा। लेकिन संसार भर के प्राकृतिक चिकित्सकों का तजुर्बा है कि पानी के नियम-पूर्वक प्रयोग से किसी तरह का नया बुख़ार भाग जाता है और पुराना बुख़ार या किसी तरह का पेचीदा रोग भी पीछा छोड़ता है। पानी के ही इस्तेमाल से कितने ही ६-७ दिन के बुखारों को, जिन को डाक्टरों ने मियादी या टाइफाइड बताया, प्राकृतिक चिकित्सकों ने दो-तीन दिनों में ही मार भगाया।

(ब) शरीर के अन्दर के विकारों को घुलाकर उनको फिर से पानी बनाना और शरीर के बाहर निकाल देना--यह काम पानी का ही है। भोजन के ठीक ठीक न पचने से शरीर के अन्दर वायु का प्रकोप रहता है। यह वायु भाप की तरह है। सभी जानते हैं कि किसी ठंडी सतह को छूने से भाप फिर पानी बन जाती है। बस, शरीर के अन्दर की भी भाप (वायु) ठंढे पानी के बाहरी इस्तेमाल से पानी बन कर पेड़ू में चली आती है और फिर पेशाब-पाखाने के रास्ते शरीर के बाहर निकल जाती है। इस विकार-मय भाप को शरीर के बाहर निकाल देने के लिए

पानी के नियमित प्रयोग से बढ़ कर कोई भी दूसरा सीधा-सादा और ज़रूर ही सफल होने वाला उपाय नहीं है। इसी से उन रोगों को भी, जो असाध्य कह कर छोड़ दिये जाते हैं, प्राकृतिक चिकित्सा जल के प्रयोग से जड़ से उखाड़ देती है।

(स) पानी से नाड़ी संस्थान (nervous system) को आराम और शक्ति, दोनों ही, मिलते हैं। पाठकों को मालूम है कि शरीर के अन्दर नाड़ी संस्थान ही राजा का काम करता है। उसी के हुक्म से भोजन का पाचन, पेट की सफ़ाई, नींद का आना इत्यादि सभी ज़रूरी काम होते हैं। नाड़ियों की कमज़ोरी से शरीर की कमजोरी होती है, जिससे शरीर रोगों का शिकार बनता है, और फिर शरीर की कमज़ोरी से नाड़ियों की कमज़ोरी बढ़ती है। नाड़ी संस्थान को ठीक अवस्था में रखने के लिए पानी का प्रयोग बहुत ज़रूरी है।

पानी के कुछ साधारण इस्तेमाल हैं और कुछ असाधारण। मामूली इस्ते-मालों में रोज़ रोज़ का नहाना और पानी पीना है। ग़ैर-मामूली इस्तेमालों में तरह तरह की पट्टियां और स्नान हैं। पहले जल के साधारण प्रयोगों के बारे में ज़रूरी बातें बताई जायँगी।

पानी का मामूली इस्तेमाल——

पानी पीना और नहाना रोज़ की मामूली बातें हैं, इसीलिए इन पर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। पर इन मामूली बातों को अच्छी तरह जानने और करने से तनदुरुस्त रहने और रोगों से छुटकारा पाने में बहुत कुछ मदद मिलती है। इसलिए इन बातों के संबंध में नीचे दिये नियम बराबर याद रखिए।

पानी पीना——

(अ) ठंडा पानी (छान लेने के बाद) पीना अच्छा है लेकिन जाड़ों में अगर पानी ठंडा हो तो उसे इतना ही गर्म करना चाहिए कि उसकी ठंड मर जाय, ज्यादा नहीं। सर्दी-जुकाम या खांसी में इस बात का ध्यान ज़रूर रखना चाहिए।

अगर सन्देह हो कि पानी अच्छी जगह का नहीं है या अगर ठीक ठीक मालूम हो कि पानी विकार-युक्त है तो उसे अच्छी तरह उबालने के बाद ठंडा कर और तब छान करके पीना चाहिए।

(ब) पानी सादा ही पीना चाहिए, ज़रूरत पड़ने पर नींबू का रस मिला सकते हैं। सोडा, लेमोनेड इत्यादि पीने की प्रथा हानिकर है। पहले तो इनके

पीने से कोई नुकसान नहीं मालूम होता, पर धीरे धीरे यह पाचन-शक्ति और नाड़ियों को कमज़ोर कर देते हैं। जो बहुत वर्षों तक निरोग जीना चाहता है वह सादा पानी पिये। पानी में बर्फ़ मिलाना भी बुरा है। इससे पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है। अगर बर्फ़ मिलाना ही हो तो चूर करके न छोड़ी जाय। एक दो सेकेंड के लिए पानी में बर्फ़ के टुकड़े को रहने दीजिए और फिर निकाल लीजिए। यह सभी को मालूम है कि बर्फ़ के पानी से प्यास नहीं जाती।

(स) पानी काफ़ी मात्रा में पीना चाहिए, पर बिना प्यास के नहीं। शरीर का बहुत भाग पानी है, ख़ून भी पानी है, इसलिए शरीर को ठीक हालत में करने के लिए पानी बहुत ज़रूरी है। पर बिना प्यास के पानी पीना वैसा ही है जैसा कि बिना भूख के भोजन करना।

सुबह उठते ही मुंह-आंखें धो और कुल्ला करके एक डेढ़ गिलास पानी धीरे धीरे पी जाना बहुत लाभदायक है। वैसे ही रात को सोने से पहले पानी पीकर सोना भी अच्छा है। कब्ज़ की हालत में एक या दो नींबू का रस मिला लेना गुण-कारी होता है।

(द) पानी इच्छा भर पीना चाहिए, न ज़्यादा न कम। कोई निश्चित मात्रा नहीं बताई जा सकती।

(न) भोजन के साथ पानी न पीना चाहिए। यह नियम बड़े महत्व का है और इसके तोड़ने से बहुत सी खराबियां इन दिनों हो रही हैं। भोजन के आध घंटे पहले और कम से कम दो घंटे बाद पानी पीना अच्छा है। भोजन के समय पानी पीने की आदत को रोकने के लिए यह ज़रूरी है कि भोजन में मिर्च, मसाले और तेल की ज्यादती न हो और यह भी कि भोजन अच्छी तरह चबाया जाय।

(प) थके रहने की हालत में तुरन्त पानी न पीना चाहिए।

(फ) थकावट या किसी प्रकार के बुख़ार की हालत में आचमन लेना बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। आचमन का मतलब है—दो दो सेकेंड की देर पर ठंडे पानी की (पानी जितना ठंडा हो अच्छा है, लेकिन बर्फ़ मत मिलाओ) १०-१२ बूंद चूस लेना। बीस-बाइस बार चूसने के बाद पांच सात मिनट के लिए रुक जाना चाहिए, और तब फिर दुहराना चाहिए। बीच बीच में रुक रुक कर चार-पांच बार इस तरह करना चाहिए। चाय पीने वाले छोटे चमचे में जितना पानी आता है उसका छठवां भाग एक बार चूसना चाहिए। यह दस-बारह बूंदों के बराबर होगा। बुख़ार के शुरू में आचमन ज़रूर लेना चाहिए। कुछ बुख़ार तो

सिर्फ़ पांच-सात बार के आचमन से ही उतर जायंगे। ज़ोरदार बुखारों में भी इससे लाभ होता है—परेशानी कम हो जाती है। लेकिन आचमन का तरीक़ा ठीक वैसा ही हो जैसा कि ऊपर बताया गया है।

मामूली नहाना—

(अ) साधारण तनदुरुस्ती वालों को सभी मौसम में ठंडे पानी से ही नहाना चाहिए। ठंडे पानी से नाड़ी संस्थान जग उठता है। कमजोर आदमी को ऐसे पानी से नहाना चाहिए, जिसकी ठंड थोड़ा गर्म पानी मिलाने से मर गई है, लेकिन जो गर्म नहीं है। उसे भी धीरे-धीरे ठंडे पानी की आदत डालनी चाहिए।

(ब) भोजन के तुरन्त पहले या बाद नहाना न चाहिए। हल्के भोजन के एक घंटे बाद और पूरे भोजन के दो-ढाई घंटे बाद नहाना चाहिए। इसी तरह नहाने के बाद शरीर में गर्मी आ जाने पर (कम से कम पन्द्रह मिनट का अन्तर देकर) खाना खाना चाहिए।

(स) जब बदन ठंडा रहे तो नहाना न चाहिए। ऐसी हालत में बहुत थोड़ी कसरत या तलहथी से मल-मलकर बदन को गर्म कर लेने के बाद नहाना चाहिए।

(द) नदी में नहाना चाहिए या ऐसे बन्द कमरे में, जहां बिल्कुल नंगा होकर नहा सके। नंगा हुए बिना बदन के सभी हिस्से अच्छी तरह नहीं धोये जा सकते।

(त) जहां तक हो सके, सबेरे उठने और पाखाने जाकर मुंह हाथ धोने के बाद ही नहा लेना चाहिए। आजकल जो ९–१० बजे नहाने के बाद तुरन्त खाकर स्कूल, कालेज या दफ़्तर जाने की प्रथा चल गई है, ठीक नहीं है। सबेरे ही शौच और मुंह धोने के बाद हल्की कसरत, उसके बाद ही नहाना, फिर नहाने के बाद ध्यान, ईश्वर-चिन्तन या हवन या किसी अच्छी पुस्तक का पढ़ना—शरीर, दिल और दिमाग तीनों के लिए हितकर है।

(थ) वैसी कसरत, खेल-कूद और दौड़-धूप के बाद, जिसमें पसीना अच्छी तरह निकल आया हो और शरीर में गर्मी हो आई हो, नहाने की आदत डालना बहुत अच्छा है। इस नहान से पसीना साफ़ हो जाता है और बदन में ताजगी आती है। कमज़ोर आदमियों को पहले इससे कुछ नुक़सान हो सकता है। इसलिए इसका पहला अभ्यास यह है कि कुछ दिनों तक कसरत करने के बाद सिर्फ़ उतनी देर तक ठहरा जाय जब तक सांस फूल रही हो, फिर बन्द कमरे में पानी में निचोड़े अंगोछे या तौलिए से बदन को दो-तीन बार अच्छी तरह पोंछ ले और तब कपड़े पहनकर

बाहर आवे। पन्द्रह-बीस दिन के बाद ही नहाना भी शुरू किया जा सकता है। कसरत के बाद का नहाना बन्द कमरे में ही ठीक है। उसके बाद शरीर को अच्छी तरह ढक लेना चाहिए।

(न) घर्षण स्नान--अगर इस तरह नहाया जाय तो बहुत लाभ हो--खड़ा होकर पहले अपनी हथेली से सारे बदन को सिर से पैर तक (पहले उंगलियों से सिर, फिर हथेली से चेहरा, आंखों की चारों तरफ़, गाल, कान-नाक की जड़ें, गर्दन, बांया हाथ, बांई टांग, दाहिनी टांग, दाहिना हाथ, पेड़, पेट-छाती, पीठ) अच्छी तरह और तेज़ी से इतना रगड़िए कि बदन लाल हो जाय। जांघ और टांगों को रगड़ते समय घुटनों को सीधा और तना रखिए। रगड़ते समय हाथ को नीचे से ऊपर ले जाइए, जिससे खून दिल की तरफ़ जाय। इससे रीढ़, पेट इत्यादि की कसरत हो जायगी। अब नहाइए। शरीर पर पानी डालते समय एक बार फिर उसी क्रम से रगड़िए। इसके बाद थोड़ा तेल लगा लीजिए। फिर नहाइए। नहाने के बाद तौलिए से शरीर को अच्छी तरह पोंछ कर कपड़े पहन लीजिए, या अगर हाथ से ही मल-रगड़ कर शरीर सुखा दिया जाय तो और अच्छा हो।

ऐसा नहाना बन्द कमरे में ही हो सकता है, जहां आप नंगे हो सकते हैं। इस नहाने में नहाना, कसरत, बदन की मालिश, तीनों, मिले हुए हैं। उचित भोजन के साथ इस तरह के नहाने से एक ही महीने में शरीर कुछ और ही हो जाता है।

जीर्ण रोग के रोगी, जो इस तरह नहा सकते हैं, इस नहान से बहुत लाभ उठाते हैं। बवासीर, दमा, मामूली गठिया, खाज-खुजली वाले रोगी तो अवश्य ही इस सरह नहाकर अपने रोग को जल्दी से दूर कर सकते हैं। साधारण तनदुरुस्ती में भी इसी तरह नहाना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि इसमें बहुत समय लगता है, पर तनदुरुस्ती के लिए समय लगाना कौन बुरी बात है। अभ्यास से १० मिनट में यह स्नान खतम हो जाता है।

(प) जिन रोगियों के बदन में हल्का-सा दर्द रहा करता है, जैसा कि कभी कभी गठिये की पुरानी हालत में रहता है, उन्हें पहले कुछ दिनों तक सर को ठंडे पानी में निचोड़े कपड़े से दो-तीन बार अच्छी तरह पोंछ कर या ठंढे पानी से धोकर गर्दन से नीचे गर्म पानी से नहाना चाहिए और उसके बाद ही या तो ठंडे पानी से नहा लेना चाहिए या ठंडे पानी में निचोड़े कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछना चाहिए। आठ-दस दिनों के बाद नम्बर (न) वाली क्रिया, जो ऊपर बताई गई है, करनी चाहिए।

पानी का असाधारण इस्तेमाल——

पानी के जो इस्तेमाल नीचे दिये जाते हैं वे हर रोज के नहीं हैं। जरूरत होने पर इन असाधारण प्रयोगों से बहुत फ़ायदा उठाया जा सकता है। इनको अच्छी तरह समझना और सीखना चाहिए। पहले कुछ जरूरी बातें समझ लीजिए, जिससे आप यह जान सकें कि किस अवसर पर ठंडा या गर्म पानी का कितनी देर प्रयोग करना चाहिए।

पानी के ठंडा या गर्म होने का अन्दाज़

बहुत ठंडा पानी——	लगभग	३२ से ५०	डिग्री	फ़र्नहाइट
ठंडा पानी——	”	५० से ६५	”	”
मामूली ठंडा पानी——	”	६५ से ८०	”	”
नाम के लिए ठंडा पानी——	लगभग	८० से ९२	डिग्री	फ़र्नहाइट
न ठंडा न गर्म पानी——	”	९२ से ९७	”	”
मामूली गर्म पानी——	”	९८ से १००	”	”
गर्म पानी——	”	१०० से १०४	”	”
बहुत गर्म पानी——	”	१०४ से ज्यादा	”	”

अगर पानी का ताप नापने वाला एक थर्मामीटर पास में हो तो बहुत अच्छा है। अगर थर्मामीटर न हो तो अन्दाज़ से काम लिया जा सकता है।

जल के प्रयोग से शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह इस पर निर्भर है कि जल का ताप कितना है, कितनी देर का प्रयोग है, शरीर के कितने भाग पर प्रयोग हुआ, कैसा प्रयोग हुआ और रोगी की शारीरिक अवस्था कैसी है। नीचे इस विषय पर और प्रकाश डाला जा रहा है।

जल के प्रयोग का शरीर पर जो प्रभाव नीचे बताया जा रहा है वह दूसरी क्रिया है। हर प्रयोग की दो प्रतिक्रियाएँ होती हैं——पहली (थोड़ी देर तक टिकने वाली) और उसके बाद ही दूसरी (व्यापी और टिकाऊ)। ठंडे पानी से स्नान करने से पहले ठंड लगती है। यह पहली प्रतिक्रिया है, जो थोड़ी देर रहती है। इसके बाद ही बदन में गर्मी छा जाती है। यह दूसरी प्रतिक्रिया टिकाऊ है। इस दूसरी प्रतिक्रिया पर ही (खाने-पीने, जल-प्रयोग, सभी विषयों में) प्राकृतिक चिकित्सा में जोर दिया जाता है। यह याद रखना चाहिए कि अगर पहली प्रतिक्रिया आराम की होती है तो दूसरी दुखद और अगर पहली दुखद तो दूसरी टिकाऊ प्रतिक्रिया सुखद और रोगनाशक होती है)

बहुत थोड़ी देर (५ से १५ सेकंड) के लिए गर्म जल के प्रयोग का प्रभाव

१. शरीर की गर्मी कम करता है। २. खाल की हरकत को धीमा करता है। ३. रक्तचाप (blood pressure) पर कोई खास प्रभाव नहीं होता। ४. नाड़ी-संस्थान को उत्तेजित करता है। ५. दिल की गति को तेज करता है। ६. मांसपेशियों को सिकोड़ता है। ७. खाल के पास वाली ख़ून की नलियों को संकुचित करता है। ८. कोषों के बनने की क्रिया पर बहुत कम असर डालता है। ९. सांस को उत्तजित करता है।

काफ़ी देर (२ से १० मिनट) के लिए गर्म जल के प्रयोग का प्रभाव

१. शरीर का ताप बढ़ाता है। २. खाल की हरकत को कम करता है। ३. रक्त-चाप को घटाता है। ४. नाड़ियों में थोड़ी शिथिलता (सुस्ती) लाता है। ५. हृदय की गति को तेज और कमजोर करता है। ६. मांसपेशियों को ढीला करता है। ७. खाल के पास की खून की नलियों को फैलाता है। ८. कोषों के बनने की क्रिया को उत्तेजित करता है। ९. सांस को तेज और कमज़ोर करता है।

बहुत थोड़ी देर (५ से १५ सेकंड) के लिए ठंडे पानी के प्रयोग का प्रभाव

१. शरीर का ताप बढ़ाता है। २. खाल की हरकत को बढ़ाता है। ३. रक्त-चाप को बढ़ाता है। ४. नाड़ी-संस्थान को बल पहुँचाता है। ५. हृदय की गति को धीमा और मजबूत करता है। ६. मांसपेशियों को उत्तेजित करता है। ७. खाल के पास के ख़ून की नलियों को फैलाता है। ८. कोषों के बनने की क्रिया को उत्तेजित करता है। ९. सांस को धीमा और गहरा करता है।

काफ़ी देर के लिए ठंडे पानी के प्रयोग का प्रभाव

१. शरीर का ताप घटाता है। २. खाल की हरकत को कम करता है। ३. रक्तचाप को घटाता है। ४. नाड़ी-संस्थान पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता। ५. हृदय की गति को कमजोर करता है। ६. मांसपेशियों को सिकोड़ता

है। ७. खाल के पास की खून की नलियों को सिकोड़ता है। ८. कोषों के बनने की क्रिया को मंद करता है। ६. सांस को धीमा और कमजोर करता है।

इस प्रभाव के विषय को अच्छी तरह समझना चाहिए और शुरू से ही जल के प्रयोग में ज़्यादती न करनी चाहिए। हर क्रिया की प्रतिक्रिया का हो जाना भी जरूरी है। ठंड के बाद गर्मी आनी चाहिए और गर्मी के बाद ठंडक पहुँचानी चाहिए और फिर ठंडक के बाद गर्मी। बहुत बुड्ढे या कमजोर रोगियों के लिए बहुत गर्म या बहुत ठंडे जल का प्रयोग हानिकर होता है। धीरे-धीरे और अभ्यास डालते हुए पानी की गर्मी या ठंड को बढ़ाना चाहिए। इस विषय को अच्छी तरह समझने से चिकित्सा का काम आसान हो जाता है।

अब कुछ जरूरी प्रयोग बताये जाते हैं।

सेंक

(अ) दर्द और सूजन में सेंक से बहुत लाभ होता है, लेकिन सेंक से पूरा फ़ायदा उठाने के लिए गर्म और ठंडी सेंक होनी चाहिए।

एक बर्त्तन में काफ़ी गर्म और दूसरे में ठंडा पानी लीजिए। दोनों में फ़लालैन या किसी भी मोटे कपड़े के टुकड़े डाल दीजिए। अगर जरूरत हो तो कपड़ों के दो-तीन तह कर लीजिए। पहले गर्म पानी वाले कपड़े को निचोड़ कर १ से ३ मिनट तक दर्द के मुक़ाम पर रखिए और इतने में ठंडे पानी वाले कपड़े को निचोड़ कर तैयार कीजिए। फिर गर्म कपड़े को हटाकर ठंडे कपड़े को दर्द वाली जगह पर रखिए और इधर गर्म पानी वाले कपड़े को निचोड़ कर तैयार कीजिए। ठंडे कपड़े को गर्म कपड़े के बनिस्बत कम देर तक रखिए। अगर गर्म कपड़े को २ मिनट रखा है तो ठंडे कपड़े को आध मिनट के लिए ही रखिए। इस तरह बारी बारी से गर्म और ठंडी सेंक १५–२० मिनट के लिए देनी चाहिए। ठंडी सेंक से ख़त्म कीजिए। सेंक देते समय हवा लगने न देना चाहिए, पर कमरे को बिलकुल बन्द करने की भी जरूरत नहीं। सेंक ख़त्म होने पर शरीर को थोड़ी देर के लिए ढक रखिए।

गर्म के बाद ठंडी सेंक इसलिए दी जाती है कि दोनों से खून में अच्छी हरकत पैदा हो जाय। गर्मी से ख़ून खिंच आता है और ठंडक से दूर होता है। इस तरह हरकत आती है लेकिन गर्मी कमज़ोर करती है, इसलिए थोड़ी ठंडक से ताक़त भी लाना जरूरी होता है।

किसी भी दर्द और सूजन में या अकेला दर्द या सूजन में और शरीर के किसी अंग पर यह सेंक दी जा सकती है। इस सेंक को, जब जब तकलीफ़ उठे, देना चाहिए। अगर तकलीफ़ बहुत दिन तक चलने वाली है तो दिन और रात में दो तीन बार, समय निश्चित करके, सेंक देनी चाहिए।

सेंक के कपड़े इतने बड़े और चौड़े ज़रूर हों कि दर्द की जगह को और चारों तरफ़ से थोड़ी और जगह को अच्छी तरह ढक सकें।

दमा, पुरानी खांसी, निमोनिया और यक्ष्मा में छाती और पीठ के ऊपर के हिस्सों पर इन सेंकों से बहुत आराम मिलता है। जब दर्द ज्यादा हो या रोगी बहुत जड़ रहा हो तो दो या तीन गरम सेंक के बाद एक ठंडी सेंक देनी चाहिए। अंत में ठंडी ही।

ख़ुश्क (सूखी) सेंक, जिसमें सिर्फ़ कपड़े या रूई या तलहथी से सेंकते हैं, बहुत ख़राब है। गठिया में तो इससे जोड़ सख़्त पड़ जाते हैं।

(ब) बोतलों में गर्म पानी भर कर (एक तिहाई हिस्सा खाली रहे) उनके मुंह अच्छी तरह बन्द कर लीजिए और उनको छाती और पेट के दोनों तरफ़ या अगर ज़रूरत हो तो टांगों के बीच या दोनों तरफ़ या पैरों के पास रख कर ऊपर से कपड़ा डाल दीजिए।

कभी कभी कई बोतलें तैयार रखने की ज़रूरत पड़ती है और साथ ही चूल्हे पर गर्म पानी भी तैयार रखना पड़ता है, जिससे कि बोतलें बदली जा सकें।

बोतल (पानी से) इतनी गर्म हो कि बर्दाश्त (सहन) की जा सके। उसको कपड़े से लपेट लेना अच्छा होता है। ऐसी बोतलें रबर की बनी मिलती हैं पर कांच की बोतलें भी काम में लाई जा सकती हैं।

बोतल में गर्म पानी आने से पहले उसे हल्के गर्म पानी से धो लेना चाहिए, नहीं तो एक-ब-एक गर्म पानी से वह टूट जा सकती है।

पेट के दर्द में भी गर्म पानी की बोतलों से काम लेते हैं, पर ख़ास कर जब बदन में कमज़ोरी से ठंड आने लगती है, जैसा कि हैज़े में या शरीर से बहुत ख़ून निकलने के बाद हो सकता है, तो गर्म बोतलों से विशेष लाभ होता है।

सेंक से फ़ायदा ज़रूर होता है, लेकिन अगर गठिया जैसे रोग में ख़ून विकार-युक्त हो गया है तो सेंक से सिर्फ़ आराम मिलेगा। सच्चा लाभ तो तभी होगा जब कि भोजन-सुधार के साथ साथ दूसरे दूसरे उपायों से ख़ून साफ़ कर लिया जाय। फिर भी आराम पहुँचाने के लिए सेंक से काम ज़रूर लेना चाहिए।

पट्टियाँ

(अ) स्थानीय (मुकामी) गीली पट्टी (आर्द्र वेष्टन)

कपड़े की गीली पट्टियों से बहुत हालतों में जादू का सा असर होता है। दर्द या सूजन की जगहों पर, किसी अंग के कटने पर और ज़ख्म पर भी, ठंडे पानी में निचोड़े साफ़ कपड़े के टुकड़े को इस तरह लपेटिए कि वह उस जगह को तीन-चार बार अच्छी तरह ढक ले या कपड़े की चार-पांच तह कर चोट की जगह पर उसे रखिए और तब ऊपर से एक गर्म ऊनी कपड़े को हल्का कसकर लपेट दीजिए। पट्टी की तहें कितनी हों, यह इस बात पर निर्भर है कि तकलीफ़ कैसी है। अगर तकलीफ़ ज़्यादा है या किसी अंग के बुरी तरह कट जाने से ख़ून ज़ोरों में और बहुत बह रहा है तो पट्टी को काफ़ी मोटा होना चाहिए। इसको लगभग एक घंटे तक या जब तक अन्दर की पट्टी गर्म न हो जाय उसी जगह पर रहने दीजिए। फिर ठंडे गीले कपड़े से उस जगह को पोंछ दीजिए। अगर ज़ख्म है या कट गया है तो अच्छी तरह धो दीजिए।

जब तक तकलीफ़ दूर न हो एक-एक या दो-दो घंटे का या २५–३० मिनट का अन्तर देकर पट्टी को दुहराते जाइए।

बहुत जगहों में पट्टी लपेटी नहीं जा सकती। वहां पट्टी को सिर्फ़ रख देते हैं और ऊपर से गर्म कपड़े रख देते हैं या अगर हो सके तो लपेट देते हैं।

बुख़ारों में इन गीली पट्टियों को नाभी (नाफ़) से नीचे तमाम पेड़ू पर रखने से बुख़ार बढ़ने नहीं पाता और रोगी को बहुत आराम मिलता है। बुख़ारों में मिट्टी की पट्टियां भी रखी जाती हैं। मिट्टी की पट्टियों के बारे में आगे बताया जायगा।

पेड़ू पर कपड़े की गीली पट्टी के लिए कपड़े को काफ़ी मोटा होना चाहिए और उसकी दो-तीन या तीन-चार तहें कर लेना ज़रूरी है। ऊपर से गर्म कपड़ा रखना या लपेटना न भूलिए, या अगर यह न हो सके तो गर्दन से नीचे सारे बदन को कम्बल से ढक दीजिए। अगर पेड़ू पर या कहीं भी गीली पट्टी रखने से पहनने के कपड़े भीग जायं तो उन्हें बदल देना चाहिए। कहने की ज़रूरत नहीं कि बुख़ारों में अगर शुरू से ही उपवास कराया जाय, एनीमा दिया जाय और पेड़ू पर गीली पट्टियां रखी जायं तो दो-तीन दिन में ही बुखार ज़रूर चला जायगा और कोई भी उपद्रव न होगा।

गीली पट्टियों के लिए ठंडा पानी काम में लाना चाहिए। पानी जितना ठंडा हो अच्छा है, पर बर्फ़ मिलाकर पानी ठंडा करना ठीक नहीं। गर्मी में, जहां ठंडा पानी बिलकुल नहीं मिलता, थोड़ी बर्फ़ मिलाकर पानी ठंडा कर सकते हैं।

जब किसी अंग में बहुत तेज़ दर्द है, और अगर बन सके तो, गर्म और ठंडी सेंक देनी चाहिए। सिर्फ़ गर्म सेंक से भी लाभ होता है। देख लेना चाहिए कि कैसी सेंक काम करती है। अगर सामान जुटे तो गीली पट्टियों से ही काम लेना चाहिए। अगर तकलीफ़ में जलन की मात्रा ज्यादा हो तो गीली पट्टियों का इस्तेमाल ज्यादा अच्छा है। बात यह है कि दोनों के असर क़रीब क़रीब बराबर हैं, क्योंकि गीली पट्टी पर गरम ऊनी कपड़ा लपेटने से शरीर को गर्म और ठंडी सेंक का लाभ और आनंद मिलता है।

(ब) सारे शरीर की गीली पट्टी—

एक तख्त़ (चौकी) पर या ज़मीन पर ही चटाई पर या अच्छी तनी खाट पर कम्बल फैलाइए। उस पर मोटी साफ़ चद्दर ठंडे पानी में इस तरह निचोड़ कर
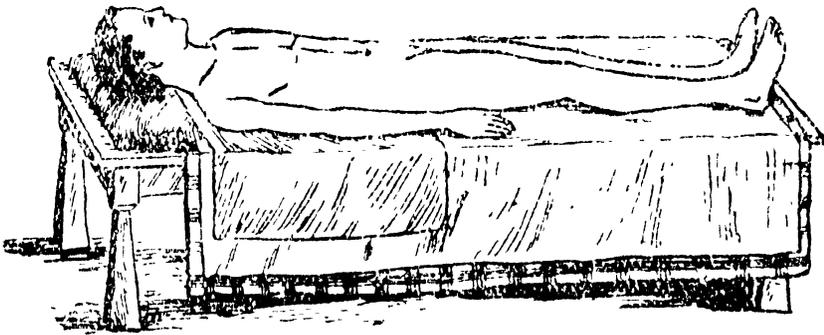
सारे शरीर की गीली पट्टी, पहली अवस्था

कि पानी न तो बिलकुल ही निकल जाय और न टपकता ही रहे, फैला दीजिए। उस पर एक ऐसा पतला कपड़ा ठंडे पानी में निचोड़ कर फैलाइए जो रोगी के बग़ल से निकल कर पीठ के नीचे से होता हुआ उसके सीने और पेट को ढँक ले। (१) अब रोगी को नंगा करके (या हल्की भीगी तहमत या भीगा पाजामा पहना कर) इन कम्बल और गीले कपड़ों पर इस तरह पीठ के बल लिटा दीजिए कि गर्दन से ऊपर उसका सिर बाहर निकला रहे पर शरीर का और सारा हिस्सा उन कपड़ों पर ही रहे। (२) अब जल्दी से पहले छोटे कपड़े को सीने और पेट पर हाथों को बाहर छोड़ते हुए लपेट दीजिए और हाथों को आराम के साथ बग़ल में ही रखते हुए (३) बड़ी चादर को पहले एक तरफ़ और फिर दूसरी तरफ़ से लाकर लपेटिए।

यह ख़याल रहे कि शरीर का सारा हिस्सा गीले कपड़े के सम्पर्क में आ जाय। कपड़े का जो हिस्सा पैरों के आगे निकला हुआ है उसे पैरों से मिलाते हुए अच्छी तरह तरह मोड़कर पैरों के ऊपर लाकर रख दीजिए। सारी टांगों को गीले कपड़े के सम्पर्क म अच्छी तरह आना ज़रूरी है। (४) अब कम्बल को पहले एक तरफ़
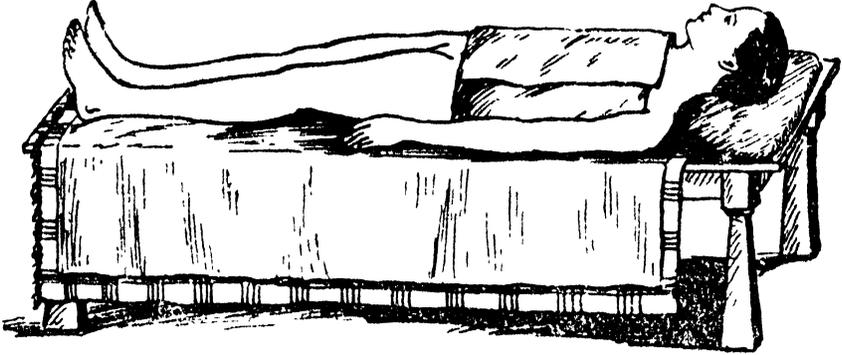
सारे शरीर की गीली पट्टी, दूसरी अवस्था

से और फिर दूसरी तरफ़ से ऊपर लाकर इस तरह लपेटिए कि गर्दन से पैरों तक सारा शरीर उसके अन्दर आ जाय। कम्बल का जो हिस्सा पैरों के आगे निकाला हुआ है उसे भी मोड़ कर पैरों के ऊपर लाकर रखिए और अगर ज़रूरत हो तो वहां पर और ऊपर भी दो तीन सेफ्टी पिन लगा दीजिए, जिससे कम्बल खुलने न पावे।
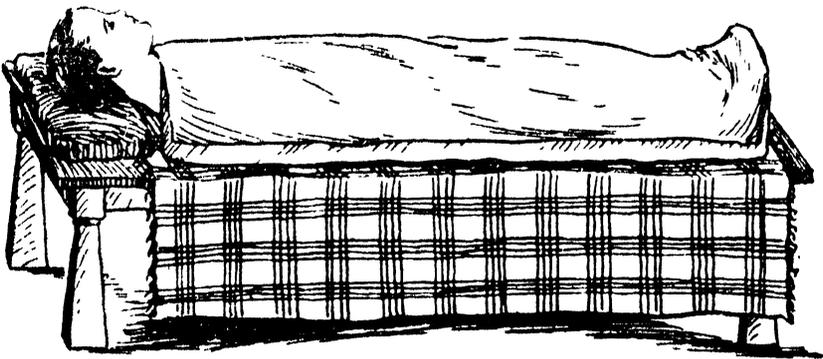
सारे शरीर की गीली पट्टी, तीसरी अवस्था

गर्दन के पास भी कम्बल अच्छी तरह लपेटा रहे। नीचे के गीले कपड़ों और कम्बल को ढीला न रहना चाहिए और न इस तरह कसा ही रहना चाहिए कि रोगी को तकलीफ़ मालूम हो। इस पृष्ठ के पहले और इस पृष्ठ में दिये चारों चित्रों से यह सारी बातें अच्छी तरह समझ में आ जायंगी।

पहले तो रोगी को ठंड मालूम होगी। छोटे बच्चे रोने जैसा करेंगे। लेकिन दो-तीन मिनटों में ही आराम मालूम होने लगता है और कम्बल के कारण शरीर में गर्मी फैलने लगती है। रोगी को उसी हालत में २० से ३० मिनट तक या और ज्यादा देर तक रहने दीजिए। उम्मीद है कि रोगी को पसीना निकलेगा। अगर पसीना न भी निकले तो काफ़ी गर्मी मालूम होगी। समय हो जाने पर पट्टी खोल
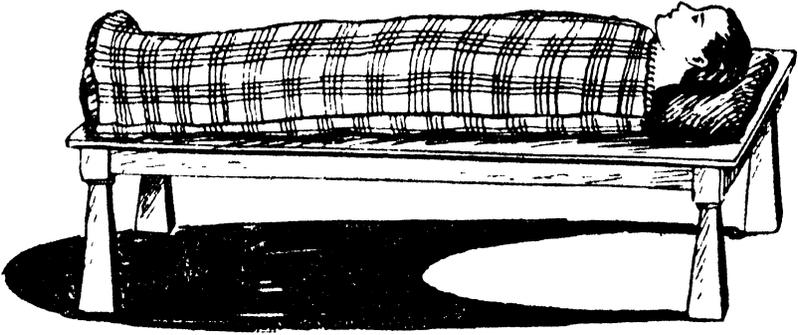
सारे शरीर की गीली पट्टी पूरी हो जाने पर

दीजिए। अगर रोगी पट्टी में ही सो जाय तो उसे सोने दीजिए। नींद खुलने के बाद पट्टी खोलिए। पट्टी खोलने पर, अगर रोगी मामूली तौर पर है तो, उसे अच्छी तरह, लेकिन जल्दी से, सिर से नहलाकर (डरिए नहीं) कपड़े पहना दीजिए और बिस्तर पर लिटा दीजिए। गर्म कपड़े ओढ़ा देने से उसे आराम मालूम होगा। अगर रोगी सबल नहीं है तो गीले कपड़े या तौलिए से सिर से लेकर सारे शरीर को अच्छी तरह पोंछ दीजिए। बिस्तर पर लेटने के बाद बिस्तर और ओढ़ने के कपड़ों की गर्मी से अगर उसे फिर पसीना निकले तो पसीने को गीले कपड़े से अच्छी तरह पोंछ दीजिए। फिर रोगी को आराम से लेटने दीजिए।

इस पट्टी का इस्तेमाल किसी तरह के तेज़ बुखार में करते हैं। पट्टी देने के बाद ही बुखार दो तीन डिग्री कम हो जाता है और धीरे धीरे घटता ही जाता है। (एक बार लेखक के ही चार साल के एक बच्चे को अल्मोड़े के पास एक पहाड़ी गांव में, जहां ठंड बहुत रहती है, रात के ६ बजे १०६ डिग्री का जोरदार बुखार हो गया। पट्टी देने के बाद बुख़ार पहले १०३ डिग्री और फिर १०१ डिग्री तक आकर रुक गया।) अगर बुखार उसी दिन फिर तेज़ी से बढ़ने लगे तो तीन-चार घंटे बाद पट्टी को फिर दुहराइए। डरने की ज़रूरत नहीं है। अगर बुख़ार आज

बहुत कम हो कर कल फिर बढ़ने लगे तो कल फिर पट्टी दीजिए। तीन-चार दिन के लगातार इस्तेमाल से कोई भी बुख़ार निश्चय जाता रहता है। सैकड़े पीछे ५० बुख़ार तो पहले ही दिन चले जाते हैं।

ज़ुकाम के शुरू-शुरू में दो दिन इस तरह की पट्टी देना मानो शरीर के विकारों को निकाल कर ज़ुकाम को जल्दी से बिदा करने के लिए जादू करना है। ज़ुकाम में पट्टी इतनी देर तक रहे कि पसीना निकल जाय। बताने की जरूरत नहीं कि जब तक बुख़ार बना रहे या जब तक ज़ुकाम का वेग बिलकुल कम न हो जाय उपवास करना या रस पीकर रहना जरूरी है। पट्टी में लिपटे रहने के ही समय रोगी को गर्म पानी के साथ नींबू या संतरे का रस देना अच्छा होता है।

बुख़ार में इस तरह सारे शरीर को ठंडे कपड़े से लपेटने और फिर नहलाने से लोग डरेंगे। लेकिन यह तो मामूली बात है कि बुख़ार में बदन में आग लगी रहती है। उस हालत में पानी से ही आराम मिल सकता है। पानी का इस्तेमाल किसी भी रूप में इस तरह करना चाहिए कि आग न तो बिलकुल बुझ जाय और न बढ़ने ही पावे; धीरे धीरे विकारों को जलाते हुए बुझे।

देखिए, पट्टियों से किस तरह फ़ायदा होता है। पहले तो ठंडे पानी के लगने से खाल के पास का ख़ून ठंड के कारण अन्दर भाग जाता है और अपनी जगह को बिलकुल खाली छोड़ जाता है। लेकिन प्रकृति (कुदरत) किसी भी जगह को खाली रखना नहीं चाहती, कुछ नहीं तो हवा से ही भर देती है। इस नियम के मुताबिक दूसरे ही क्षण शरीर के अन्दर के हिस्सों से ख़ून आकर खाल के पास की खाली जगहों को भर देता है। इससे ख़ून में हरकत होती है। आप जानते हैं कि शरीर में सारा खेल ख़ून का ही है, और ख़ून में अच्छी तरह हरकत होना जरूरी है। फिर कम्बल से गर्मी पैदा होती है, जिससे रोएं के छेद खुल जाते हैं और अन्दर के विकार बाहर आ जाते हैं। साथ ही एक तरह की बिजली पैदा होती है, जिससे जीवन-शक्ति बढ़ कर रोग को भगा देती है।

अब यह देखना है कि पट्टी में एक ही कम्बल इस्तेमाल करना चाहिए या ज़्यादा, एक ही ठंडी चादर हो या ज़्यादा। अगर बुख़ार तेज़ और ज़्यादा है तो एक कम्बल काफ़ी है, लेकिन गीली चादरें दो हों। अगर बहुत दिनों तक चलने वाले बुख़ार में बुख़ार की गर्मी हल्की रहे तो एक गीली चादर और एक कम्बल इस्तेमाल करने चाहिए। (यह बात कम्बल पर भी निर्भर है। कोई कोई कम्बल भारी और ज़्यादा गर्म होता है और कोई हल्का।)

कभी कभी ऐसी हालत में भी, जब कि रोगी का शरीर ठंडा पड़ गया है, सारे शरीर की गीली पट्टी से बहुत लाभ होता है। इस हालत में एक हल्की गीली चादर और दो-तीन या चार कम्बलों को इस्तेमाल करना चाहिए। कम्बलों के लपेटने के बाद बाहों और टांगों के पास गर्म पानी की बोतलें रखकर (ऐसी हालत में बोतलों को तौलिए से लपेटने की ज़रूरत नहीं है) ऊपर से एक और कम्बल ओढ़ा देना चाहिए। इतना ख़याल रहे कि जिस रोगी का शरीर ठंडा पड़ गया है उसे पसीना आने की ज़रूरत नहीं है। पट्टी खोलने के बाद उसके शरीर को ठंडे पानी के बदले मामूली गर्म पानी में भीगे कपड़े से पोंछना चाहिए। पसीना आने से कमज़ोरी बढ़ेगी।

गीली पट्टी के चार असर मामूली तौर पर होते हैं। पहला ठंडा, फिर न ठंडा न गर्म, तब गर्म और अंत में पसीना निकालने का। लगभग १५ मिनट तक ठंडा, फिर ठंडा न गर्म, २० मिनट के बाद गर्म और २५-३० मिनट के बाद पसीना निकालने का असर शुरू होता है। यह बात समय के अलावा गीली चादर और कम्बलों के नम्बर पर भी निर्भर है। १०३ डिग्री तक के बुख़ार में पसीना निकालने की कोशिश करनी चाहिए, पर १०४, १०५, १०६ डिग्री की हालत में टेम्परेचर को कम करने पर ही ध्यान रखना चाहिए। अगर बुख़ार १०४ डिग्री का या उससे भी ज़्यादा हो तो कम्बल लपेटने की ज़रूरत नहीं। १० मिनट के बाद पट्टी खोल कर शरीर को पोंछ देना चाहिए।

इस पट्टी को बिल्कुल बन्द जगह में न देना चाहिए। ज़ोर की हवा नहीं, पर काफ़ी साफ़ हवा का होना ज़रूरी है। हां, नहलाते या बदन पोंछते समय थोड़ी देर के लिए कमरा बन्द कर देना या बन्द कमरे में रोगी को ले जाकर नहलाना चाहिए।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, सभी रोगियों को पट्टी की हालत में गर्म पानी के साथ नींबू या सन्तरे का रस निचोड़ कर या सिर्फ़ गर्म पानी (काफ़ी गर्म पर इतना कि आसानी से पिया जा सके) पिलाना अच्छा है। इससे बदन में गर्मी आती है और पसीना निकलने की संभावना रहती है।

किसी किसी रोगी को आध-आध घंटे तक भी पट्टी में पड़े रहने पर गर्मी नहीं मालूम होती। ऐसी हालत में भी बोतलों में गर्म पानी भर कर बग़ल और टांगों के पास रख, ऊपर से एक और कम्बल ओढ़ा देना चाहिए। अगर बोतल न मिल सके तो ईंट या पत्थर के टुकड़ों को आग में हल्का गरम कर और उन्हें मोटे कपड़ों में लपेट कर बोतलों की ही तरह इस्तेमाल करना चाहिए।

लेखक ने इस सारे शरीर की गीली पट्टी को बुखार, जुकाम, चेचक, खारिश (खुजली), कोढ़, दमा और निमोनिया की हालतों में बहुत लाभ और सफलता के साथ इस्तेमाल किया है। दमा में सिर्फ पीठ, सीने और पेट को हर रोज़ ढकना चाहिए। और बीच बीच में दो तीन दिन के बाद सारे शरीर को। खाल के कठिन रोग में १५-२० दिनों तक वह पट्टी हर रोज़ दी जाय। यक्ष्मा में इस पट्टी का प्रयोग शुरू से ही करना चाहिए।

नोट---(१) पट्टी में इस्तेमाल किये हुए कपड़े को दूसरी बार तब तक इस्तेमाल न करना चाहिए जब तक कि वह अच्छी तरह धोया जाकर धूप में न सुखा लिया जाय; (२) पानी ताज़ा और मामूली ठंडा हो।

(स) रीढ़ की गीली पट्टी---तख्त पर या जमीन पर ही चटाई या कम्बल फैलाकर (खाट पर नहीं) पहले एक तकिया सिरहाने रखिए। फिर इस तकिये से समकोण बनाती हुई कपड़े की एक ऐसी गीली पट्टी रखिए, जो कम से कम आध या एक चौथाई इंच मोटी, एक फ़ुट चौड़ी और दो फ़ुट लम्बी हो। फिर उस पर इस तरह आराम के साथ लेट जाइए कि गर्दन के नीचे से रीढ़ का सारा हिस्सा गीली पट्टी पर अच्छी तरह पड़े। अगर तकिया के ऊँचा रहने से गर्दन के ठीक नीचे का हिस्सा गीली पट्टी से कुछ ऊपर रह जाय तो उस जगह पट्टी के नीचे एक एक अखबार का गोला लपेट कर या किसी दूसरी चीज को रख दीजिए, जिससे गीली पट्टी ऊपर उठकर शरीर के उस हिस्से के सम्पर्क में आ जाय। साथ ही एक पतला लेकिन पानी में भिगोया और अच्छी तरह निचोड़ा कपड़ा तैयार रखिए। पट्टी पर लेट जाने के बाद इस कपड़े को सीने और पेट पर अच्छी तरह फैला दीजिए। इसके बाद आराम के लिए और अन्दर गर्मी बनाये रखने के लिए ऊपर से एक हलकी गर्म चादर या दो कम्बल ओढ़ लीजिए। चेहरा खुला रहे। दो-तीन मिनट के बाद ही आराम मालूम होने लगेगा। पांच-छः मिनटों में सिर, आंख कान, नाक, मुंह में ठंडक मालूम होगी और सो जाने की इच्छा सी होगी। अगर पहले या दूसरे दिन नींद न भी लगे तो तीसरे चौथे दिन से झपकी जरूर आ जाया करेगी। इस पट्टी पर की नींद ज्यादा से ज्यादा एक घंटे तक रहती है। नींद खुल जाने पर, या अगर पहले दिन नींद न लगी तो १५-२० मिनट के बाद, उठकर पहले सिर को ठंडे पानी से धोकर अच्छी तरह पोंछ लीजिए। फिर गीले कपड़े से सारे शरीर को अच्छी तरह पोंछ कर कपड़े पहन लीजिए।

किसी साफ़ खुली जगह पर या कमरे में जहां अच्छी हवा आती हो, इस पट्टी

को लेना चाहिए, लेकिन गर्मियों में बन्द और अँधेरे कमरे में ही जहां पंखा चलता हो, इसे लेना लोग पसन्द करेंगे।

इस पट्टी से भी जादू का सा असर होता है। आप जानते हैं कि रीढ़ के अन्दर नाड़ी-संस्थान (nervous system) की असल शाखा है और नाड़ी-संस्थान के ठीक रहने से ही शरीर की सब क्रियाएँ होती हैं। बे-ढंगा खाने-पीने और रहने से उसमें गर्मी आ जाती है, जिससे बहुत सी खराबियां पैदा होती हैं। इस गर्मी को दूर कर रीढ़ को मजबूत करने के लिए रीढ़ पर यह गीली पट्टी बहुत अच्छी है। एक आदमी को, जिसे ३० वर्षों से अपच और कब्ज की शिकायत रहती थी, पट्टी के हर रोज बाद साफ़ पाखाना होने लगा और कुछ ही दिनों में भूख खुल कर लगने लगी। कहने की जरूरत नहीं कि वह खाने-पीने के नियमों का भी पालन करता था। जिन्हें नाड़ी-संबंधी कमजोरी है, नींद बिलकुल नहीं या अच्छी नहीं आती, सिर में खप्त सा रहता है और यों भी जो तनदुरुस्ती को अच्छा रखना चाहते हैं, उनके लिए रीढ़ की पट्टी बहुत लाभदायक है। गर्दन-तोड़ बुखार (cerebro-spinal meningitis) में इससे बहुत लाभ होता है।

यों तो यह पट्टी जभी जरूरत मालूम हो तभी ली जा सकती है, लेकिन मामूली तौर से तनदुरुस्ती को ठीक रखने और बढ़ाने के लिए दोपहर के खाने के एक घंटे बाद इसको लेना बहुत अच्छा है। गर्मी के दिनों में, जब कि स्कूल-कालेज या दफ्तर सुबह में ही होते हैं या बन्द हो जाते हैं और सभी लोग दोपहर में सोना पसन्द करते हैं, यों ही न लेट कर इस पट्टी पर लेटना बहुत लाभदायक होगा।

पट्टी के लिए पानी काफ़ी ठंडा हो। थोड़ी सी बर्फ़ का इस्तेमाल तभी किया जाय जब कि ठंडा पानी न मिलता हो। इस हालत में भी अगर घड़े में पहले से रखा ठंडा पानी हो तो वह सब से अच्छा है। कमजोरों के लिए या ठंडे पानी से डरने वालों के लिए या गर्दनतोड़ बुखार में एक दो बार पहले ऐसे पानी में जो न ठंडा हो न गर्म, पट्टी को भिगोना और निचोड़ना चाहिए। गर्दनतोड़ बुखार में, दिन रात में, दो-दो या तीन-तीन घंटों का अन्तर देकर वह पट्टी तीन-चार बार दी जा सकती है।

इस रीढ़ की पट्टी के बदले उपस्थ-स्नान (मेहन नहान) लिया जा सकता है। किसी किसी के लिए पट्टी अच्छी होती है और किसी किसी के लिए 'उपस्थ स्नान'। 'उपस्थ-स्नान' के बारे में आगे बताया जायगा। उपस्थ-स्नान के बदले पट्टी ली जा सकती है।

विशेष स्नान या ख़ास ख़ास नहान

प्राकृतिक चिकित्सा में कई तरह के स्नान या नहान का प्रयोग है। इनमें से कुछ जरूरी नहान नीचे बताये जाते हैं:—

कटि-स्नान (कमर-नहान)*—
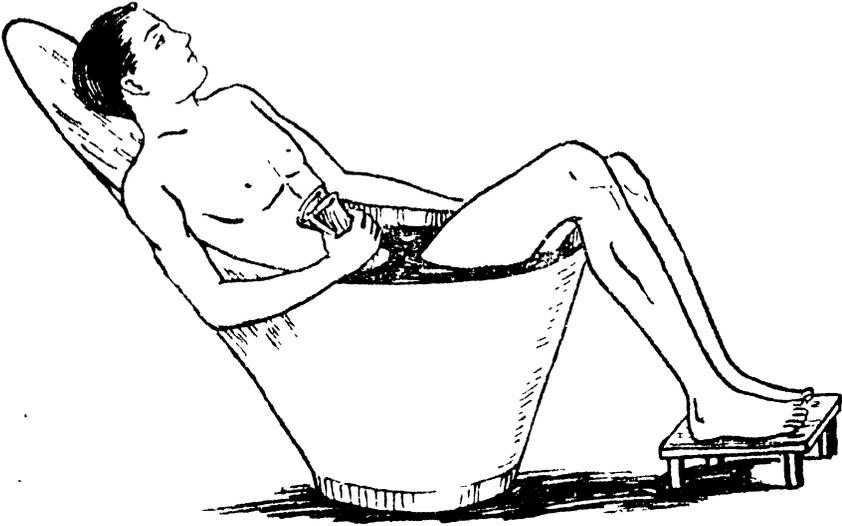
यह लुई कूने का फ्रिकशन हिप-बाथ (Friction hip-bath) है।

तस्वीर में दिये हुए टब की तरह एक अच्छा सा टब चाहिए। ऐसा टब इलाहाबाद के बाजार में कोतवाली के पास पहले ढाई-तीन रुपये में मिलता था। दूसरी जगह भी मिलता होगा या बनवाया जा सकता है। किसी धातु या लकड़ी का यह टब हो सकता है, पर मामूली तौर से लोहे की चद्दर का टब अच्छा है। दिहातों में मिट्टी के नांद (नाद) से ही काम निकालते हैं, क्योंकि इस नहान में जरूरी बात यह है कि नाभी से लेकर जांघ से कुछ आगे तक का बदन का सारा हिस्सा पानी के अन्दर रहे। पेट का कुछ हिस्सा भी अगर पानी में रहे तो कुछ हर्ज नहीं लेकिन सीना, जिसके अन्दर बाईं तरफ़ दिल और उसके पास ही दाहिनी तरफ़ फेफड़े हैं, और गर्दन-सिर को पानी से ऊपर रहना चाहिए। इसी तरह घुटनों के ऊपर का कुछ हिस्सा, घुटनों और सारी टांगों को पानी के बाहर रहना चाहिए। पीठ की तरफ़ अगर पानी कुछ ऊँचा भी पहुंच जाय तो हर्ज नहीं। तस्वीर

* पहले इसका नाम पेड़ू नहान था।

में दिखाये गये की तरह बिलकुल नंगा होकर टब में आराम से बैठना चाहिए। पैरों के आराम के लिए, अगर जरूरी हो तो एक तिपाई या लकड़ी की ऊँची पटरी या ईंट को काम में लाना चाहिए।

पहले से ही एक मोटे चिकने कपड़े के टुकड़े या तौलिये को तहकर और लपेट करके एक गोला सा बना लेते हैं। उसी से पूरे पेड़ू को एक तरफ़ और ऊपर से नीचे लगातार रगड़ना चाहिए। रगड़ इतने जोर की न हो कि तकलीफ़ मालूम होने लगे और न इतनी हल्की ही हो कि कुछ भी जोर न मालूम हो। शुरू शुरू में इस नहान को ५ से ७ मिनट तक ही लेते हैं, फिर हर दो-तीन दिनों के बाद एक-एक या दो-दो मिनट बढ़ाते रहना चाहिए। पन्द्रह मिनट तक पहुँच कर कम से कम सात दिन आगे न बढ़ना चाहिए। इसके बाद फिर समय को धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए। ज्यादा से ज्यादा आध घंटे का समय काफ़ी है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, समय को धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए। जल्दबाजी करना ठीक नहीं। गर्मी के दिनों में या अगर रोगी सबल है तो, पहले दिन से ही १० मिनट का नहान शुरू कर सकते हैं।

मामूली तौर पर तनदुरुस्ती ठीक रखने की गरज से एक मामूली तनदुरुस्त आदमी के लिए सबेरे या शाम को एक बार २० मिनट का कमर-नहान काफ़ी होगा।

शुरू बुख़ार की हालत में दो-तीन दिन सुबह शाम ७-७ मिनट का (गरमी में १०-१० मिनट तक का) नहान (अगर रोगी कमजोर हुआ तो ५ मिनट का ही) लेना चाहिए। बुखार छूट जाने के बाद भी ५-७ दिन तक उसे जारी रखना चाहिए। अगर बुख़ार में परेशानी बढ़ने लगे तो पहले दिन से ही तीन नहान दिन भर में दे सकते हैं। कमजोर रोगियों को भी ज़्यादा तेज़ बुख़ार की हालत में दो तीन घंटे का अन्तर देकर तीन तीन मिनट का नहान देते हैं। तेज बुख़ार की हालत में दिन में छः छः बार तक नहान दिये जा सकते हैं।

पानी के अन्दर पेड़ू का मलना कोई ख़तरनाक बात नहीं है, लेकिन बदन में ठंड पहुँच जाने के बाद फिर से गर्मी का आ जाना जरूरी है। इसलिए नहान के बाद ही बदन को अच्छी तरह पोंछकर कमजोर रोगियों को बिस्तर पर लिटा देते हैं और ऊपर से काफ़ी गरम कपड़े डालते हैं। इस तरह गरम कपड़ा ओढ़ कर लेटे रहना आध घंटे के लिए काफ़ी होगा। जिनके बदन में गर्मी जल्द नहीं आती उनके पेड़ू पर फ़लालैन या किसी भी ऊनी कपड़े को लपेट कर ऊपर से रज़ाई या कम्बल डाल देना चाहिए। जो ज़्यादा

कमजोर नहीं है उसे गर्म कपड़े पहन या ओढ़कर जितनी तेजी से बन सके टह-लना चाहिए। जो कसरत कर सकता है उसे या तो बिलकुल नंगा या हल्के कपड़े पहनकर अपनी ताक़त भर कसरत करनी चाहिए। गर्मी के दिनों में गरम कपड़े पहनने की जरूरत नहीं है। इस नहान के बाद बदन पर पसीना का आना बहुत अच्छा समझा जाता है, लेकिन कमजोर रोगियों को ऐसी कोई भी हरकत न

माता बच्चे को कमर-नहान दे रही है

करनी चाहिए, जिससे थकान हो। उनके लिए इतना ही काफ़ी है कि बदन में गर्मी छा जाय। किसी भी हालत में पसीने के लिए चिंता न करनी चाहिए।

मामूली तौर पर जीर्ण रोगों को, ख़ास कर अपच के किसी प्रकार को, दूर करने के लिए सबेरे और शाम दोनों ही समय कमर-नहान अच्छा रहता है। नहान के बाद एक समय शक्ति भर कसरत और दूसरे सयम टहलना अच्छा होता है। दोनों बार सिर्फ़ टहलना भी अच्छा है।

इस नहान को ऐसे बन्द कमरे में, जहां थोड़ी सी साफ़ हवा भी मिलती हो, लेना चाहिए।

अब सवाल यह है कि पानी कितना ठंडा हो। जितनी भी ठंड आसानी से सही जा सके ठीक है। जाड़ों में कमज़ोर रोगियों के लिए ठंडे पानी में बहुत थोड़ा गरम पानी मिलाकर ठंड को मार देते हैं। उसे गरम न करना चाहिए। साधारण हालत में पहले नल या कुएँ के ताज़े पानी से काम लेना चाहिए। फिर धीरे धीरे ज़्यादा ठंडा पानी इस्तेमाल करना चाहिए। गर्मियों में या वैसे भी घड़ों में पहले से पानी भर कर और घड़ों को रेत पर रख कर पानी को तैयार करना ज़रूरी होता है। जब किसी भी तरह ठंडा पानी न मिले तो थोड़ी सी बर्फ़ मिला कर पानी को ठंडा कर लेते हैं। ज़्यादा बर्फ़ मिलाने से पानी जल्द गरम हो जाता है और गरम पानी से तो अपना काम निकल ही नहीं सकता। यहां तो कमर के पास के नाड़ी-जाल को ठंडा और उत्तेजित करना और बदन के अन्दर की दाह को, जो कि ज़्यादातर पेड़ू में ही रहती है, शान्त करना है—इसलिए पानी जितना ठंडा हो अच्छा है।

अगर पानी ठंडा नहीं है तो उससे लाभ न होगा। हां, कमज़ोर रोगियों को अभ्यास डालने के लिए शुरू-शुरू में कम ठंडा पानी ही ठीक होता है। मोटे, चर्बीदार पेड़ू वाले आदमी के लिए काफ़ी ठंडा पानी चाहिए।

जाड़ों में भी अगर कमरे के अन्दर एक या दो बिल्कुल जलते कोयलों की (जिसमें धुआं न हो) अंगीठी टब के पास रख ली जायँ तो ठंडे पानी से आराम मिलता है। अगर अंगीठी न मिले तो ऊपर से एक कम्बल इस तरह डाला जा सकता है कि वह पीठ की तरफ़ से आकर बीच में ऊपर को उठता हुआ पैर के नीचे दबा रहे। यह इस तरह किया जाता है:—टब के पीछे एक कुर्सी रखिए। उस कुर्सी पर ईंट के सहारे कम्बल का एक सिरा दबा कर कम्बल को सिर के ऊपर से पैर की तरफ़ ले जाइए और उसके दूसरे सिरे को या तो पैरों के नीचे दबा दीजिए या उधर भी एक दूसरी कुर्सी रख कर ईंट के सहारे कम्बल को ठीक ठीक रख दीजिए। इसी हालत में कमज़ोर रोगियों को कमर-नहान लेना चाहिए।

किसी किसी कमज़ोर रोगी के पैर ठंडे रहते हैं। इनके लिए गरम मोज़े पहन कर या पैर पर गरम कपड़े डाल कर कमर-नहान ठीक होगा। बहुत कमज़ोर रोगियों के लिए और मलेरिया बुख़ार में

अच्छा होगा कि साथ ही 'पैरों का गरम-नहान' (आगे देखो) भी दिया जाय। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सीना न भीगे।
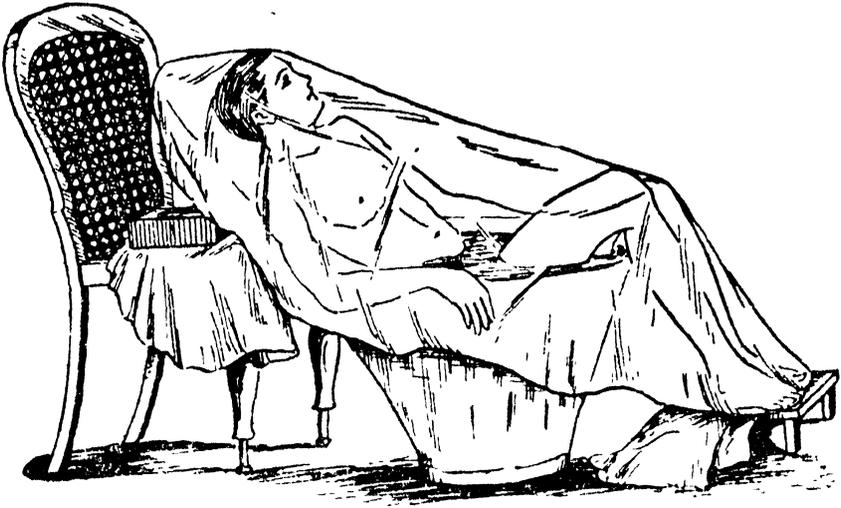
कमर-नहान में बदन को ढकना

इस नहान को सभी इलाज के शुरू में कुछ दिनों तक लेना चाहिए। बुखार के शुरू में अगर यह नहान लिया जाय तो दो-तीन नहान के, या कभी कभी तो पहले ही नहान के, बाद बुखार भाग जाता है। जितने भी बुखार होते हैं शुरू-शुरू में मामूली होते हैं। आगे चल कर वे या तो टाइफायड (मियादी) या निमोनिया वाले या चेचक के या गर्दनतोड़ बुखार या और किसी बीमारी का रूप धारण करते हैं। अगर शुरू में ही कमर-नहान या सारे शरीर की गीली पट्टी से काम लिया जाय तो कोई भी उपद्रव न हो। हां, मैलेरिया में कुछ और उपचार की आवश्यकता होती है। वह आगे बताया जायगा।

यह पूछा जा सकता है कि बुखार में कब कमर-नहान और कब सारे बदन की गीली पट्टी लेनी चाहिए। इसके लिए कोई खास नियम नहीं है। हां, अगर सारे बदन में बहुत जलन हो, जैसी कि लू लगने पर या चेचक निकलने के पहले वाले बुखार में होती है, तो गीली पट्टी से बहुत आराम मिलता है। जब सारे शरीर की सतह पर असर डालने की जरूरत हो तो सारे शरीर की गीली पट्टी ही अच्छी होती है। अगर टब न मिल सके तो हर हालत में गीली पट्टी ही ठीक होगी। अगर बुखार बहुत तेज हो

और बदन में जलन हो, जैसी कि चेचक के बुखार में होती है, तो ४-५ घंटों का अन्तर देकर दोनों लेना चाहिए। बात यह है कि उपवास के साथ साथ कोई भी क्रिया कर ली जाय या सिर्फ़ एनीमा ही ले कर पेट साफ़ कर लिया जाय तो नई बीमारी की कमर टूट जाती है और आगे कुछ भी ख़तरा नहीं होता। ख़तरा या गड़बड़ी तो तभी होती है जब कि गरम दवाएं झोंकी जाती हैं और दवाओं की गर्मी को शान्त करने के लिए दूध या साबूदाना या और कुछ खिलाया-पिलाया जाता है।

किसी भी पुराने रोग में, उचित आहार (चोकरदार आटे की मामूली रोटी या बे-छटे चावल का भात और लौकी, परबल, नेनुआ या तरोई की सादी पकी तरकारी या सिर्फ़ फल या सिर्फ़ भाजी-तरकारी, शक्ति के अनुसार) के साथ पहले एक महीने तक सुबह-शाम कमर-नहान लेना चाहिए। सैकड़े पीछे ५० पुराने रोग तो इसी से जाते रहेंगे, लेकिन कुछ पुराने रोग बहुत हठी होते हैं। उनको दूर करने के लिए और और नहान और क्रियाएँ जरूरी होती हैं। इनमें एक नहान 'उपस्थ-स्नान' (पहले संस्करणों का 'मेहन नहान') है, जो अभी आगे बताया जायगा।

कमर-नहान से कमर के पास का नाड़ी-जाल, जो शरीर को ठीक हालत में रखता है, जाग उठता है, और पेड़ू के अन्दर के ज़रूरी कल-पुर्जे ठीक होते हैं। पेड़ू के अन्दर छोटी आंत और बड़ी आंत है। छोटी आंत पचे भोजन से रस खींचती है और बड़ी आंत भोजन के बचे बेकार चीजों (विकार या मल) को पाखाने के रूप में बाहर निकालती है। इन दोनों का काम ठीक होना चाहिए। ख़ासकर अगर बड़ी आंत के रास्ते शरीर के अन्दर का विकार बाहर न निकल जाय तो अनेक गड़बड़ी पैदा होती हैं। पेशाब निकलने वाले कल-पुर्ज़ों को भी पेड़ू से सरोकार है। बकायदा रहन-सहन और खान-पान से पाख़ाना-पेशाब ठीक ठीक नहीं होता, जिससे पेड़ू के अन्दर विकार और गर्मी जमा रहती है। फिर यहीं से विकार दूसरे दूसरे रूपों में फैल कर शरीर के दूसरे हिस्सों में जा बसते हैं, जिससे तरह तरह की बीमारियां होती हैं। इसलिए कमर-नहान से सिर्फ़ पेड़ू की ही गर्मी नहीं सारे शरीर की गर्मी दूर होती है। बुखार में सब से ज़्यादा गरम शरीर का यही हिस्सा रहता है। इस हिस्से में बहुत ज़्यादा गर्मी रहने से कभी-कभी और हिस्सों में ठंडक छा जाती है और इसी हालत को जाड़ा-बुख़ार कहते हैं। कमर-नहान लेने का मतलब यह है कि गर्मी की जड़ को ही

ठंडा किया जाय, और इस नहान से, जैसा कि ऊपर बताया गया है, और हिस्सों से भी विकार खिंच कर पेड़ू में वापस आ जाता है और पेशाब के रूप में बाहर निकल जाता है।

लेकिन कमर-नहान से असल लाभ कुछ और होता है। कमर के पास नाड़ियों के गुच्छे रहते हैं। ये सब ठंडे और सजीव हो जाते हैं, और इसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। असल में यह कमर का ही नहान (hip bath) है पर लाभ कमर और पेड़ू दोनों को होता है।

कमर-नहान या किसी भी नहान के साथ भोजन का परहेज जरूरी है। लोग पूछेंगे कि ऐसा क्यों है। परहेज इसलिए चाहिए कि विकारों के निकलते समय ऐसा न हो कि बाहर से नए विकार आते रहें।

चिकित्सा के दिनों में वायुविकार बढ़ाने वाली चीजों को भ न खाना चाहिए। अन्न में दाल, भाजियों में अरवी (घुइयां, पेक्ची), बंडा (कंदा), लोभिया (बोड़ा), सेम। दूधों में भंस का दूध इत्यादि चीजें वायुकारक हैं। अगर शरीर में वायु बनती रहेगी तो और उपचारों से सच्चा लाभ न होगा। चिकित्सा के समय सभी तरह शरीर को सम्हालना होता है।

बहुत पुराने रोगों में बहुत दिनों तक कमर-नहान या और नहानों की जरूरत पड़ती है। ऐसी हालत में एक डेढ़ महीना नहान ले कर आठ-दस दिन के लिए छोड़ देते हैं, फिर एक डेढ़ महीने तक नहान जारी रखते हैं। पुराने रोगों में, ख़ासकर जो आठ-दस या २५-३० साल का पुराना है, उसमें कई महीने के इलाज से पूरा फ़ायदा होता है। इसलिए ऐसी हालत में धीरज के साथ इलाज करते जाना चाहिए। जब इलाज को बहुत दिनों तक जारी रखना हो तो सुबह-शाम चोकरदार आटे की रोटी या दिन में बे-छटे चावलों का भात और सादी पकी भाजी खानी चाहिए। इससे भी अच्छा होगा एक समय रोटी-भाजी खाना और दूसरे समय फल या फल और दूध।

बहुत दिनों तक चलने वाले कमर-नहान में किसी किसी को दो-तीन दिनों के बाद से ही बहुत मात्रा में पेशाब और पाख़ाना होने लग जाते हैं। किसी किसी को पेशाब ज़्यादा आता है लेकिन पहले कुछ दिनों के लिए कब्ज बना रहता है। ऐसी हालत में नहान के पहले या बाद एनीमा से हर रोज़ पेट साफ़ कर लेना चाहिए। एनीमा और नहान में मामूली तौर से एक घंटे का अंतर रहे; कमजोरों को दो घंटे का अंतर देना चाहिए। लेकिन

किसी किसी हालत में, जैसे पेट के सख्त दर्द में, पहले गरम एनीमा और उसके तुरन्त बाद ही कमर-नहान लिया जा सकता है। किसी किसी के मुंह का स्वाद फीका हो जाता है। ऐसे रोगी को भी तब तक हर रोज़ एनीमा लेना चाहिए, जब तक स्वाद ठीक न हो जाय। किसी किसी का कोई दबा हुआ पुराना रोग फिर से उभड़ जाता है। इस हालत में घबराना न चाहिए, क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा से सभी ख़राबियां जड़ से दूर हो जाती हैं। रोगों के उभाड़ के बारे में आगे बताया जायगा।

(ब) उपस्थ-स्नान--

यह लुई कूने का फ्रिक्शन सिज़-बाथ (friction sitz bath) है। (इसे पहले 'मेहन-नहान' कहते थे)। पहले बतलाए टब में या किसी भी टब में एक तिपाई रख दी जाती है। टब में इतना पानी भरा जाता है कि वह तिपाई पर चारों ओर से टकराता रहे लेकिन बैठने की जगह गीली न हो। नहाने वाला पैरों को टब के बाहर निकाल कर उसी तिपाई पर बैठ जाय और फिर एक मोटे या मुलायम कपड़े को पानी में भिगो भिगो कर लगातार जननेन्द्रिय (पेशाब की इन्द्रिय) के अगले बाहरी भाग को धोवे।

अगर नहाने वाली औरत है तो कपड़े से एक बार जितना पानी उठाया जा सके उतना उठाना चाहिए और ऊपर से नीचे लगातार धोना चाहिए। जननेन्द्रिय को बहुत ज़ोर से रगड़ना न चाहिए। एकदम नंगी हो कर नहाना चाहिए। टांग, पैर और शरीर का ऊपरी हिस्सा सूखा रहे। अगर चूतड़ पानी से भीग जाय तो कोई हर्ज नहीं। मासिक धर्म के समय यह या और कोई स्नान बन्द रखना चाहिए। मासिक धर्म में ज़्यादा से ज़्यादा ४ रोज़ लगते हैं। लेकिन अगर चार रोज़ से अधिक ख़ून जारी रहे तो यह समझ लेना चाहिए कि स्त्री के बीमारी है। इसलिए ऐसी हालत में छठे दिन से फिर नहाना शुरू कर देना चाहिए। स्त्री-रोगों के बारे में आगे बताया जायगा।

यह स्नान रोगी की उम्र और उसके रोग के अनुसार १० मिनट से एक घंटे तक लिया जा सकता है। साधारण हालतों में १५ मिनट से शुरू करना चाहिए। जाड़ों में कमरे को गरम रखना चाहिए। इस नहान में पानी जितना ठंडा होगा उतना ही फ़ायदा होगा लेकिन इतना ठंडा न हो कि स्नान करने वाले को तकलीफ़ मालूम हो।

टब इतना बड़ा अवश्य हो कि एक स्टूल रक्खी जा सके और उसमें लगभग २० सेर पानी आ जाय। अगर टब छोटा होगा तो पानी जल्द गरम हो जायगा।

मर्दों के लिए इस नहान की वही विधि है जो स्त्रियों के लिए। स्नान करने वाले पुरुष को चाहिए कि वह इन्द्री को बन्द कर ले और फिर जिन उँगलियों से सुविधा हो उनसे उसके अगले हिस्से के चमड़े को बायें हाथ से खींच कर पानी के भीतर ले जाय और दायें में कपड़ा ले कर उससे उसे (आगे के चमड़े को) लगातार ऊपर से नीचे रगड़ रगड़ कर धीरे धीरे धोवे। इन्द्री का बिल्कुल आगे का हिस्सा, बाहर खिंचा हुआ चमड़ा ही, धोना इस नहान में ज़रूरी है। इसलिए इस खिंचे हुए चमड़े को सामने से बिलकुल नहीं पकड़ना चाहिए। सिर्फ़ एक तरफ़ से उँगलियों के सहारे इस तरह चमड़ा खींचना चाहिए कि इस हिस्से को अच्छी तरह धोया जा सके।

मुसलमानों का यह ऊपरी चमड़ा खतने के समय काट दिया जाता है। उनको इस तरह बैठना चाहिए कि वे उस हिस्से को तौलिए से रगड़ सकें जो अंडकोष और पाखाने के रास्ते के बीच है।

जो रोगी भीतर की सूजन से बीमार हैं या जिनके भीतरी अंगों में पुराने रोग के कारण विकार आ गया है उनकी भीतरी सूजन कुछ नहान के बाद ही नीचे खिचकर जननेन्द्रिय के दोनों तरफ़ आ जाती है। इससे घबड़ाना न चाहिए। नहान को जारी रखना चाहिए और उस जगह पर मिट्टी की पट्टी (आगे देखिए) और भाप-नहान देना चाहिए।

सवाल यह है कि इस नहान के लिए जननेन्द्रिय का ही चमड़ा क्यों चुना गया। सच्ची बात यह है कि इस काम के लिए इससे बढ़ कर कोई भी दूसरी जगह नहीं है। शरीर के किसी भी हिस्से में ख़ास ख़ास नाड़ियों के इतने सिरे नहीं हैं, जितने जननेन्द्रिय के इस हिस्ससे में। इसको धोने से सारे शरीर पर उसका असर पड़ता है। जननेन्द्रिय को धोने से भीतर बढ़ी हुई गर्मी केवल कम ही नहीं हो जाती बल्कि नाड़ी-संस्थान में भी ताज़गी आ जाती है। इससे शरीर के सभी हिस्सों में जीवन-शक्ति पहुँचती है। तनदुरुस्ती के लिए दो ही बातें ज़रूरी हैं—भोजन का ठीक ठीक पचना और नाड़ी-संस्थान का ठीक हालत में रहना। सो ये दोनों बातें कमर-नहान और उपस्थ-स्थान से हो जाती हैं।

ऊपर बताया गया है कि टब में तिपाई रख और उसी पर बैठ कर इस नहान को लेना चाहिए, पर क्या बिना टब के यह नहान नहीं लिया जा सकता? ज़रूर लिया जा सकता है। जिस तरह भी बिना पैरों को भिगोए जननेन्द्रिय का अगला बाहरी भाग धोया जा सके धोना चाहिए। एक कुर्सी या चौकी पर बैठ और अपने बिलकुल पास सामने एक बड़ी बाल्टी रख कर भी वही काम हो सकता है। ध्यान सिर्फ़ यह रहे कि पानी
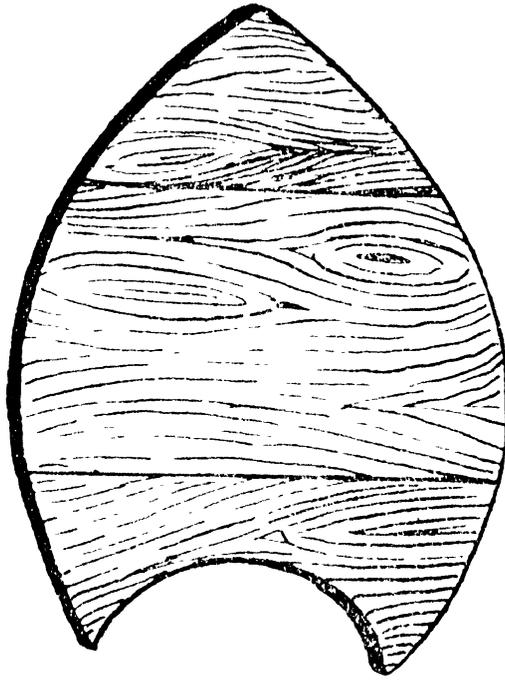
उपस्थ-स्नान के लिए काठ की पटरी

उछल उछल कर पैरों पर न पड़े। टब में ही तिपाई रखने के बदले तस्वीर में दी हुई पटरी की तरह काठ की पटरी इस्तेमाल की जा सकती है। इस पटरी पर बैठ कर आगे के आधी गोलाई के कटे हिस्से में जो पानी दिखता रहता है उसी में इन्द्री को डुबो कर या पास रखकर उपस्थ-स्नान लिया जा सकता है। जो रोगी बहुत कमज़ोर है उसके लिए अच्छा होगा कि लेटे रहने की अवस्था में ही एनीमा की टोंटी से उसके जननेन्द्रिय पर पानी की धार छोड़ी जाय। पानी लगातार गिरता रहे और बह जाय या किसी बर्तन में जमा हो। रोगी के नीचे मोमजामा या आयल क्लाथ रखना चाहिए। उसके पैर न भीगें।

इस नहान के बारे में भी वही नियम लागू हैं जो कमर-नहान के लिए बताए गये हैं।

पूछा जा सकता है कि किन हालतों में कमर-नहान और किन हालतों में उपस्थ-स्नान लिया जाता है। बात यह है कि बहुत हालतों में दोनों साथ-साथ चलते हैं। पुराने रोगों में पहले तीन हफ़्ते या एक महीना सुबह-शाम कमर-नहान और इसके बाद सुबह को कमर-नहान और शाम को उपस्थ-स्नान या सुबह को उपस्थ-स्नान और शाम को कमर-नहान लेते हैं। औरतों की बीमारियों में कुछ दिनों तक दोनों नहान लेकर सिर्फ़ उपस्थ-स्नान को ही दोनों समय जारी रखना होता है। किसी भी हालत में, जैसे चेचक में जब कि पेड़ू पर भी दाने निकले हों, या किसी हालत में जब कि कमर-नहान लेना न बने तो सिर्फ़ उपस्थ-स्नान से ही काम लेना चाहिए। नाड़ी की ख़राबियों में, नींद न आने की हालत में, सिर में बे-चैनी रहने की हालत में, मृगी और पागलपन इत्यादि रोगों में उपस्थ-स्नान बहुत फ़ायदे का होता है।

उपस्थ-स्नान के बदले या उसके साथ साथ रीढ़ की गीली पट्टी, जो पहले बतलाई जा चुकी है, बहुत फ़ायदे के साथ ली जा सकती है। इन सब नहान या गीली पट्टी के इस्तेमाल में यह देखना चाहिए कि रोगी पानी से घबराता है या नहीं और अगर घबराता है तो कितना घबराता है। फिर उसी के अनुसार काम करना चाहिए। पानी के इस्तेमाल से ख़राबी तो नहीं होती, पर पहले एक-दो बार रोगी का मिजाज और ख्वाहिश देखना भी ज़रूरी है।

कमर-नहान और उपस्थ-स्नान के सम्बन्ध में इन बातों का ख़याल रखना चाहिए—(१) बँधे समय पर ये नहान हर रोज़ लिए जायँ। (२) इन नहानों के दो घंटे बाद या पहले मामूली स्नान कर सकते हैं। लेकिन चिकित्सा के लिए पहले यह नहान लेकर और तब दो घंटे के बाद मामूली तौर पर नहाना चाहिए। मज़बूत आदमी, जो तनदुरुस्ती बनाए रखने के लिए यह नहान लेते हैं, मामूली तौर पर नहाने के बाद तुरन्त ही कमर-नहान या उपस्थ-नहान ले सकते हैं, लेकिन रोगियों और कमजोरों के लिए दोनों नहानों में अंतर देना ज़रूरी है। इन नहानों के एक घंटे बाद भोजन कर सकते हैं, पहले नहीं। (३) नहान के बाद पानी पी सकते हैं, पर बहुत ठंडा नहीं। (४) भोजन के कम से कम दो घंटे बाद नहान लेना चाहिए। लेकिन अगर भोजन के बाद कोई तकलीफ़, ख़ासकर पेट की, शुरू हो जाय तो दो

घंटे से पहले भी ये स्नान लिए जा सकते हैं। (५) नहान के दिनों में भोजन पर बहुत ख़याल रखना चाहिए। मिर्च-मसाले, प्याज-लहसुन और तेल की पकी चीज या और गरम चीज़, जैसे चाय, कहवा और तम्बाकू का व्यवहार बिल्कुल मना है। (६) ब्रह्मचर्य का पालन ज़रूरी है। (७) जब बदन ठंडा रहे तो कोई नहान न लेना चाहिए। बदन को रगड़ कर या गरम कपड़े से ढक कर गरम कर लीजिए।

ठंडा बैठक-नहान--

ऊपर बताए गए नहान जर्मनी के मशहूर चिकित्सक लुई कूने के निकाले हुए हैं। आजकल के प्राकृतिक चिकित्सक एक प्रकार के मामूली बैठक-नहान से काम लेते हैं और इसे भी वे सिज़-बाथ (sitz bath) कहते हैं। इसमें एक ऐसे मामूली गोल टब में बैठा जाता है, जिसमें ४-५ इंच गहरा ठंडा पानी रहे। रोगी इस तरह बैठ जाय कि पैर, चूतड़ और जननेन्द्रिय (बहुत कुछ) पानी में रहें और घुटने पानी के बाहर ऊपर उठे रहें। टब में बैठने के बाद ही घुटनों को अगल-बग़ल फैलाते हुए हाथों से पेड़ू पर पानी छिड़कना चाहिए और तब दोनों हाथों से पेड़ू को तेज़ी से रगड़ना चाहिए। फिर पानी में डूबे अंगों को हाथों से तेज़ी से रगड़ना चाहिए और तब पानी से निकल कर तौलिए से बदन पोंछ लेना चाहिए। सबल आदमी हाथ से ही शरीर को रगड़-रगड़ कर पानी को सुखा सकते हैं। इस नहान को ३-४ मिनट से शुरू कर के १०-१२ मिनट तक ले जा सकते हैं। पानी सहने के लायक ठंडा हो, पर आगे चल कर जितना ठंडा हो अच्छा होगा।

इस नहान से शरीर के निचले हिस्से के कल-पुर्ज़ों, ख़ासकर जननेन्द्रियों, की हालत सुधरती है। पुराने रोगों में कमर-नहान और उपस्थ-स्नान के पहले यह नहान सुबह में लिया जा सकता है।

गरम और ठंडा बैठक-नहान--

इस नहान में दो टबों में से एक में ४-५ इंच गहरा गरम पानी और दूसरे में उतना ही ठंडा पानी रखकर पहले गरम पानी वाले टब में २-३ या ४ मिनट और तब १ मिनट के लिए ठंडे पानी वाले टब में बैठना चाहिए। इसी तरह दो-तीन बार बारी-बारी से गरम और ठंडे पानी में बैठना चाहिए। बैठने का ढंग वही रहे जैसा कि ठंडे बैठक-नहान के लिए बतलाया गया है, लेकिन इसमें शरीर को बहुत हल्के हल्के या नहीं रगड़ना चाहिए।

यह नहान स्त्री-रोगों में, जिसमें कठिनाई के साथ मासिक होता है, गुर्दे और पेशाब की थैली में तकलीफ़ की हालत में या बुरे पेट-दर्द में, विशेषकर लाभदायक होता है। इसे भरसक रात में सोने से पहले लेना चाहिए, लेकिन कम से कम एक घंटे का अंतर खाना और नहान में जरूर हो।

मेरी राय में पैर को बाहर निकाल कर ही, जिस तरह कमर-नहान में बैठा जाता है, बैठना चाहिए। इस तरह के नहान को गरम और ठंडा कमर-नहान कहेंगे।

गरम और ठंडा कमर-नहान वैसी हालतों में बहुत लाभदायक होता है, जब कि पेट या आंतों में किसी तरह की अंदरूनी जलन या सूजन रहती है। ऐसे नहान की कुछ ही दिनों ज़रूरत होती है। मंदाग्नि में ४-५ दिन इस तरह के नहान के बाद मामूली (ठंडा) कमर-नहान से विशेष लाभ होता है बीच-बीच में २-३ दिन गरम और ठंडा नहान ले लेना चाहिए।

टांगों या पैर का गर्म-नहान—

पुराने या नए रोगों में जब कि हल्का हल्का दर्द बना रहता हो या बहुत कमजोरी मालूम होती हो और पैर ठंडे रहते हों तो रात में सोने से पहले और सुबह में बहुत सबेरे पैरों के गर्म-नहान से बहुत लाभ होता है। इसके लिए दो बाल्टी या ऐसे बर्तन चाहिए, जिनमें टखनों के कुछ ऊपर तक पैर आ सकें। इन बर्तनों में पहले से ऐसा गरम पानी रखना चाहिए, जिसे रोगी बर्दाश्त कर सके। फिर उसमें ज़्यादा गरम पानी मिला देना चाहिए। पानी इतना गरम कभी न हो कि पैर जल जायँ। यह नहान ५-१० मिनट से लेकर १५-२० मिनट तक लिया जा सकता है। नहान के समय चेहरा छोड़ कर रोगी के सारे शरीर को अच्छी तरह ढके रखना चाहिए। नहान के बाद ठंडे पानी में भिगोए हुए कपड़े से पैरों को पोंछ देना चाहिए। उंगलियों के बीच में पानी न रह जाय। अगर बदन में पसीना आ गया हो तो उसे भी पोंछना चाहिए। जिस कपड़े से शरीर ढका जाय वह इस तरह शरीर पर रखा जाय कि गर्दन से नीचे का सारा अंग और पानी का बर्तन भी अच्छी तरह ढक जाय। पानी बिस्तर पर न गिरे, इसका ख़याल रखना चाहिए।

इस नहान से सिर की गरमी खिंच कर खून का दौरान (रक्त-संचार) शरीर के सब हिस्सों में बराबर हो जाता है। पुराने बुख़ार, मैलेरिया, नींद न आने की हालत, सिर में बेचैनी और नए या पुराने सूखे जुकाम में इस नहान से फ़ायदा होगा।

जाड़ा-बुखार (मलेरिया) में इसका प्रयोग जरूर करना चाहिए। जिस समय जाड़ा शुरू हो उसके कुछ पहले और इसके अलावा सुबह या शाम को या कमर-नहान या उपस्थ-स्नान लेने के समय भी टांगों के गरम-नहान से बीमारी जल्दी दूर होगी।

कमर-नहान के समय कमज़ोर रोगियों के लिए यह बहुत अच्छा हो अगर साथ ही साथ पैरों का गरम नहान भी हो। जाड़ों में ऐसा करना जरूरी है। गर्मी में पैर को ढक सकते हैं या गरम मोज़े पहन सकते हैं।

पैर के गरम-नहान के समय कमज़ोर रोगियों के सिर में कभी चक्कर आने लगता है। ऐसी हालत में एक मोटे गीले कपड़े का टुकड़ा तैयार रखना चाहिए। चक्कर के लक्षण शुरू होते ही या वैसे भी अगर १० मिनट से ज़्यादा पैर गरम पानी में रखे जायँ तो गीले कपड़े को सिर के चारों तरफ़ लपेट देना चाहिए। कपड़ा काफ़ी गीला और मोटा हो, जो ठंडक पहुँचा सके, लेकिन इतना गीला न हो कि पानी टपकने लगे।

चेतावनी--

ऊपर जितने भी नहान बताए गए हैं वे सभी बहुत फ़ायदे के हैं, पर पुराने रोगों के इलाज में, ख़ासकर जिन जिन रोगियों ने ज़हरीली दवाओं को खाकर रोग के लक्षण दबाए हैं उनके इलाज में, नहानों की ज़्यादती शुरू में न करनी चाहिए। ज़्यादती और जल्दबाज़ी से पुराने छिपे लक्षण बुरी तरह उभड़ते हैं। ऐसी हालतों में पहले कुछ दिनों तक सिर्फ़ एक बार ५-७ मिनट के लिए नहान, दूसरे समय एनीमा-प्रयोग और भोजन-सुधार से शरीर को शुद्ध करना चाहिए। धीरे-धीरे नहान का समय बढ़ाना चाहिए और एक-डेढ़ महीने के बाद दोनों समय नहान लेना शुरू करना चाहिए।

बहुत ही ज़्यादा कमज़ोर रोगी को शुरू-शुरू में कोई नहान न दीजिए। सिर्फ़ पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी से और जब-तब हल्के एनीमा से काम लीजिए।

नहान कितनी देर के लिए हो, पानी कितना ठंडा या गरम हो, इन सब बातों पर ध्यान रखने और होशियारी से काम करने से कोई चिन्ताजनक बात नहीं होती। डरिए नहीं, लेकिन समझदारी और होशियारी से काम कीजिए।

भोजन-सुधार और इन नहानों के सहारे, लगातार लगे रहने से, कोई भी रोग दूर किया जा सकता है।

धूप और भाप से काम लेना

धूप बड़े काम की चीज़ है। वह मुफ़्त की दवा है, लेकिन खेद है कि हम उससे लाभ नहीं उठाते। चमड़े की बीमारियों में, गठिया वगैरह के दर्दों की हालत में और उन हालतों में, जिनमें शरीर में जगह-ब-जगह गोल गोल गांठे और गुमड़ियां हो जाती हैं, धूप-नहान से बहुत फ़ायदा होता है।

तनदुरुस्ती की हालत में भी अगर हर रोज़ थोड़ी देर के लिए हमारे शरीर में धूप और हवा लगे तो बहुत अच्छा हो।

धूप से जीवन-शक्ति मिलती है और रोगों के कीड़े भी मरते हैं। धूप से विटामीन 'डी', जिसके बिना बच्चों को सूखा रोग होता है, मिलता है

धूप-नहान—

धूप-नहान के लिए ज़मीन पर या तख्त या खाट पर चटाई या दरी या कम्बल डाल कर उस पर ऐसी जगह लेटिए, जहां धूप तो काफ़ी हो पर हवा तेज़ न हो और जहां आप नंगे लेट सकें। सिर को कपड़े या छतरी से अच्छी तरह ढक लीजिए और जितनी देर इच्छा हो और अच्छा मालूम हो धूप में लेटे रहिए। पसीना निकल जाय तो बहुत अच्छा है, लेकिन शुरू शुरू में ही पसीना निकालने के लिए तकलीफ़ सह कर बहुत देर तक धूप में न रहिए। तीन-चार बार के धूप-नहान से पसीना ज़रूर निकलने लगेगा। बात यह है कि धूप से रोग के लिए दवा मिलने के अलावा शरीर के अन्दर का विकार भी उखड़ता है। इसलिए शुरू-शुरू में उतावला न होना चाहिए। विकार को उखाड़ना और उसको बाहर निकाल देना ज़रूरी है, पर शुरू में ही जल्दबाज़ी न करनी चाहिए। गर्मियों में पहले तीन-चार बार तक ७ से १० मिनट के लिए और जाड़ों में २ मिनट के लिए धूप-नहान काफ़ी होगा। फिर तो घंटे आध घंटे तक धूप-नहान का आनन्द ले सकते हैं। कमज़ोरी की हालत में गर्मियों में इसे ३ मिनट और जाड़ों में ७ मिनट से शुरू करना चाहिए।

ऐसा धूप-नहान, जिसमें शरीर से खूब पसीना निकलता है, हफ़्ते में एक बार या ज़्यादा से ज़्यादा दो बार लेना चाहिए। लेकिन थोड़ी देर का धू

नहान, जिसमें शरीर को ढँकने की जरूरत नहीं है, हर रोज (खासकर जाड़ों में) लाभ के साथ लिया जा सकता है।

पिछले साल लेखक एक बच्चे का इलाज कर रहा था। उसको जाड़ा-बुखार सता रहा था। दो हफ्ते के रसाहार, एनीमा-प्रयोग, पैरों के गरम-नहान और कमर-नहान से बुखार का वेग बहुत कम हो गया पर हर रोज ९९ डिग्री का ताप हो ही जाता था। इसको दूर करने के लिए बच्चे को हर रोज ५-७ मिनट का धूप-नहान, उसके बाद पूरा नहान और तब कमर-नहान दिया जाने लगा। एक और कमर-नहान ४ घंटे के बाद दिया जाता था। ऐसा मालूम होता था कि बच्चे के शरीर में लोहा और चूने की कमी है। इस कमी को दूर करने के लिए दिन में पालक की हरी पत्ती का एक छटांक रस शहद के साथ दिया जाता था। बच्चा १० दिन में भला-चंगा हो गया।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सकों की, खास कर लूई कूने की, राय है कि धूप-नहान लेते समय सिर को अच्छी तरह ढँकने के अलावा सारे शरीर को केले के पत्ते या किसी और पत्ते या एक बहुत पतले गीले कपड़े से ढक लेना चाहिए। इससे पसीना अच्छी तरह निकलता है। हरी पत्ती की हरियाली भी दवा का काम करती है। लेखक की राय में ऐसा करना अच्छा है, खास कर जब किसी जीर्ण रोग की चिकित्सा चल रही हो।

जाड़ों में धूप-नहान के लिए १२ और २ बजे के बीच दोपहर का समय सब से अच्छा है। गर्मियों में ८ से १० बजे तक सुबह और फिर ३ से ५ बजे तक शाम के समय अच्छे हैं। खयाल रहे कि लू चलते समय धूप में लेटना या बैठना ठीक नहीं।

ऊपर कहा गया है कि धूप-नहान से शरीर के विकार उखड़ते हैं, साथ ही शरीर में ज्यादा गर्मी भी आती है। इस गर्मी को शान्त करने और विकारों को पेड़ू में लाकर पेशाब-पाखाने के रूप में बाहर निकाल देने के लिए धूप-नहान के बाद बन्द कमरे में ठंडे पानी से सिर से जल्दी नहा कर बदन पोंछ लेना चाहिए और बदन पोंछने के बाद शक्ति के अनुसार ७ से २० मिनट का कमर-नहान लेना चाहिए। अगर रोगी बहुत कमजोर है तो, और बहुत थोड़ी देर धूप में रहा है तो, उसे नहवाने के बदले गीले कपड़े से सिर और सारा बदन अच्छी तरह पोंछ कर कमर-नहान लेना चाहिए। अगर धूप-नहान ज्यादा देर के लिए हुआ है तो कमर-नहान २० मिनट तक के लिए ले सकते हैं। अगर कमर-नहान के लिए टब नहीं है तो गीले

कपड़े की ठंडी पट्टी पेट पर २०-२५ मिनट तक दिन में २-३ बार रखना चाहिए। पेड़ू-नहान के बाद कपड़े पहनकर कुछ टहलना या हल्की कसरत कर लेना या कुछ देर के लिए सिर को ढँक कर फिर धूप में बैठ जाना अच्छा है। ऐसा करने से शरीर में मामूली गर्मी आ जाती है। अगर धूप-नहान के बाद ही कमर-नहान न बन पड़े तो उसी दिन किसी दूसरे समय यह नहान लेना चाहिए। लेकिन कम से कम सिर से नहा लेना या बदन पोंछना जरूरी है।

अगर ज़रूरत हो तो सारे शरीर को धूप में रखने के बदले किसी ख़ास अंग को धूप में रख सकते हैं। धूप से उठने के बाद उस अंग को गीले कपड़े से पोंछ देना या पानी से धो देना चाहिए। स्थानीय (मुक़ामी) धूप-नहान में कमर-नहान की ज़रूरत नहीं।

भाप-नहान—

जब धूप न हो या धूप हल्की हो या वैसे भी गठिया इत्यादि रोगों में जब कि तकलीफ़ ज़्यादा हो या फोड़ा-फुन्सी की हालत में और एक्ज़िमा और कोढ़ जैसे रोगों में, सारे शरीर को या किसी ख़ास अंग को भाप-नहान देते हैं। लेकिन भाप-नहान से ज़्यादा कमज़ोरी होती है। इसलिए सारे शरीर का भाप-नहान हर रोज़ न लेना चाहिए। किसी खास अंग का भाप-नहान हर रोज़, और दिन में दो तीन बार भी, ले सकते हैं। पूरा भाप-नहान हफ़्ते में एक बार (या अगर रोगी काफ़ी मज़बूत है तो ज़्यादा से ज़्यादा दो बार) लिया जा सकता है। अगर भाप-नहान सारे शरीर का है तो, धूप-नहान की तरह, नहान के बाद ठंढे पानी से नहाकर कमर-नहान लेना चाहिए। अगर किसी ख़ास अंग का भाप-नहान है तो सिर्फ़ उसी को धोकर पोंछ देना चाहिए।

जो रोगी हर रोज धूप-नहान लेता है उसे भाप-नहान की कोई ख़ास जरूरत नहीं, पर अगर जरूरत मालूम हो तो हर सात-आठ दिन के बाद एक बार भाप-नहान भी क़ायदे के साथ लिया जा सकता है। उस दिन धूप-नहान न लेना चाहिए।

पूरे भाप-नहान के लिए एक बेंत की बुनी बेंच या मामूली मूंज की खाट चाहिए। उस पर बिना बिस्तर बिछाये रोगी को नंगा लिटाकर ऊपर

से कम्बल डाल देना चाहिए। बेंच या खाट के नीचे के हिस्से को पहले ही मोटे कपड़े से चारों तरफ़ इस तरह घेर देना चाहिए कि भाप बाहर न निकले। साथ ही रोगी को बेंत या खाट पर सुलाने के पहले दो स्टोव या जलते कोयलों से भरी अंगीठी पर दो चौड़े खुले मुंह के बर्त्तन गर्म पानी से भरकर बेंच या खाट के नीचे रखना चाहिए। जब पानी खौलने लगे तो रोगी को बेंच या खाट पर सुलाना चाहिए। पानी का एक बर्त्तन रोगी की पीठ के नीचे (कमर से कुछ ऊपर) और दूसरा घुटनों के नीचे पड़े। लड़कों के लिए कमर के नीचे का एक ही बर्त्तन काफ़ी होगा। रोगी का चेहरा न ढंकना चाहिए। अगर स्टोव या अंगीठी न हो तो अलग चूल्हों पर तीन बर्त्तनों में पानी खौलाना चाहिए। दो बर्त्तन तो रोगी के नीचे रहें और एक चूल्हे पर बदलने के लिए तैयार रहे। इस तरह बर्त्तन को बदल बदल कर काफ़ी भाप
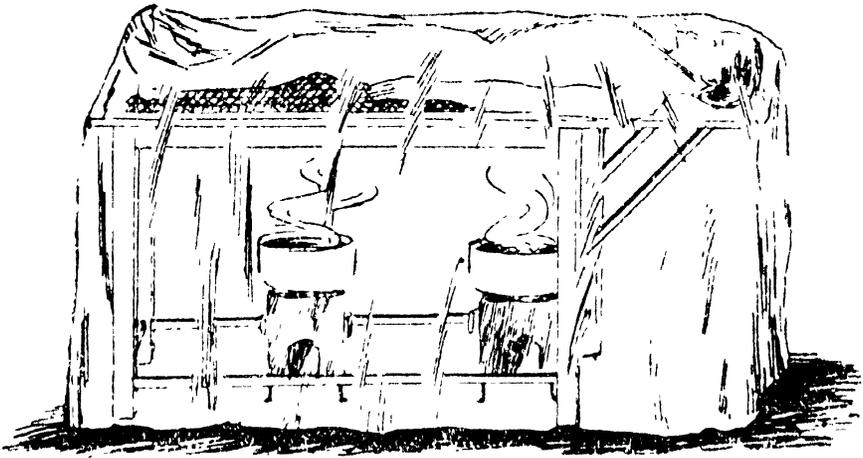
भाप-नहान

पहुँचाई जा सकती है। १०-१५ मिनट भाप लेने के बाद पेट के बल लेट जाना चाहिए, तब पसीना और अच्छी तरह निकलने लगेगा।

इस नहान को ऐसे बन्द कमरे में लेना चाहिए, जहां हवा बहुत कम हो। पसीना आ जाने के बाद, ऊपर बताये ढंग से मामूली नहान और कमर-नहान लेना चाहिए। किसी किसी को भाप-नहान से भी सिर में गर्मी आ जाती है। ऐसी हालत में रोगी को खाट से उतारकर उसके सिर और चेहरे पर पानी झोंकना चाहिए और सारे शरीर को नहलाकर टब में बिठा देना चाहिए। लेकिन यह हालत उन्हीं की होती है, जो या

तो बहुत कमज़ोर हैं या जिन्होंने बहुत देर के लिए भाप-नहान लिया है। पहले से ही सिर को गीले मोटे कपड़े से लपेट लेना अच्छा होता है।

भाप-नहान कुर्सी पर बैठकर भी लिया जा सकता है। खौलते पानी का बर्त्तन शरीर से इतना अलग रहे कि भाप से शरीर न जले। रोगी को कुर्सी पर बैठाकर गर्दन से नीचे सारे शरीर और साथ ही कुर्सी को कम्बल से इस तरह लपेटना चाहिए कि भाप अन्दर से बाहर न निकले। कुर्सी पर उकडू बैठना अच्छा होत है। तस्वीर में जो बैठने की बेंच दिखाई गई है उस पर बैठकर अगर गर्दन के पास से दो कम्बल इस तरह डाल लिय जांय कि सारा बदन ढँक जाय और बेंच के नीचे का हिस्सा भी चारों तरफ़ से घिर जाय तो भी बैठे ही बैठे पूरा भाप-नहान अच्छी तरह हो सकता है।

भाप-नहान

किसी ख़ास अंग में भाप पहुँचाने के लिए उस अंग को अंगीठी पर रखे बर्त्तन या पहले से खौलते पानी के बर्त्तन के ऊपर रखना चाहिए और ऊपर से कोई मोटा कपड़ा डाल देना चाहिए। चाहे जिस तरह भी हो उस अंग-विशेष में भाप लगनी चाहिए और वहां से पसीना निकलना चाहिए।

पूरा धूप-नहान या भाप-नहान उन रोगियों को न देना चाहिए, जिनके कोई दिमागी रोग है या रक्त-चाप (blood pressure) बढ़ा है या दिल की कमज़ोरी है। फ़ालिज और लक़वे के रोगी को भी शुरू शुरू में यह नहान नहीं देते। बुख़ार की हालत में भी इन नहानों की ज़रूरत नहीं, क्योंकि वहां तो प्रकृति (क़ुदरत) ने ख़ुद ही आग जलाई है। लेकिन चेचक (बड़ी या छोटी) में, जब कि बुखार कम हो गया हो पर दाने अच्छी तरह नहीं निकले हों, तो भाप-नहान जरूर देना चाहिए। जाड़ा-बुख़ार में भी भाप-नहान ज़रूरी होता है लेकिन यह नहान तभी दिया जाय जब कि टेम्परेचर ९९ से ज़्यादा न हो। भाप-नहान के बाद पूरा नहान और फिर टब में बैठना भी ज़रूरी है। किसी तरह की भी बहुत कमज़ोरी की हालत में, सिर के रोगों में या फ़ेफ़ड़े, दिल या नाड़ी के रोगों में धूप और भाप-नहान ख़राबी करते हैं।

मिट्टी को काम में लाना

मिट्टी के प्रयोग से लाभ--

मिट्टी इतनी मामूली चीज़ है कि हम उसके फ़ायदों पर ध्यान नहीं देते, लेकिन सच्ची बात यह है कि मिट्टी पर ही हमारी जिन्दगी का बहुत बड़ा हिस्सा बीतता है और मरने के बाद हमारा शरीर मिट्टी में ही मिल जाता है। मिट्टी से ही अनाज पैदा होते हैं, मिट्टी से या मिट्टी की बनी ईंटों से मकान बनते हैं, मिट्टी से जड़ी-बूटी की औषधियां उगती हैं, मिट्टी से हम बर्तन मांजते हैं, और अपने हाथ इत्यादि धोते हैं। इन दिनों साबुन का इस्तेमाल इस तरह बढ़ गया है कि मिट्टी से हम कम काम लेने लगे हैं, पर सच पूछिए तो कुछ रेत मिली अच्छी मिट्टी से जितना बदन साफ़ और शुद्ध होता है उतना साबुन से नहीं हो सकता। साबुन गन्दी चीज़ है। न मालूम उसके अन्दर कौन कौन चीज़ें रहती हैं। हमें यह भी नहीं मालूम कि उन चीज़ों का खाल के ऊपर कैसा असर होता है, फिर भी उसका व्यवहार हम आंखें बन्द करके करते हैं और बिना मोल मिलने वाली मिट्टी के फ़ायदों की ओर हम कुछ भी ध्यान नहीं देते। गंगा की थोड़ी सी रेत मिली मिट्टी या किसी भी अच्छी जगह की साफ़ मिट्टी को गीला कर बदन में कुछ रोज लगाने और फिर उसके बाद नहाने से चमड़े की पुरानी बीमारियां दूर हो जाती हैं। यह ज़रूरी है कि इसी के साथ साथ खाने-पीने का भी परहेज हो। खाना ठीक करने से अन्दर से ख़ून साफ़ होता है और मिट्टी लगाने से ऊपर आई हुई ख़राबी दूर हो जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए मिट्टी की पट्टी बड़े काम की चीज़ है। मिट्टी (१) अन्दर के पुराने विकार को उखाड़ती है, (२) अन्दर के विकार को बाहर खींच लेती है, (३) सूजन और दर्द में फ़ायदा पहुँचाती है, (४) जलन, लहर और तनाव की हालत को दूर करती है और (५) शरीर के अन्दर ज़रूरी ठंडक पहुँचाती है। इसी से प्राकृतिक चिकित्सक प्रायः सभी हालतों में मिट्टी का इस्तेमाल करते हैं।

मिट्टी की पट्टी के लिए अच्छी साफ़ मिट्टी होनी चाहिए। पिंडोल मिट्टी या बहुत थोड़ी रेत मिली नदी के कछार की मिट्टी या जिस जगह
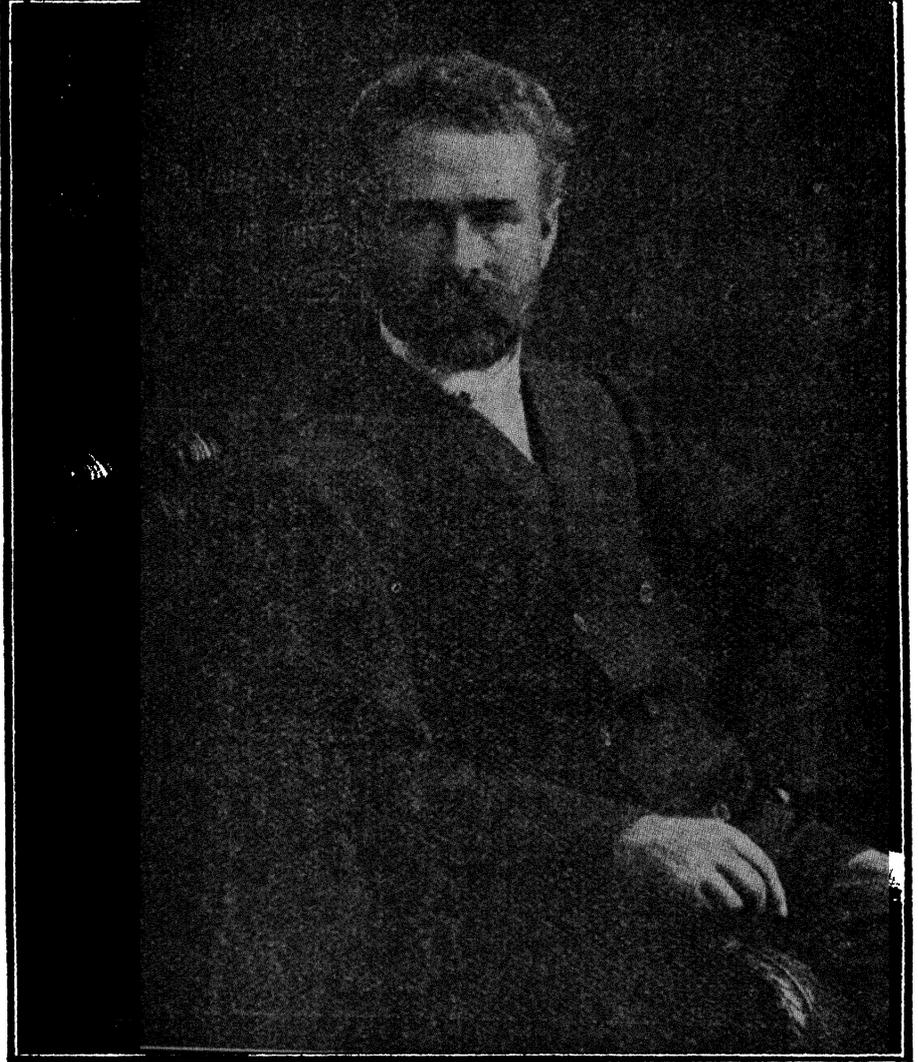
एडोल्फ़ यूस्ट

जर्मनी निवासी। इन्होंने सिद्ध किया कि मिट्टी के लेप और पृथ्वी पर सोने और नंगे पांव टहलने से बहुत से रोग चले जाते हैं

जैसी भी मिट्टी मिल सके (लेकिन जो साफ़ हो, कुछ गहराई से ली गई हो और जिसमें कंकड़-पत्थर या घास लकड़ी के टुकड़े या किसी तरह की गन्दगी न हो) काम में लाई जा सकती है। मिट्टी को अच्छी तरह चूरकर और उसमें ठंडा पानी मिलाकर उसे आटे की तरह गूंध लेना चाहिए। हाथ लगाना ठीक नहीं। किसी लकड़ी के टुकड़े से काम लीजिए। फिर उसी लकड़ी से मिट्टी उठाकर एक मोटे कपड़े के टुकड़े पर रखिए और इधर-उधर से कपड़े पर से ही मिट्टी को पाथ-पाथ कर पेड़ू पर रखने लायक़ बना लीजिए। मिट्टी कड़ी न रहे और बहुत गीली भी न हो। जिस जगह पर दर्द, जलन, सूजन या और कोई तकलीफ़ हो वहां पर इस गीली मिट्टी को इस तरह फैलाना चाहिए कि मिट्टी की तह आधी इंच से एक इंच तक मोटी हो और उससे वह जगह अच्छी तरह ढँक जाय। फिर उस पर एक सूती कपड़ा रखकर उसके चारों तरफ़ किसी गरम कपड़े को लपेट देना चाहिए। गर्मी में गरम कपड़े की जरूरत नहीं। ४०-४५ मिनट के बाद या जभी मिट्टी गरम हो जाय तो पट्टी को अच्छी तरह हटाकर उस जगह को गीले कपड़े से खूब पोंछ देना चाहिए।

कब्ज़, पेट का दर्द, खांसी, बुख़ार और प्रायः सभी बीमारी की हालतों में पूरे पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी देने से बहुत फ़ायदा होता है। जब पेड़ू पर मिट्टी रखी जाय तो मिट्टी पर एक सूती कपड़ा रखकर ऊपर से गरम कपड़ा रख देना चाहिए या शरीर पर कम्बल या रज़ाई डाल देना चाहिए। मामूली हालत में हर रोज़ सुबह-शाम एक एक पट्टी से काम चल जाता है, लेकिन तेज बुखार जैसी हालतों में दिन में कई बार पट्टी बदली जा सकती है। पुरानी बीमारीयों में कई दिनों तक सुबह-शाम, यानी दिन में दो बार, यह पट्टी दी जाती है। खाने के तुरन्त बाद इस पट्टी का इस्तेमाल ठीक नहीं, कम से कम डेढ़-दो घंटे का अन्तर देना चाहिए।

सख्त् कब्ज की हालत में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखने के बाद एनीमा लेने से पेट अच्छी तरह साफ़ होता है, क्योंकि मिट्टी पुराने मल के खिसकाने में सहायक होती है। पुरानी बीमारियों में इस पट्टी के बाद कमर-नहान भी लेना अच्छा है, लेकिन अगर एनीमा और कमर-नहान दोनों लेना हो तो एनीमा के आध घंटे बाद कमर-नहान लेना चाहिए।

अक्सर पुरानी बीमारियों में तकलीफ़ की गजह पर मिट्टी की पट्टी बांधने से सूजन आ जाती है और दर्द बढ़ जाता है। इससे घबराना न चाहिए क्योंकि

इसका मतलब है कि मिट्टी ने विकार को ढीला कर दिया है, जो शरीर के लिए अच्छा ही है। ऐसी हालतों में तुरन्त ही या कुछ देर बाद तकलीफ़ की जगह भाप देना चाहिए। अच्छी तरह भाप देने से पसीने के रूप में विकार निकल जाता है। गठिया से जब जोड़ों में सख्ती आ जाती है या किसी भी अंग में दर्द रहता है तो पहले मिट्टी की पट्टी और फिर भाप देने से बहुत फ़ायदा होता है।

मिट्टी की पट्टी से सभी तरह के फोड़े या तो बैठ जाते हैं या पककर खुद-ब-खुद फूट जाते हैं। किसी भी फोड़े पर मिट्टी की पट्टी दिन-रात में दो-तीन या अधिक बार बांधी जा सकती है। सख्त और तकलीफ़ देने वाले फोड़ों में भाप और मिट्टी की पट्टी दोनों का इस्तेमाल करना चाहिए। जिस जगह की खाल बहुत मोटी है वहां कभी-कभी चीरा लगाने की जरूरत हो सकती है पर चीरा के पहले और बाद भी मिट्टी के प्रयोग से लाभ होगा।

किसी तरह के जख्म पर मिट्टी की पट्टी बांधने से लाभ होता है। खुले ज़ख्म पर मिट्टी देने से न डरिये। आज़मा कर देख लीजिए। लेखक ने बड़े बड़े ज़ख्मों को सिर्फ़ मिट्टी की पट्टी और नींबू के रस (जो जख्म पर लगाया जाता था) से ही अच्छा किया है।

मिट्टी के इस्तेमाल से ऐसा फ़ायदा होता है कि उसे देखकर ताज्जुब होता है। बर्रों की डंक और पैर में चुभे कांटे तक मिट्टी की पट्टी से बाहर निकल आते हैं। एक बार एक आदमी को सांप ने डस लिया। सभी तरह के इलाज आज़माये गये, लेकिन कुछ भी फ़ायदा न हुआ। यह निश्चय सा हो गया कि वह आदमी मर गया। एक प्राकृतिक चिकित्सक ने उसे देखा। उसने ज़मीन में एक लम्बा गड्ढा खुदवाया और उसमें गीली मिट्टी की एक सतह बिछाकर उस पर आदमी को लिटा दिया। साथ ही अगल-बगल में और ऊपर गीली मिट्टी इस तरह रख दी को उस आदमी का सिर और चेहरा तो बाहर निकला रहा पर सारा शरीर गीली मिट्टी के सम्पर्क में आ गया और अन्दर ही गड़ा रहा। इस हालत में लगभग चौबीस घंटे रहने के बाद उस आदमी ने अपनी आंखें खोल दीं। एक बार लेखक के सहकारी, श्रीयुत बालेश्वरप्रसाद सिंह (डाइरेक्टर, नेचर क्योर हेल्थ होम, इलाहाबाद) ने भी एक गठिया के रोगी को इस तरह ज़मीन में गाड़कर अच्छा किया था। उस रोगी के सारे शरीर में दर्द रहा करता था। कोई ख़ास

जगह न थी, जहां मिट्टी की पट्टी बांधी जा सके। इसीलिए उसे जमीन में गाड़ना उचित समझा गया!

जब कभी कोई ऐसी बीमारी मिले, जिसकी सच्ची हालत न मालूम होती हो या कमज़ोरी या किसी और वजह से कोई नहान इत्यादि न दिया जा सके, तो पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी देने लग जाना चाहिए और शक्ति के अनुसार पट्टी के बाद एनीमा या कमर-नहान भी देना चाहिए।

गर्भिणी स्त्री के जब बच्चा होते समय अधिक तकलीफ़ हो और बच्चा बाहर न निकले तब पेड़ू पर थोड़ी थोड़ी देर के बाद मिट्टी की पट्टी बांधने से बहुत आराम मिलता है और बच्चा आसानी से निकल आता है। मिट्टी की पट्टी असमय के गर्भपात को या तो रोक देती है या अगर रोकती नहीं तो औरत की हालत को ख़तरनाक होने से बचाती है।

कोई कोई चिकित्सक मिट्टी को पहले गरम करके इस्तेमाल करते हैं। इससे दर्द की हालतों में जरूर लाभ होता है, लेकिन सच्चा लाभ ठंडी पट्टी से ही होता है। गर्भ गिरने की आशंका के समय गरम पट्टी न देनी चाहिए।

पानी से आँत की सफ़ाई

भोजन-प्रणाली और आँत--

हमारा शरीर कई हिस्सों में बँटा है। इसका एक असल हिस्सा भोजन-प्रणाली (alimentary canal) है। यह प्रणाली एक खोखली नाली की तरह है, जिसका फैलाव मुंह से लेकर पाख़ाने के रास्ते तक है। इसकी लम्बाई लगभग २७ फुट है। यह प्रणाली तीन हिस्सों में बँटी है। पहला हिस्सा मुंह से लेकर पेट की थैली तक, दूसरा हिस्सा छोटी आंत (पेट के बाद से बड़ी आंत के शुरू तक) और तीसरा हिस्सा बड़ी आंत है। बड़ी आंत दाहिनी तरफ़ कमर की हड्डी के पास से शुरू होती है और ऊपर की ओर जाकर फिर यकृत (जिगर) से प्लीहा (तिल्ली) की ओर जाती है। वहां से नीचे की ओर जाकर वह कमर की बाईं हड्डी के पास से पाख़ाने के रास्ते तक पहुँचती है। इसकी लम्बाई लगभग साढ़े पांच फुट है। अगले पृष्ठ में दिये चित्र को देखिए।

भोजन का पचना और पाख़ाना होना--

भोजन पहले-पहल मुंह से पेट में आता है। पेट में पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है। पेट से भोजन छोटी आंतों में आता है। भोजन का पूरा पाचन छोटी आंत में ही होता है। छोटी आंत ही पचे खाद्य पदार्थ से रस खींच लेती है और यह रस ख़ून के दौरान में भेज दिया जाता है। भोजन का बचा-बचाया अंश जो प्रायः सब रस के निकल जाने के बाद शरीर के किसी काम का नहीं है बड़ी आंत में आ जाता है। अगर कुछ रस बच रहा है तो बड़ी आंत उसे सोख लेती है और तब उस बचे हुए अंश को बाहर निकाल देती है। यही अंश पाख़ाना है। यह शरीर के किसी काम का नहीं है और इसका बाहर निकल जाना ही शरीर के लिए हितकर है।

क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता और रोग--

यह स्वाभाविक नियम है कि जो कुछ भी खाया जाता है अपने समय पर पचकर और शरीर को आवश्यक रस देकर मलरूप में शरीर से बाहर हो

भोजन-प्रणाली
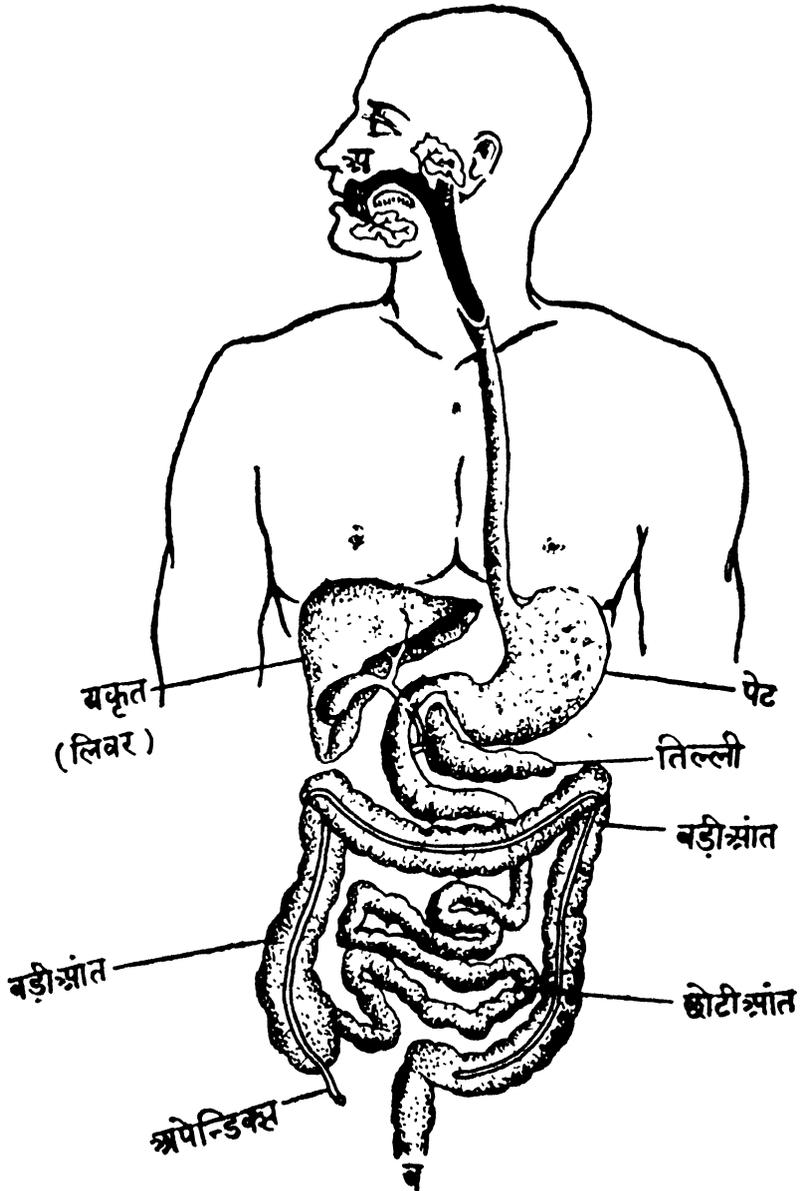
(अ) से (ब) तक भोजन-प्रणाली है। पेट, बड़ी आंत और छोटी आंत इसी एक नाली के हिस्से हैं। इस सारी नाली को साफ़ रखना हमारा कर्त्तव्य है।

जाता है। अनेक कारणों से भोजन का बचा-बचाया यह बेकार भाग बड़ी आंत में नियमित समय से अधिक देर तक ठहरने लगता है। मल के बाहर निकलने में इसी देर को या उसके पूरा-पूरा न निकलने को क़ब्ज़ या कोष्ठ-बद्धता कहते हैं। अगर बड़ी आंत में यह बेकार पदार्थ ज़्यादा देर ठहरा

तो वहीं सड़ने लगता है और उसके सड़ने के कारण अनेक विषमय कीटाणु (कीड़े) उसमें पैदा होते हैं। इतना ही नहीं, बड़ी आंत में बहुत सी छोटी छोटी गिल्टियां हैं, जो रस सोखती हैं। यह गिल्टियां आंत के अन्दर सड़ते हुए मल से ज़हरीले पदार्थ सोखकर ख़ून के दौरान में डाल देती हैं। इससे सारा शरीर ज़हर से भर जाता है। इससे कैसी कैसी ख़राबियां हो सकती हैं, पाठक ख़ुद ही समझ सकते हैं। अगर यह कहा जाय कि संसार में जितने भी रोग हैं वे प्रायः सभी इसी एक कारण--अपच और कोष्ठबद्धता--से पैदा होते हैं तो ग़लत न होगा। जब यह सच है कि ज़्यादातर बीमारियों का एकमात्र कारण आंत के अन्दर का विकार है तो इन रोगों का सच्चा इलाज आंत की सफ़ाई से ही शुरू हो सकता है। हमारी बड़ी आंत ठीक वैसी ही है जैसी कि शहर की बड़ी नाली। यदि नाली की सफ़ाई रोज़ अच्छी तरह हो जाती है तो शहर में बीमारी नहीं फैलती, पर इस नाली में गंदगी के बने रहने से शहर में अनेक प्रकार के रोग फैल जाते हैं। पाठक अब समझ गये होंगे कि बड़ी आंत को साफ़ रखने की कितनी आवश्यकता है।

सफ़ाई के ढंग--

आंत की सफ़ाई स्वाभाविक रूप से मल निकलने से ही होती है, लेकिन जब कब्ज़ रहे तो यह सफ़ाई दो प्रकार से हो सकती है--(१) दवाओं के इस्तेमाल से, और (२) पाख़ाने के रास्ते से पानी ऊपर चढ़ा कर।

दवाओं का इस्तेमाल यानी कड़ा या हल्के जुलाब का प्रयोग ठीक नहीं है। विदेशी दवाइयां तो ख़ास कर नुक़सान करने वाली हैं। अगर कोई दवा ली जा सकती है तो वह अपनी देशी सनाय (सना) की पत्तियां, लेकिन उसे भी बार-बार इस्तेमाल करना ठीक नहीं। दवा में ख़ुद कोई ताक़त नहीं जो पेट की सफ़ाई कर सके। वह तो शरीर के लिए विजातीय पदार्थ (बेकार चीज़) हो जाता है। शरीर इस विजातीय पदार्थ को अपनी सारी ताक़त से बाहर निकालने का यत्न करता है। इसी कोशिश में आंत से मल भी बाहर हो जाता है। यह दवाइयां अक्सर आंत में उत्तेजना और जलन भी पैदा करती हैं, जिनसे इनका असर होता है। पर बार बार की जलन या उत्तेजना से आंतें कमज़ोर पड़ जाती हैं और अपना मामूली काम नहीं कर सकतीं। जब वे अपना काम अच्छी तरह नहीं कर सकतीं तो पाठक समझ लें कि इसका फल क्या होगा। जिस

कारण को दूर करने के लिए दवा दी गई, वह हटने के बदले बढ़ती ही गई। इसलिए दवाओं से पेट की सफ़ाई न करनी चाहिए।

अब आंत से मल निकालने का सिर्फ़ एक ही उपाय रह गया। वह है पाख़ाने के रास्ते से पानी चढ़ाना, अर्थात् शरीररूपी शहर की बड़ी आंत-रूपी नाली को धो देना। इसी को एनीमा या डूस लेना कहते हैं। असल में यह अन्दरूनी नहान (आभ्यन्तर स्नान) है।

एनीमा का गुण और यंत्र--

एनीमा के यंत्र से आंत में पानी चढ़ाकर आंत को धोना आंत की सफ़ाई का सब से अच्छा उपाय है। इसके दो-तीन फ़ायदे हैं। (अ) बिना किसी प्रकार की उत्तेजना और जलन के आंत की सफ़ाई हो जाती है। (ब) पानी के इस्तेमाल से आंत की नाड़ी-शक्ति बढ़ती है, जिससे उसकी काम करने की शक्ति भी बढ़ती है। यह प्राकृतिक चिकित्सकों को अच्छी तरह मालूम है कि पानी के प्रयोग से शक्ति बढ़ती है और वे इसीलिए अपनी चिकित्सा-प्रणाली में पानी के इस्तेमाल को ज़रूरी बताते हैं।

एनीमा के यंत्र सवा रुपये से लेकर दो हज़ार रुपये तक में मिलते हैं, पर आम तौर से डेढ़-दो रुपये वाला यंत्र, जो दीवार से कील के सहारे लटका
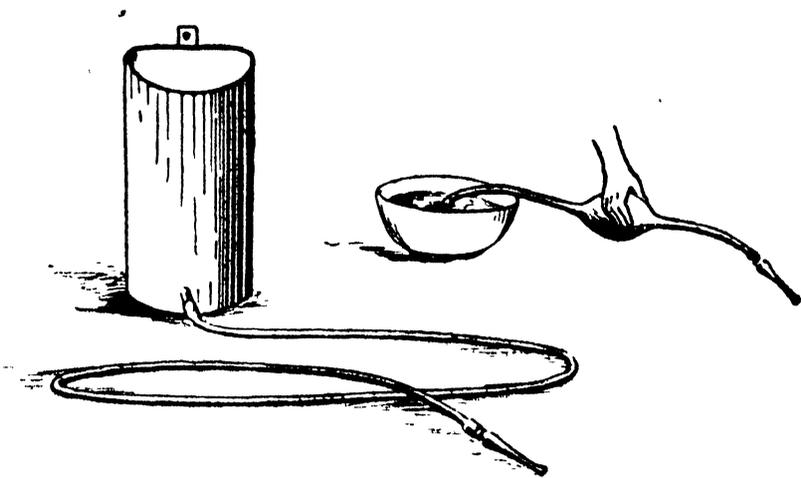
एनीमा के दो तरह के यंत्र

दिया जाता है जिसमें रबड़ की एक नली लगी रहती है और जिसके अगले हिस्से को पाख़ाने के रास्ते में रख कर पानी आंत में चढ़ायी जाता है,

काफ़ी अच्छा है। एक दूसरा यंत्र ऐसा भी होता है, जिसमें बर्त्तन नहीं होता। वह रबर की एक नली भर रहती है, जिसके बीच में एक पोली (खोखली) गेंद सी रहती है। इस नली के एक सिरे को पाख़ाने के रास्ते में रखते हैं और दूसरे सिरे को पानी के बर्त्तन में। गेंद को बार बार दबाने से पानी आंत में चढ़ता है। इस के दाम भी दो-ढाई रुपये हैं। पहला यंत्र ज़्यादा अच्छा है।

एक ही यंत्र सभी तरह के लोगों के काम का हो सकता है। उसी यंत्र से छः महीने के बच्चे से लेकर १०० साल के बुड्ढे तक को एनीमा दिया जा सकता है।

पानी का अन्दाज़—

पानी का परिमाण अलबत्ता अलग अलग होगा। ६ महीने के बच्चे के पेट में दो छटांक से पाव भर तक पानी चढ़ा सकते हैं। एक वर्ष से लेकर ६ वर्ष तक के बच्चे के पेट में पाव भर से लेकर आध सेर तक पानी चढ़ाते हैं। ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के बच्चे को आध सेर से लेकर १ सेर तक पानी देते हैं। उससे बड़े अर्थात् १२ से लेकर ज़्यादा उम्र वालों के पेट में १ सेर से लेकर २ सेर तक पानी चढ़ा सकते हैं। २५ से ज़्यादा उम्र वालों के पेट में ढाई-तीन सेर तक पानी चढ़ाया जा सकता है। पानी की मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए, क्योंकि इसी तरह पानी को अन्दर रोकना भी सीखना चाहिए।

एनीमा के पानी में क्या मिलाया जाय--

साधारणतः कुछ नहीं। कुछ डाक्टर एनीमा के पानी में रेंडी का तेल (कैस्टर ऑयल), साबुन की झाग, ग्लीसरीन इत्यादि पदार्थ मिलाते हैं। उनका यह कहना है कि इन चीज़ों के मिलाने से आंत बहुत अच्छी तरह साफ़ हो जाती है। लेकिन इस पर विचार कर देखिए। सिर्फ़ साबुन मिलाने की ही बात को लीजिए। यह रोज़ का तजुर्बा है कि बदन में लगा हुआ साबुन आप ही आप नहीं छूटता। उसे कई बार पानी से धोने की ज़रूरत पड़ती है। यह आसानी से समझा जा सकता है कि आंत में लगा हुआ साबुन एक ही बार में क्योंकर साफ़ हो जायगा। फिर मालूम नहीं कि साबुन कौन कौन पदार्थों से बनाया गया है। दूसरे पदार्थ आंत में उत्तेजना भी पैदा करते हैं। इस उत्तेजना से धीरे धीरे आंत कमज़ोर

हो जाती है। साबुन के अंदर का तेज़ाब आंतों के चिकनापन को नष्ट करता है। यह ख़राब है। पानी में नींबू का रस मिलाना लाभदायक होता है। इस से सफ़ाई होती है, सड़ते हुए मल के कारण पैदा हुए कीड़े मरते हैं और ख़ून में खारापन (यह आगे बताया जायगा) की मात्रा बढ़ती है। लेकिन अगर हर रोज़ एनीमा लेना हो, जैसा कि कभी कभी जरूरी होता है, तो २-३ दिन बीच देकर नींबू के रस का इस्तेमाल करना चाहिए। रस को साफ़ कपड़े के सहारे छान लेना चाहिए।

एनीमा का प्रयोग--

एनीमा के लिए जितना भी पानी तैयार करना है उसको ज़रा गरम कर लीजिए। बहुत हालत में शरीर के ताप के बराबर गर्मी होनी चाहिए, ज़्यादा नहीं। तनदुरुस्ती के दिनों में या गर्मियों में मामूली (ज़्यादा नहीं) ठंडा पानी ले सकते हैं। ज्वर में पानी मामूली गुनगुना हो। बहुत (लेकिन सहने लायक) गरम पानी का इस्तेमाल पेट के दर्द जैसी हालतों में किया जाता है। पानी को छान लेना चाहिए।

एनीमा के बर्त्तन को अच्छी तरह साफ़ कीजिए और रबर की नाली इत्यादि को भी अच्छी तरह गरम पानी से साफ़ कर लीजिए। तैयार पानी को एनीमा के बर्तन में डाल दीजिए। बहुत अच्छा हो अगर कभी कभी एक या दो नींबू का रस निचोड़ कर एनीमा के पानी में कपड़े के सहारे छान लिया जाय। इसका असर आगे चलकर बहुत अच्छा होता है।

एनीमा के बर्त्तन को, जिस जगह या तख़्त पर लेटकर एनीमा लेना है उससे तीन या ढाई फ़ुट ऊँचा, दीवार से (कील के सहारे) लटका दीजिए। अगर बेंच या तख़्त पर लेटना हो तो उसके उस सिरे को जिस तरफ़ पैर हों और ऊँचे पर एनीमा का बर्त्तन लटकता हो आधा फ़ुट ऊँचा कर दीजिए। बेंच या तख़्त के नीचे पैताने की ओर दो-दो ईंट लगा सकते हैं। अब जिसको एनीमा देना हो उसको बेंच या तख़्त पर चित लेटा दीजिए। कहने की जरूरत नहीं कि सिर कुछ नीचा होगा और पैर एनीमा की ओर ऊँचा। पैरों को मोड़ रखना चाहिए। अब रबर की नली के अग्रभाग को खोल दीजिए, जिससे कुछ पानी के निकल जाने से अंदर की हवा निकल जाय। फिर उसको बंद कर उसमें थोड़ा वेसलीन या घी मलकर पाख़ाने के रास्ते में लगभग डेढ़-दो इंच तक रख दीजिए और फिर अग्रभाग को खोलकर पानी को आंत में चढ़ने दीजिए। कभी कभी तो पानी बड़ी आसानी से आंत में

चढ़ जाता है, पर कभी कभी कुछ कठिनाई होती है। कभी ज़रा सा पानी चढ़ने के बाद ही पेट में दर्द शुरू होता है और ऐसा मालूम होता है कि अब पानी नहीं रोका जा सकता। इस हालत में थोड़ी देर के लिए पानी का चढ़ाना बन्द कीजिए। कुछ देर में पेट का दर्द शान्त हो जायगा। दर्द कम होने पर फिर पानी को आंत
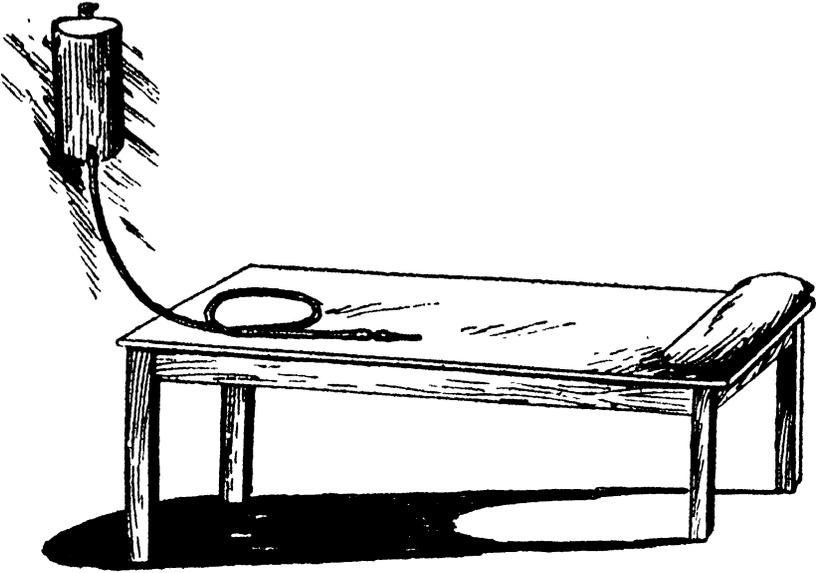
एनीमा की तैयारी

में चढ़ने दीजिए। पानी चढ़ते समय पेट को बाईं से दाहिनी ओर हल्के हल्के मलिए। पानी को आंत में कुछ देर तक (गरम पानी को ४-५ मिनट, मामूली गुन-गुने पानी को १० मिनट और ठंडे पानी को १५ मिनट) रोक रखना चाहिए। अब पेट की हल्की मालिश दाहिनी से बाईं ओर कीजिए। इसके बाद टट्टी जाना चाहिए। टट्टी जाने के लिए पास ही,कमज़ोर रोगियोंके लिए कमरे में प्रबंध होना चाहिए। पहले पानी रोकना कठिन होगा। पर अभ्यास से १२-२० मिनट तक पानी रोका जा सकता है। पानी रोक रखने से मल फूल कर बाहर निकल आता है और एनीमा की आदत भी नहीं पड़ती। पानी चढ़ाने के बाद तुरन्त ही पाख़ाने जाने से बिलकुल मल नहीं निकलता और एनीमा की आदत पड़ जाने का डर रहता है, पर आदत तभी पड़ सकती है जब कि ८-१० महीने लगातार बहुत गरम पानी का एनीमा लिया जाय और पानी रोका न जाय। बताये तरीक़े से एनीमा लेने से पेट की अच्छी सफ़ाई हो जायगी और आदत न पड़ेगी। अगर बेंच या तख़्त न हो तो ज़मीन पर दरी, कम्बल या चटाई बिछाकर मरीज़ को उसी पर चित

लिटा कर उसकी कमर के नीचे तकिया रख देते हैं, जिससे उसका सिर कुछ नीचा हो जाय।

एनीमा खुद ही लिया जा सकता है। अगर किसी कारण चित न लेटा जा सके तो दाहिनी करवट लेटकर भी एनीमा ले सकते हैं। पर चित लेटना और सिर को कुछ नीचा करना (अगर कोई सिर की बीमारी नहीं है तो) ज़्यादा अच्छा है।

एनीमा के प्रकार--

पानी की मात्रा और नाप के अनुसार एनीमा के लाभ होते हैं। गरम पानी मल को साफ़ करता है पर आंत को ढीला करता है। ठंडा पानी आंतों में ताक़त लाता है पर बहुत ठंडा पानी कभी कभी मरोड़ पैदा करता है। एनीमा के कुछ प्रकार यों हैं:--

(१) ताक़त बढ़ाने वाला एनीमा--मामूली (ज़्यादा नहीं) ठंडा पानी, सिर्फ़ पाव-डेढ़ पाव के अन्दाज़ से, पेट में चढ़ा दीजिए और उसे कम से कम २० मिनट रोकिए और तब पाख़ाना जाइए। अगर बहुत दिनों तक लगातार एनीमा का इस्तेमाल जारी रखना है तो इसी तरह का एनीमा हर रोज़ लेना चाहिए। इससे आंतों को बल मिलता है और अगर भोजन-क्रम ठीक रहा तो कुछ ही दिनों में क़ब्ज़ दूर हो जाता है, तनदुरुस्ती सुधर जाती है और एनीमा की जरूरत भी जाती रहती है। इस तरह एनीमा लेने के दिनों में हफ़्ते में एक दो बार गरम पानी ज़्यादा मात्रा में चढ़ाना चाहिए। उसे भी ५-७ मिनट रोकने की कोशिश करनी चाहिए। इस बीच-बीच के गरम एनीमा से सफ़ाई हो जाया करेगी और ठंडे एनीमा से ताक़त मिलती रहेगी।

(२) एक साथ ही गरम और ठंडा एनीमा--बहुत सूखे मल की हालत में पहले सहने लायक काफ़ी गरम पानी, आध सेर, और उसके बाद उतना ही ठंडा पानी लेना चाहिए। गरम पानी मल को उखाड़ता है और ठंडा पानी आंतों को बल देता है। अगर कोई सिर की बीमारी है तो पानी को गुनगुना ही रखना चाहिए। ऐसे एनीमा में भी पानी को जितना बने रोकना चाहिये।

(३) पानी को रोक रखने वाला एनीमा--लगभग आध पाव मामूली ठंडा पानी पूरा एनीमा लेने के बाद चढ़ा लेना और उसको वहीं रोक रखना। बवासीर के इलाज में इस तरह काफ़ी ठंडे पानी को रात में सोने से पहले चढ़ा

लेना बहुत लाभदायक होता है। इतना थोड़ा पानी एनीमा-यंत्र के बदले ग्लीसरीन सिरिंज (glycerine syringe) से अच्छी तरह चढ़ाया जा सकता है। यह यंत्र भी डाक्टरी दवा की दूकानों में आठ-दस आने में मिलता है ।

(४) शरीर में गर्मी लाने वाला एनीमा—अक्सर बहुत कमज़ोर रोगी के हाथ पैर ठंडे होने लगते हैं और हालत बिगड़ती सी जान पड़ती है। अगर इस हालत में लगभग तीन पाव सहने लायक काफ़ी गरम पानी का एनीमा दे दिया जाय तो शरीर में गर्मी फिर से छा जाती है और हालत सुधरने लगती है। इसके साथ हाथ पैर को धीरे धीरे मलने और सीने पर गरम सेंक इत्यादि की भी ज़रूरत हो सकती है। ये बातें आगे बताई जायंगी। ऐसे रोगी के लिए बेड-पैन (bed pan) रहना चाहिए, जिससे कि पाखाने के लिए रोगी को चारपाई से उठना न पड़े। बहुत कमज़ोर रोगी की हालत में बिस्तर पर मोमजामा या आयल क्लाथ डालकर उस पर ही पाखाना हो जाने देना चाहिए। पाखाने के बाद इस को हटाना और सावधानी के साथ रोगी के शरीर की सफ़ाई जरूरी है ।

एनीमा के इस्तेमाल के बारे में कुछ ज़रूरी बातें—

(१) एनीमा वैसे हर रोज़ न लेना चाहिए, पर उपवास में या केवल फलों का रस पीकर या फल खाकर रहने के दिनों में या जब साधारण भोजन खाते हुए मात्रा कम की जाय तो हर रोज़ और जब ज़ोरदार क़ब्ज़ रहे तब भी लेना चाहिए। लंबे उपवास में कुछ दिनों तक दोनों समय और फिर एक समय एनीमा लेना चाहिए ।

(२) जिसकी आंत में बहुत दिनों के विकार सूखकर चिमट गये हैं, उसे पहिले या बीच में तीन-चार दिनों तक एनीमा लेने से मल नहीं निकलता। ऐसी हालत में एनीमा लेना बन्द न करना चाहिए।

(३) नये रोगों में उपवास के साथ एनीमा का इस्तेमाल ज़रूरी है। एक ही दो दिन के उपवास और एनीमा के इस्तेमाल से ९० फ़ी सदी से ज्यादा रोग जाते रहेंगे। लंबा चलने वाले नये रोगों (जैसे टायफ़ायड या चेचक) में भरसक हर रोज एक एनीमा गुनगुने पानी का देना चाहिए।

(४) पुराने रोगों में भी तीन-चार सप्ताह के फलाहार, शाकाहार और बीच बीच के दो तीन दिन के उपवास के साथ साथ बराबर एनीमा के प्रयोग

से ७५ फ़ी सदी पुराने रोग आसानी से जाते रहेंगे। ऐसी हालत में पहले ५–७ दिन गरम, फिर १५ दिन ऐसा पानी जो न ठंडा हो और न गरम या मामूली गुनगुना और फिर १५ दिन मामूली ठंडे एनीमा का प्रयोग होना चाहिए।

(५) जिस रोग में बहुत पतले दस्त आते हों और साथ ही कमजोरी भी हो उसमें एनीमा न देना चाहिए, पर पतले दस्त के शुरू होते ही गरम एनीमा जरूर देना चाहिए। उससे दस्तों का आना बंद हो जाता है।

(६) एनीमा लेने के बाद कुछ देर लेटकर आराम करना चाहिए।

(७) एनीमा लेने के बाद १५ मिनट तक कुछ खाना न चाहिए।

(८) एनीमा और कमर-नहान में मामूली तौर पर कम से कम आध घंटे का अन्तर होना चाहिए। एक घंटे का हो तो और अच्छा है।

(९) जब लगातार बहुत दिनों तक एनीमा लेना हो तो पहले थोड़ी मात्रा में (सेर भर) गरम पानी, फिर कुछ दिनों तक कुछ ज्यादा मात्रा में गुनगुना पानी चढ़ाना चाहिए, फिर कुछ दिनों तक आध सेर मामूली ठंडा पानी। गरम पानी को ३ से ५ मिनट तक रोकना चाहिए, गुनगुने या ऐसे पानी को जो न ठंडा हो न गरम १० मिनट और ठंडे पानी को १५–२० मिनट। पानी को कुछ देर रोकने ही से लाभ होता है।

(१०) कुछ दिन एनीमा लेकर फिर उसे छोड़ देने से एक दो दिन पाख़ाना नहीं आता। इससे घबराना न चाहिए। एक दिन के बाद एक बार फिर एनीमा लेकर छोड़ देना चाहिए।

(११) कमज़ोर रोगियों को पहले थोड़ा पानी चढ़ाना चाहिए। जैसे जैसे ताक़त बढ़ती जाय पानी की मात्रा को भी बढ़ाते जाना चाहिए। जैसा कि पहले बताया गया है, कमज़ोरी की हालत में एनीमा के बाद पाख़ाने जाने के लिए पास ही इन्तज़ाम होना चाहिए। अगर टाइफाइड बुखार है या और कमज़ोरी की हालत है तो बेड-पैन (bed-pan) काम में लाना चाहिए। एनीमा के बाद अगर कमज़ोरी मालूम हो तो थोड़ा फल का रस पिलाने या एक छोटे चम्मच भर शहद चटाने से कमज़ोरी जाती रहती है।

(१२) पानी चढ़ जाने के बाद कुछ देर पेड़ू और पेट को हल्के हल्के मलना चाहिए। पाख़ाने के लिए बैठने के समय जोर तो न करना चाहिए पर पेट को मलते

जाना चाहिए। किसी किसी का पेट दो बार जाने पर साफ़ होता है। पाख़ाने में काफ़ी देर तक बैठना चाहिए।

एनीमा के बारे में कुछ लोगों का भ्रम है कि इससे जन्म भर के लिए आदत पड़ जाती है। ऐसा सोचना बिलकुल ग़लत है। लेखक ने कई रोगियों को लगातार ढाई-तीन महीने एनीमा दिया है। वे सब अब भले-चंगे हैं और एनीमा का इस्तेमाल बिलकुल नहीं करते। स्वयं लेखक ने लगातार साल भर एनीमा का प्रयोग किया है लेकिन फिर भी वह एनीमा का आदी नहीं हुआ। एनीमा की आदत तभी पड़ती है जब कि काफ़ी गरम पानी बहुत मात्रा में लगातार बहुत दिनों तक पेट में चढ़ाया जाय और पानी में साबुन डाला जाय। ऐसा पानी जो न ठंडा हो न गरम किसी हालत में एनीमा का आदी नहीं बनाता। एनीमा से कमज़ोरी होती है, यह भी एक ग़लत धारणा है। हां, बहुत कमज़ोर रोगी को शुरू में कम पानी देना चाहिए।

एनीमा क़ब्ज़ की दवा नहीं है। क़ब्ज़ तो हर रोज़ के ठीक भोजन, नियमित जीवन और उचित व्यायाम और आराम से दूर होता है, लेकिन आंत में चिपके पुराने मल को दूर कर आंतों की मांसपेशी और नाड़ियों को बल देकर और कुछ हद तक यकृत की क्रिया को ठीक कर शरीर को फिर से ताज़ा करने वाली चीज़ एनीमा से बढ़ कर कोई नहीं है।

* * * *

एक बात यहां बता देना ज़रूरी है। किसी किसी रोगी की आंत में इतना सूखा मल अटका रहता है कि एनीमा की मदद से उसे निकालने में बहुत देर लगती है। ऐसी हालत में गरम एनीमा देना चाहिए। पर तीन पाव या सेर भर ग म पानी के साथ पाव भर जैतून (olive) या साफ़ नारियल का तेल मिला देना चाहिए। ऊपर बताई हुई मात्रा बड़े लोगों के लिए है। कम उम्र वालों के लिए पानी और तेल की मात्राएं कम की जा सकती हैं।

तीन-चार या ज़्यादा दिनों के उपवास के अंत में सनाय (लगभग १ तोला) और मुनक्के (लगभग १५-२०) की चाय (सवा पाव पानी में खौलाकर जब तीन छटांक बच जाय) सोते समय पी लेने से भी आंत की अच्छी सफाई होती है। लेकिन इस प्रयोग को कमज़ोरी की हालत में करना ठीक नहीं है। लेखक ने ऐसे रोगियों के साथ, जो एनीमा का यंत्र नहीं खरीद सकते लेकिन जिन्हें लम्बा उपवास करना या बहुत दिनों तक फल पर रहना होता है, हर पांच या सात दिनों के बाद यह चाय पिला कर बहुत लाभ पहुँचाया है,

पर जहां एनीमा का यंत्र है वहां इस प्रयोग को शायद सौ में २–३ रोगियों के ही साथ किया है।

शहरों में अंगरेजी दवा की दूकानों में सनाय की सूखी फलियां (senna pods) मिलती हैं। छोटों के लिए ३–४ और बड़ों के लिए ७ से लेकर १० फलियों को तीन छटांक ठंडे पानी में दोपहर को भिगो दिया जाय और रात को सोते समय फलियों को अच्छी तरह मल-निचोड़ कर सब पानी को छान कर पी लिया जाय तो सबेरे बिना कमजोरी के पेट साफ़ हो जाता है। पानी को गरम करने की जरूरत नहीं।

रोगों का इलाज

रोगों का इलाज, पुराने रोगों का इलाज,

और अचानक की तकलीफ़ें

(जिन पाठकों ने पहले के खंड अच्छी तरह नहीं पढ़े हैं उन्हें सिर्फ़ इस खंड के पढ़ने से पूरा लाभ न होगा)

रोगों का इलाज

एक रोग, एक इलाज--

आशा है कि पाठकों को रोगों की 'चिकित्सा-विधि' (तरीका-इलाज) के बारे में इस किताब के पिछले पन्नों से बहुत कुछ मालूम हो गया होगा। यह भी आशा है कि पाठकों ने समझ लिया होगा कि अगर सभी रोगों का कारण सचमुच एक ही है--शरीर में बेकार पदार्थ का इकट्ठा होना--और इसलिए अगर जड़ में सब रोग एक ही हैं तो उन सब का इलाज भी एक ही ढंग का होगा। रोग को अच्छी तरह समझना चाहिए। (शुरू में जो 'रोग-वृक्ष' का चित्र है उसे देखिए।) कष्टों के भेद, रोगों के लक्षण वृक्ष की भिन्न भिन्न शाखाओं की तरह अलग अलग और दूसरे दूसरे हो सकते हैं, पर सब रोग एक ही धड़ और जड़ से निकल कर फैलते हैं। यदि उस जड़ को ही उखाड़ कर दूर कर दिया जाय तो अलग अलग फैलने वाले, अलग दीखने वाले और अलग नामों से पुकारे जाने वाले रोग और एक ही रोग के अनेक लक्षण आसानी से दूर हो जायेंगे। उदाहरण के लिए, अगर किसी के बुखार है और उसी के साथ साथ खांसी और बदन में दर्द है तो हम इन तीनों शिकायतों को अलग अलग रोग न मान कर इन सब को एक ही रोग के लक्षण समझेंगे और कोशिश करेंगे कि वह जड़ ही दूर हो जाय, जिससे ये शाखें फैली हैं। हां, अगर किसी खास लक्षण से ज्यादा तकलीफ़ है तो हम ऐसे उपाय भी जरूर करेंगे कि रोगी को आराम मिल जाय। यह तो हुई एक रोग के अनेक लक्षण की बात। इसी तरह भिन्न भिन्न रोगों को हम एक ही जड़ से--विकार से--निकले हुए अलग अलग लक्षण समझेंगे।

पाँच ज़रूरी बातें--

चाहे कोई भी बीमारी हो, उसको दूर करने के लिए हम उसके नाम की कुछ भी परवा और ख़याल न कर इन बातों पर ध्यान देंगे :--

(१) पेट और शरीर के अन्दर के विकार को निकालना, पेट की गर्मी को शान्त करना और पाचन-शक्ति को दुरुस्त करना। यह काम उपवास, पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी, एनीमा-प्रयोग, भोजन में उचित हेर-फेर, उचित भोजन और कमर-नहान से हो जाता है।

पेट की गर्मी के दूर हो जाने और पाचन-शक्ति के ठीक हो जाने से ख़ून ठीक हालत में जा जायगा और नाड़ी-संस्थान भी स्वस्थ हो जायगा, जिससे रोग भाग जायगा।

(२) नाड़ी-संस्थान को जगाना और स्वस्थ करना। इसका असर पाचन-शक्ति पर अच्छा पड़ता है और इसी से जीवन-शक्ति जग कर रोग को भगा देती है। यह काम पाचन-शक्ति के ठीक होने पर और विविध नहान और रीढ़ की गीली पट्टी से होता है।

(३) जलन, सूजन, दर्द जैसी ऊपरी तकलीफ़ों को कम करना। यह काम मिट्टी या कपड़े की गीली पट्टियों से या भाप-नहान या गरम और ठंडी सेंक से हो जाता है।

पुराने रोगों में दो और बातों पर ध्यान देना होता है। वे हैं—

(४) जीवन-शक्ति को जगाना, जिससे रोग की जीर्णता (पुरानापन) तीव्रता (नयापन) में बदल जाय और तीव्र लक्षण पैदा होकर दूर हो जाय। यह काम ऊपर बताये उपायों के साथ साथ उचित कसरत, सांस की कसरत (श्वास-क्रिया) और धूप-नहान से होता है।

(५) दिल को बराबर ही खुश रखना और यह आशा करना कि हम धीरे-धीरे ज़रूर ही अच्छे हो जायँगे। यह बहुत ज़रूरी है।

दोस्त और रिश्तेदारों को भी रोगी की मदद करनी चाहिए, जिससे वह खुश रहे। इस आख़री बात पर जितना भी ज़ोर दिया जाय कम होगा अगर रोगी चिड़चिड़ा हो तो ऐसा न समझना चाहिए कि वह जान-बूझ कर शैतानी कर रहा है। वह बेचारा तो बेबस है।

अगर यह बातें समझ में आ जायँगी तो चिकित्सक रोगों के नाम से डर कर किसी भी रोग का सही और अचूक इलाज कर लेगा। यह समझना ज़रूरी है कि हम रोग से नहीं लड़ते बल्कि शरीर में वह बातें पैदा करते हैं कि रोग वहां रहे ही नहीं।

चिकित्सा का क्रम—

अचूक चिकित्सा में भोजन का बहुत बड़ा स्थान है, इसलिए पहले कुछ बातें समझा देना ज़रूरी है।

अगर कोई नया रोग है तो हम इन उपायों को काम में लायेंगे :—

(१) जब तक रोग न जाय तब तक पूरा उपवास। कमजोर को एक-दो दिन के पूरे उपवास के बाद या शुरू से ही फल का रस दिन में तीन-चार बार दिया जा सकता है। मीठे संतरे, मसंबी, बिदाना या कंधारी अनार के रस या पानी में ५-६ घंटे भिगोई हुई किशमिश या मुनक्के का पानी काम में लाया जा सकता है। बहुत दिन चलने वाली बीमारी में दूध-फटा पानी (आग पर उबलते दूध में नींबू का रस डाल कर यह पानी मिलता है) फल के रसों के अलावा दो बार देना चाहिए।

जहां तक हो, उपवास करना चाहिए। हैजा जैसे रोग में कुछ न देना चाहिए।

(२) अगर बहुत मात्रा में बहुत बार पहले दस्त न आते हों तो एनीमा-प्रयोग--दिन में एक बार। नहीं तो क़ब्ज़ की हालत में सुबह-शाम दो बार। तेज ज्वर में भी काफ़ी अन्तर देकर दिन में दो बार।

(३) रोग दूर होने पर रसाहार, तब दो-तीन दिनों तक दिन में तीन बार फलाहार और इसके बाद दो-तीन दिनों तक एक बार रोटी-सब्जी और एक या दो बार फल या फल-दूध या दूध। फिर तनदुरुस्ती के दिनों का भोजन, जो भोजन वाले अध्याय में बताया गया है।

(४) जरूरत के मुताबिक (अनुसार) पानी, मिट्टी का प्रयोग।

पुराने रोग में, जिसमें असली या बहुत कमजोरी नहीं है (असली कमजोरी उसे कहते हैं जो कि पांच-छः महीने या इससे भी ज्यादा दिनों तक खाट पर पड़े रहने और कई डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों के हाथ से गुजरने के बाद या क्षयी इत्यादि रोगों मे होती है) तो नीचे दिया हुआ क्रम चलाना चाहिए :--

(१) पहले तीन दिनों का उपवास--भरसक पूरा या फलों के रस पर (दिन में सिर्फ़ दो या तीन बार इच्छा भर।)

असली कमजोरी में इस नं० १ को छोड़ कर नं० २ से शुरू करना चाहिए और जैसे ही अवस्था सुधरे एक-दो दिन का उपवास करना चाहिए।

उपवास के दिनों में सुबह-शाम एनीमा।

(२) उपवास के बाद पूरे पन्द्रह या और ज्यादा दिनों तक दिन में दो या तीन बार फलाहार। हल्के, मीठे और रसदार फल हों--केला नहीं। समय--बन सके तो गर्मियों में ९ बजे सुबह और ४ बजे शाम, जाड़ों में ११ बजे सुबह

और ५ बजे शाम। एक बार सिर्फ़ एक तरह का फल, इच्छा भर। अगर तीन बार फल लेना हो तो ८ बजे सुबह, १ बजे दोपहर और ६ बजे शाम।

पहले हफ़्ते में सुबह-शाम एनीमा। फिर अगर जरूरत न रहे तो सिर्फ़ एक बार एनीमा। जरूरत होने पर दोनों समय। एनीमा लेने से पहले सुबह और शाम को पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी, ३०-४० मिनट के लिए।

कभी-कभी इन फलाहार के दिनों में मुंह का स्वाद खराब हो जाता है या कुछ पतले दस्त आने लगते हैं या आंव गिरने लगती है या और कोई नया लक्षण उभड़ पड़ता है। अगर ऐसा हो तो समझना चाहिए कि विकार निकल रहा है, जो अच्छा है, और तुरन्त ही फलाहार से रसाहार पर एक दो दिन के लिए आ जाना चाहिए। हो सकता है कि कुछ कमज़ोरी मालूम हो, पर दिल जरूर खुश रहेगा। कमजोरी से घबराना न चाहिए। जितना जल्द विकार निकलेगा उतना ही जल्द शरीर स्वस्थ होगा। विकार निकलते समय कुछ कमज़ोर हो जाना स्वाभाविक है।

अगर पेट के दर्द की शिकायत हो या ऐसी कोई गड़बड़ी हो, जिसमें फल ठीक न बैठता हो, तो पहले दो-तीन या और ज्यादा दिनों तक हल्की (बिना छिलके की) सादी पकी भाजी पर रह कर फलों पर आ जाना चाहिए। फल तरकारी से अच्छे होते हैं।

(३) इसके बाद दस या पन्द्रह दिनों तक हर बार फल के साथ पाव-डेढ़ पाव कच्चा बढ़िया दूध। किसी तरह के अपच में दूध के बदले पतला मठा (गाय के दूध का) इस्तेमाल करना चाहिए। अगर जरूरत हो तो पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा एक बार या दोनों बार जारी रखना चाहिए। जरूरत न हो तो छोड़ देना चाहिए।

(४) इसके बाद तनदुरुस्ती के दिनों वाला भोजन, जैसा भोजन वाले अध्याय में बताया गया है लेकिन अन्न का भोजन कुछ दिनों तक एक ही बार करना चाहिए।

इसी समय से या फलाहार के दिनों के बीच से ही नहान शुरू करना चाहिए।

जो बहुत दिनों से बीमार है लेकिन चलता फिरता है और जिसने जहरीली दवाइयां खाई हैं उसे शुरू शुरू में ही उपवास और फलाहार कराने से गड़बड़ी होती है। फ़लाहार भी दबे लक्षणों को उभाड़ता है। उसे शुरू से ही

४-५ मिनटों का कमर-नहान या १० मिनटों का उपस्थ-स्नान पहले ८-१० दिनों तक दिन में एक बार, फिर दो बार देना चाहिए। भोजन में सिर्फ़ रोटी-भाजी दोनों समय और एक बार नाश्ते में एक तरह का फल एनीमा का सहारा भी लेना चाहिए। अगर उसे काफ़ी ताक़त नहीं है तो नहान के बदले कुछ दिनों तक सिर्फ़ पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा ही ठीक होगा। कुछ हफ़्तों के बाद पूरा उपवास और फलाहार कराया जा सकता है। उन दिनों नहान नहीं। लेकिन नियमित भोजन शुरू करते ही फिर नहान भी शुरू कराया जा सकता है। नहान का समय धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए।

नोट--यह एक-सवा महीने का कठिन संयम हाल के पुराने रोगों में काफ़ी हो सकता है, लेकिन वर्षों के पुराने रोगों में दो दो महीने पर एक-दो बार ऊपर के क्रम को दुहराना होगा। जो धैर्य और समझदारी से काम लेंगे वे साल भर के अन्दर पुराना से पुराना रोग दूर कर सकेंगे और शरीर को नया बना लेंगे, नहीं तो ज्यादा समय लगेगा।

जहां फल या तरकारी न मिले वहां तीन दिन के उपवास के बाद एक हफ़्ते या दस दिनों तक बिना मक्खन का पतला मठा या पानी मिला अच्छा गाय का दूध दिन में दो-तीन बार लेना चाहिए। फिर तीन दिन का उपवास कर के दस दिन तक सिर्फ़ पतले मठे पर या दूध पर रहना चाहिए। तब और दस दिनों तक दोनों समय सिर्फ़ रोटी और इसके बाद रोटी-भाजी पर आना चाहिए।

गर्मियों में ९ बजे सुबह और ४ बजे शाम और जाड़ों में ११ बजे सुबह और ५ बजे शाम के समय, अर्थात् सिर्फ़ दो बार, खाने के लिए बहुत ठीक है, लेकिन अगर काम पर जाना हो तो समय बदल सकते हैं। तीन बार--८ बजे सुबह, १ बजे दिन और ६ बजे शाम या ९ बजे सुबह ३-३० बजे तीसरे पहर और ८-३० बजे रात--अन्दाज से खा सकते हैं।

हर रोज़ का क्रम--

चिकित्सकों को दिन भर का कार्य-क्रम बनाना सीखना चाहिए, जैसे--

६ बजे सुबह--पाखाने जाना, मुंह धोना

६-३० बजे सुबह--पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा

९ बजे सुबह--साधारण स्नान

१० बजे दिन--फलाहार

३-३० बजे तीसरे पहर--पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा

५ बजे शाम--फलाहार

या

६ बजे सुबह--पाखाने जाना, मुंह धोना, किशमिश का पानी पीना

६-३० बजे सुबह--एनीमा

७-३० बजे सुबह कमर-नहान

६-३० बजे सुबह--साधारण स्नान

१०-३० बजे दिन--भोजन

१ बजे दिन--पानी पीना

२ बजे तीसरे पहर--पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा

४ बजे शाम--कमर-नहान या उपस्थ-स्नान

५-३० बजे शाम--भोजन

या

६ बजे सुबह--पानी पीकर पाखाने जाना, मुंह धोना

६-३० बजे सुबह--कमर-नहान और कसरत

८-३० बजे सुबह--साधारण स्नान

६ बजे सुबह --भोजन

११ बजे दिन--पानी पीना

३-३० बजे शाम--हल्का नाश्ता

५ बजे शाम--कोई एक नहान और टहलना

८ बजे रात--भोजन

६-३० बजे रात--पानी पीना

१० बजे रात--सो जाना

या

६ बजे सुबह पाखाने जाना, मुंह धोना, किशमिश का पानी पीना, हल्की कसरत

८ बजे सुबह—धूप-नहान, साधारण स्नान और कमर-नहान

९-३० बजे सुबह—भोजन

११-३० बजे दिन—पानी पीना

१ बजे दिन—रीढ़ पर पट्टी

४ बजे शाम—नाश्ता, नाश्ते के बाद किसी अंग विशेष पर भाप

५-३० बजे शाम—कोई एक नहान और टहलना

७-३० बजे रात—भोजन

९-३० बजे रात—पानी पीकर सो जाना

ये ऊपर के कई कार्य-क्रम नमूने के लिए बताये गए हैं। चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी की शक्ति और आवश्यकता, ऋतु, रोग के लक्षण और रोगी की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए इस किताब में दिए नियमों के अनुसार कार्यक्रम बनावे।

इस तरह मोटा-मोटा चिकित्सा-क्रम बताने के बाद कुछ रोगों के इलाज के बारे में अब कुछ कहा जायगा।

पुराना क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता

क़ब्ज़ किसे कहते हैं—

आंतों से मल के नहीं निकलने को क़ब्ज़ कहते हैं। इसी से प्रायः सभी रोग होते हैं। आंतों में सोखने वाली गिल्टियां होती हैं, जो मल से जहरीले रस खींचकर सारे शरीर में फैला देती हैं। इससे भयंकर रोग भी हो सकते हैं।

इलाज—

(१) पहले तीन दिन का उपवास या रसाहार, फिर ३-४ दिनों तक फलाहार या फल-दूध या मठा। इसके बाद एक हफ़्ते तक एक समय रोटी-भाजी और एक या दो समय फल। फिर दोनों समय इस किताब में बताये ढंग से उचित भोजन, जिसमें आधी मात्रा कच्ची सब्ज़ी या फलों (सलाद) की ज़रूर हो।

उपवास या रसाहार और फलाहार के दिनों में हर रोज़ और बीच-बीच में जब जरूरत हो तो एनीमा लेना चाहिए। चार-छः गर्म एनीमा के बाद धीरे धीरे मामूली ठंडे पानी पर आ जाना चाहिए।

(२) उपवास या रसाहार के बाद पहले दो हफ़्ते तक सुबह-शाम कमर-नहान, फिर एक समय कमर-नहान और दूसरे समय उपस्थ-स्नान।

(३) कसरत (आगे बताई जायगी) या अपनी शक्ति भर दो से छः मील तेजी से रोज टहलना। रीढ़ की हलकी मालिश।

(४) पाखाने के समय ज़ोर न करना चाहिए लेकिन ज़ोर से सोचना चाहिए कि पाखाना आ रहा है।

(५) पाखाने के लिए दिन में दो समय बँधे होने चाहिए।

बहुत दिन के पुराने क़ब्ज़ में दो महीने के बाद फिर उपवास करके ऊपर बताये क्रम को दुहरा जाना चाहिए। क़ब्ज़ अच्छा होने के बाद भी उचित भोजन और कसरत को जारी रखना चाहिए, लेकिन नहानों को छोड़ सकते हैं।

क़ब्ज़ में नाड़ियां, ख़ासकर पेट और आंतों की नाड़ियां, कमज़ोर रहती हैं। जब तक ये सचेत और मज़बूत नहीं होतीं तब तक क़ब्ज़ नहीं जा सकता। जब उपवास और फलाहार से पेट को आराम मिलता है, एनीमा से पहले का इकट्ठा मल निकल जाता है और नहान और कसरत से नाड़ियां जग जाती हैं तभी क़ब्ज़ दूर हो सकता है। जिसके वीर्य-दोष है उसे भी क़ब्ज़ रहता है और जिसे क़ब्ज़ रहता है उसे वीर्य-दोष हो सकता है। जो सभी तरह स्वस्थ है उसे ही क़ब्ज़ नहीं रहता।

मामूली क़ब्ज़ में और कुछ न खाकर सिर्फ़ चोकरदार आटे की मोटी रोटी खूब चबाकर खाना और उसी पर कुछ दिन रहना बहुत लाभदायक होता है। पानी खाने के साथ या तुरन्त बाद न पीना चाहिए।

एक छोटे गिलास भर गरम पानी के साथ आधे या एक नींबू का रस निचोड़कर और उसमें जरा नमक मिलाकर दिन में दो बार पीने से भी क़ब्ज़ दूर हो जाता है। खाने के बाद एक चुटकी बहुत बारीक रेत (बालू) पानी के सहारे निगल जाने से भी पाखाना साफ़ आता है।

कौन क़ब्ज़ से बचा है--

याद रहे कि वही आदमी क़ब्ज़ से बचा हुआ समझा जा सकता है, जिसे पाखाने के लिए बैठते ही एक या दो बड़े और बँधे टुकड़े मल के आ जायँ, जिनमें बदबू न हो। बाक़ी सभी क़ब्ज़ के शिकार हैं।

सर्दी ज़ुकाम

जब पाख़ाना, पेशाब, सांस और पसीने के साथ शरीर के विकार ठीक ठीक बाहर नहीं निकलते तब कभी कभी प्रकृति यह प्रबन्ध करती है कि ये विकार नाक और गले की झिल्लियों से निकाले जायँ। तभी छींकें आती हैं, नाक से पानी बहता है और गले में ख़राश मालूम होती है। इसी को सर्दी-ज़ुकाम कहते हैं। कभी कभी बुख़ार भी होता है।

इलाज--

(१) दो या तीन दिनों का उपवास। गर्म पानी के साथ नींबू (या नारंगी) का रस दिन में तीन बार लेना चाहिए, जिस से ज़ुकाम और भी बह जाय। फिर दो दिनों तक फलाहार या सब्ज़ी का भोजन। इसके बाद उचित भोजन।

(२) तीन-चार दिन तक हर रोज एनीमा।

(३) आराम करना।

(४) जरूरत हो तो, सुबह-शाम या एक ही समय पैरों का गरम-नहान।

ज़ुकाम शुरू होते ही अगर भाप-नहान और उसके बाद कमर-नहान ले लिया जाय तो पहले ही दिन ज़ुकाम जाता रहता है, लेकिन ऊपर बताया परा संयम कर लेना चाहिए।

ज़ुकाम को मत दबाओ--

ज़ुकाम को दवाइयों से रोकना न चाहिए। बार बार ज़ुकाम को दबाने से शरीर के अन्दर का विकार अन्दर ही रह जाता है, जिससे आगे चलकर गठिया या और कोई जीर्ण रोग हो जाता है।

ज्वर या बुख़ार

बुख़ार क्यों होता है——

अनुचित रहन-सहन और खान-पान से शरीर के सभी हिस्सों में विकार जमा हो जाता है। उसी से शरीर में जोश भी उभड़ता रहता है। यह जोश विकार के टुकड़े टुकड़े कर देता है। फिर जोश के कारण इन टुकड़ों में रगड़ पैदा होती है, तभी शरीर की गर्मी बढ़ जाती है। इसी को बुख़ार कहते हैं।

बुख़ार के भेद——

बुख़ार की बहुत सी क़िस्में हैं, पर चाहे जितनी भी क़िस्में हों, शुरू-शुरू में सभी बुख़ार एक हैं। आगे चलकर भी वे एक ही रहते हैं, पर लक्षण अलग अलग दीखते हैं। अगर शुरू में ही बुख़ार का ठीक इलाज किया जाय तो बहुत से बुख़ार ज़्यादा से ज़्यादा दो-तीन दिनों में चले जाते हैं, कुछ ही ऐसे हैं जो कई हफ़्ते या महीनों चलते हैं। इसे अच्छी तरह समझना चाहिए। बुख़ार पहले ही दिन टाइफ़ाइड या चेचक या गर्दनतोड़ बुख़ार या कोई और बुख़ार नहीं हो जाता। शुरू से ही अगर प्राकृतिक उपचार काम में लाये जायें तो लंबा चलनेवाले बुख़ारों में भी बहुत आसानी होती है।

इलाज——

(१) सच्ची बात यह है कि मामूली तौर पर मज़बूत रोगी को, जब तक बुख़ार छूट न जाय, उपवास कराना चाहिए। उपवास के समय गरम या ठंडे पानी के साथ नींबू का रस दे सकते हैं। कमज़ोर रोगियों को भी एक-दो दिन पूरा उपवास करा के और तब सन्तरे या अनार का रस या किशमिश भिगोया पानी थोड़ी मात्रा में तीन-तीन घंटे पर दे सकते हैं। बहुत लम्बा चलने वाला बुख़ार, जैसे टाइफ़ाइड में पांच-सात दिन के बाद से दूध फाड़ कर उसका पानी दिन में दो बार और दो बार रस देना चाहिए। दूध गाय का हो और नींबू के रस से फाड़ा जाय, फट जाने पर निरा पानी ही देना चाहिए। बुख़ार छूटने पर पहले पानी मिलाया दूध, फिर फल-दूध और तब उचित भोजन। अगर उपवास या रसाहार ज़्यादा दिन चला है तो बहुत धीरे धीरे भोजन का प्रकार और मात्रा बढ़ाई जाय। इसलिए रसाहार के बाद ही पहले दिन तरकारियों का सूप और पानी मिला दूध देना

चाहिए—एक बार सूप और दो बार दूध। फिर धीरे धीरे निरा दूध शुरू करना चाहिए। इसके एक-दो दिन बाद पकी हरी भाजी—इस तरह शरीर का अभ्यास बढ़ाते हुए रोटी या चावल इत्यादि पर आना चाहिए।

(२) अगर पहले दिन कुछ परेशानी न हो और बुखार १०२ या १०३ डिग्री तक ही रहे तो सिर्फ़ एक बार एनीमा दीजिए और एक बार सारे शरीर को भीगे कपड़े से पोंछिए। दूसरे दिन भी अगर परेशानी न हुई और बुखार ज़्यादा न बढ़ा तो पहले दिन की ही तरह एनीमा दीजिए और भीगे कपड़े से शरीर पोंछिए। दो-तीन दिन ऐसा करने से बुखार जाते रहेंगे, लेकिन अगर पहले दिन से ही परेशानी है और बुखार भी तेज़ है तो एनीमा के दो-तीन घंटे बाद सारे शरीर की गीली पट्टी या कमर-नहान दीजिए। अगर ज़रूरत हो तो दो घंटे बाद फिर पट्टी या कमर-नहान दीजिए। जल्दी-जल्दी के कमर-नहान गर्मियों में १० मिनट और जाड़ों में ७ मिनट के लिए हों। इस तरह के तेज़ ओर परेशान करने वाले बुखार भी एनीमा और कमर-नहान से दो-तीन दिन में चले जायँगे, लेकिन बुखार के शुरू होते ही इलाज शुरू कर देना चाहिए। जैसे जैसे बुखार की तेज़ी कम होती जाय नहान भी देर से दिये जायँ। ख़तरनाक दीखने वाले बुखारों में सुबह-शाम दोनों बार एनीमा देना चाहिए। इतना ध्यान ज़रूर रहे कि रोगी की परेशानी न बढ़े। शुरू-शुरू में कमज़ोरी नहीं होती। जो कमज़ोरी मालूम होती है वह बुखार का झोंका रहता है। फिर भी रोगी को ज़रूरत से ज़्यादा परेशान न करना चाहिए।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, बहुत से बुखारों में हर रोज सिर्फ़ एनीमा देना और एक बार बदन (सिर से लेकर पांव तक) को ठंडे पानी में निचोड़े गीले कपड़े से स्पंज कर देना काफ़ी होगा। अगर कुछ और उपचार की ज़रूरत हो तो दिन भर में तीन या चार बार पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखना काफ़ी है। बात यह है कि बुखार को उतारने में जल्दबाज़ी न करनी चाहिए। अगर पानी के बहुत प्रयोग से बुखार जल्दी ही उतर गया तो सारा विकार जलने न पाएगा और शरीर निर्मल न होगा। दूध का व्यवहार बिलकुल मना है, क्योंकि दूध तरल होता हुआ भी पूरा भोजन है। दूध या और कुछ पथ्य देना बुख़ार को मज़बूत करना है।

(३) अगर बुख़ार के साथ कोई और तकलीफ़ हो तो तकलीफ़ की जगह पर मिट्टी की पट्टी या कपड़े की गीली पट्टी का इस्तेमाल करना चाहिए।

जैसा कि पहले बताया गया है, पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी वैसे भी या एनीमा और नहान के पहले या नहान के बदले दी जा सकती है।

(४) अगर बुख़ार के बीच में, जब कि रोग का कुछ नाम रख दिया गया है, रोगी मिले तो इलाज का एक क्रम ठीक कर लेना चाहिए। नमूने के लिए एक क्रम नीचे दिया जाता है।

६ बजे सुबह--पेड़ू पर मिट्टी और तब तुरन्त ही एनीमा या कमर-नहान।

७-३० बजे सुबह--रसाहार

१०-३० बजे सुबह--दूध-फटा पानी या रसाहार

११ बजे सुबह--शरीर को गीले कपड़े से अच्छी तरह पोंछना

१२-३० बजे दोपहर--कमर-नहान या पेट पर मिट्टी या कपड़े की गीली पट्टी

२ बजे तीसरे पहर--रसाहार

४ बजे शाम--पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी। बहुत कमजोरी और पतले दस्त आने की हालत में जैसा कि कभी कभी टाइफ़ॉयड में होता है, एनीमा न देना चाहिए। लेकिन अगर कुछ दिनों के बाद फिर क़ब्ज़ हो जाय तो एनीमा जरूर देना चाहिए।

६ बजे शाम--रसाहार या फटे दूध का पानी।

(५) जब जब बुखार तेज हो पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी दीजिए। १०३ डिग्री से ज़्यादा बुख़ार हो तो सर पर गीले कपड़े की पट्टी भी दीजिए। जैसे ही ये पट्टियां गरम हो जायँ वैसे ही या तो इन्हें बदल देना चाहिए या उस समय के लिए बिलकुल अलग कर देना चाहिए।

(६) रोगी को आराम से लेटना चाहिए।

(७) हर रोज गीले कपड़े से रोगी का शरीर अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। उस समय कमरा बन्द रहे। बुखार छूटने के कुछ दिनों के बाद जब रोगी अनाज खाने लगे तो वह पूरा पूरा मामूली नहाना शुरू कर सकता है। बुखार अगर बहुत बढ़े तो कुछ और उपचार (जिससे रोगी परेशान होता है) न कर के काफ़ी ठंडे पानी में तर किए कपड़े से शरीर को अच्छी तरह स्पंज करना (पोंछना) चाहिए और सिर को भी अच्छी तरह उस पर पानी डाल कर धोना चाहिए। डरिए नहीं, शरीर को भिगोने के बाद फ़ौरन ही सूखे कपड़े से
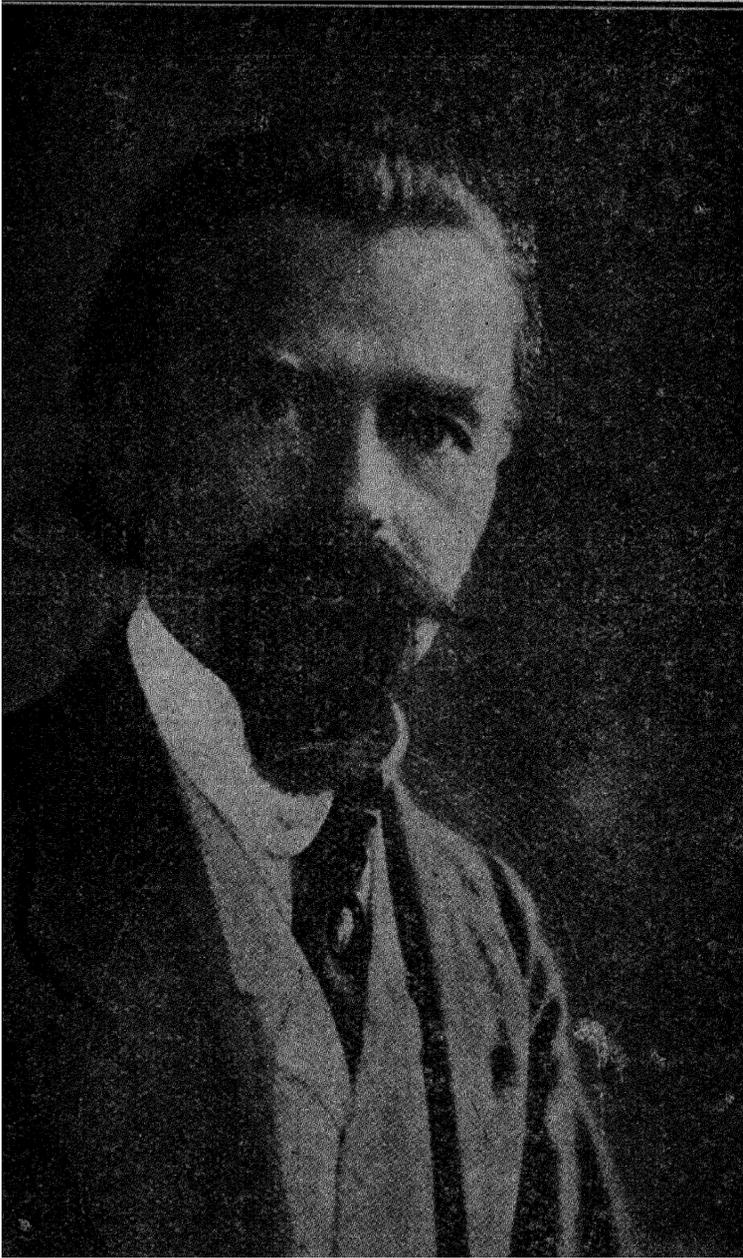
प्रोफ़ेसर ऑर्नल्ड एहरेट— जर्मनी निवासी, जिन्होंने अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करते हुए बताया कि सिर्फ़ फलाहार ही ऐसा है, जिससे शरीर में विकार नहीं पैदा होता। इनके सिर के बाल गिर गये थे, लेकिन दो वर्ष के लगातार फलाहार और बीच बीच के उपवास से इन्होंने न केवल सिर के बाल ही फिर से उगाये बल्कि पूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ किया।

पोंछना चाहिए और फिर मोटा सूती कपड़ा ओढ़ा देना चाहिए। जब जब बुख़ार १०३ से ज़्यादा बढ़ने लगे स्पंज कर देना चाहिए।

*   *   *   *

बहुत बार ऐसा हुआ है कि छठवें-सातवें दिन बुख़ार का नाम मियादी या टाइफ़ॉयड रख दिया गया। इसी समय रोगी की प्राकृतिक चिकित्सा शुरू कर दी गई। दो कमर-नहान के बाद टाइफ़ॉयड काफ़ूर हो गया! किसी किसी टाइफ़ॉयड में ज़्यादा दिन लगते हैं क्योंकि टाइफ़ॉयड की अवधि होती है, पर इस चिकित्सा से किसी में भी वैसे उपद्रव नहीं होते जैसे कि टाइफ़ॉयड में अक्सर होते हैं। बुख़ार अपने समय तक चल कर उतरने लगेगा।

१६३५ की गर्मियों में एक साहब अलमोड़ा पहाड़ के एक गांव में मुझे मिले। वह चार साल से मलेरिया (जाड़ा-बुखार) से परेशान थे। जब जब मलेरिया होता तो कुनैन खाकर उसे दबा देते। इंजेक्शन भी उन्होंने लिया था। फिर भी मलेरिया पीछा न छोड़ता था। उन्हें मैंने तीन दिनों का पूरा उपवास कराया और फिर उपवास के बाद एक हफ़्ते तक सिर्फ़ किशमिश या मुनक्कों पर रखा। तीन-चार दिन सुबह-शाम एनीमा से पेट साफ़ किया गया। मलेरिया ऐसा गया कि आज (२५ मई, सन् १६३६ ई०) तक नहीं लौटा है। इस रोगी को न तो कमर-नहान दिया गया और न मिट्टी की पट्टी। इन इलाजों के बारे में सच्ची बात यह है कि असल काम प्रकृति करती है—नहान इत्यादि से उसे सिर्फ़ मदद मिलती है।

किसी तरह के बुख़ार में ऊपर बताए ढंगों से काम ले सकते हैं। रोगी की हालत और शक्ति के अनुसार उपचारों को ठीक करना चाहिए। जल्दबाज़ी और बिलम्ब दोनों ही ख़राब हैं।

मलेरिया (जाड़ा-बुख़ार)—

यह ज़रा तंग करता है और अक्सर लोगों का ख़्याल होता है कि प्राकृतिक उपचारों से मलेरिया नहीं जाता लेकिन ऐसा सोचना ग़लत है। मलेरिया में इन बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) जाड़ा लगने या बुखार बढ़ने के समय कोई भी उपचार काम नहीं करता। इसलिए जब बुखार उतार पर हो तब उपचार आरम्भ करना चाहिए। (२) मान लीजिए, बुख़ार १०५ दर्जे का हो गया और अब वहीं पर है। अब ठंढे पानी से (कमरा बन्द कर के) शरीर को अच्छी तरह स्पंज

कीजिए। कपड़े में पानी काफ़ी हो और थोड़ी-थोड़ी देर में पानी में डुबोया जाय। पहले रीढ़ और पीठ को २ मिनट हल्का हल्का रगड़ कर पोंछ दीजिए। फिर बारी-बारी से दोनों हाथ, दोनों टांग, पेट, फिर रीढ़ और तब दूसरे पानी में तौलिया भिगो कर चेहरा स्पंज कर के पोंछ दीजिए। आखीर में सिर को एक किनारे कर के उसे आरम्भ से रख कर उस पर २-३ मिनट पानी धीरे-धीरे गिराइए और तब सिर को पोंछ दीजिए। शरीर का हर हिस्सा बारी-बारी से अच्छी तरह भीगा जाय और तब दूसरे कपड़े से पोंछ कर सुखा दिया जाय। शरीर या सिर को भिगाने से न डरिए लेकिन इसका ध्यान रहे कि भीगा कपड़ा शरीर पर या नीचे न रहे। अब शरीर को ढँक कर दरवाजे खोल दीजिए। इस तरह स्पंज करने से बुखार एक-दो डिग्री कम जायगा। अगर १०३ के नीचे बुखार न जा रहा हो तो एक घंटे के बाद फिर इसी तरह स्पंज कीजिए। साथ ही २-२ घंटे का या ज़्यादा मात्रा देकर पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखिए। (३) बुखार ९८-९७ तक उतर कर फिर चढ़ने लगता है। जब ९८ पर आवे तो गरम पानी में कमर-नहान दीजिए। पानी सहने लायक काफ़ी गरम हो। सिर में ठंडा कपड़ा अच्छी तरह लपेट दीजिए। रोगी शक्ति के अनुसार ७ से १५ मिनट तक पानी में बैठे। पेड़ू मलने की जरूरत नहीं। रोगी के टब से बाहर निकलने पर शरीर पोंछ दीजिए। अगर पसीना आ गया हो तो ठंडे पानी में अच्छी तरह निचोड़े कपड़े से शरीर पोंछ कर रोगी को आराम से लिटा दीजिए और ऊपर से कंबल डाल दीजिए। अगर फिर पसीना चले तो फिर ठंडे पानी में निचोड़े कपड़े से शरीर पोंछिए। ऐसा हर रोज दो-तीन बार करने से मलेरिया जरूर जायगा। अगर कमर-नहान के बदले भाप-नहान और उसके बाद ही शरीर को स्पंज कर के ठंडे पानी में कमर-नहान दिया जाय तो और अच्छा हो, पर ये सारे उपचार बुखार के उतरते समय (चढ़ना शुरू होते भी नहीं) ही किए जांय। अगर बुखार ९७ तक गिरता हो तो ९८ पर ही गरम पानी में कमर-नहान या भाप-नहान या कुछ न हो सके तो ठंढे पानी में मामूली कमर-नहान देना चाहिए। अगर सिर्फ़ ठंढे पानी में कमर-नहान दिया जाय तो उस समय पैरों का गरम नहान भी साथ-साथ दिया जाय। (४) एनीमा से हर रोज पेट साफ़ करना जरूरी है। (५) जब तक मलेरिया बना रहे तब तक रसाहार ही हितकर है—दिन में ४-५ बार। अगर बीमारी ज़्यादा दिन चले तो २ बार दूध-फटा पानी और २ या ३ बार फल का रस। ऐसे उपचारों से गया मलेरिया फिर नहीं आता।

किसी-किसी मलेरिया में बुख़ार उतर कर ६-७ घंटे या १२ घंटे या इस से ज़्यादा देर तक बुख़ार बिलकुल नहीं रहता, फिर धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। ऐसे मलेरिया में जब बुख़ार बिलकुल न रहे तो हर रोज़ एक या दो बार ठंडे पानी में मामूली ढंग का कमर-नहान लेने से कुछ ही दिनों में मलेरिया जाता रहता है, या किसी किसी मलेरिया में थोड़ा-थोड़ा बुखार बराबर बना रहता है या उतरते ही फिर बढ़ने लगता है। ऐसे ही मलेरिया में बुख़ार के उतार पर जब टेम्परेचर ९८ पर आ जाय तो गरम पानी में कमर-नहान या भाप-नहान या धूप-नहान के उपचारों को करना ज़रूरी होता है। होशियार चिकित्सक बीमारी के शुरू में ही समझ जाते हैं कि इसका रूप-रंग कैसा होगा और शुरू से ही वे उचित उपचार करने लग जाते हैं।

टाइफायड—

इससे लोग बहुत डरते हैं। पर इसकी तरह लंबा चलने वाला पर आसान बुख़ार शायद ही कोई हो। यह लम्बा ज़रूर जायगा पर उपवास, रसाहार, दिन में पेड़ू पर ३-४ बार मिट्टी की पट्टी, १०२ से ज़्यादा बुख़ार होने पर स्पंज इत्यादि उपचारों से यह बिना किसी उपद्रव के अपनी अवधि समाप्त कर चला जाता है।

बुखार है या नहीं, इसके जानने के लिए या तो नाड़ी-ज्ञान का होना या टेम्परेचर नापने के लिए थर्मामीटर का होना ज़रूरी है।

चेचक

चेचक के बारे में याद रखना चाहिए कि पहले ही दिन से ही चेचक नहीं निकलती। तीन-चार दिनों के बाद दाने निकलते हैं। पहले बुख़ार रहता है। जैसा कि पहले बताया गया है, बुख़ार होते ही उसकी प्राकृतिक चिकित्सा करने से या तो चेचक निकलती ही नहीं या अगर निकलती भी है तो कोई उपद्रव नहीं होता।

जब शक (सन्देह) हो कि यह चेचक का बुख़ार है (बुख़ार की तेज़ी, शरीर की जलन और रोगी की परेशानी से यह मालूम हो सकता है) तो और उपायों के साथ अगर बन सके तो सारे बदन पर गीली पट्टी भी दीजिए। सुबह में एनीमा, दोपहर में गीली पट्टी और फिर तीसरे पहर भी पट्टी या कमर-

नहान—बस, दो-तीन दिन ऐसा करने से बुख़ार (और उसके अन्दर छिपी हुई चेचक) का ख़तरा बहुत कम हो जाता है ।

कई चेचक के रोगियों को, जिनको दाने भी निकल चुके थे, मैंने हर रोज़ रसाहार के साथ-साथ सिर्फ़ एक एनीमा देकर अच्छा किया। एक चेचक का रोगी मुझे एक ऐसे पहाड़ी स्थान में मिला, जहां कोई फल न मिलता था। दूध भी भैंस का ही मिलता था। वह 'खाना-खाना' बहुत चिल्लाता था। इससे विवश होकर उसे एक हिस्सा दूध के साथ दो हिस्सा पानी मिला कर हर रोज़ देता और साथ ही एनीमा से पेट भी साफ़ कर देता था। रोग देखने में कठिन मालूम होता था, पर १५ दिनों के बाद दानों के दाग़ भी न रह गए।

चेचक में तभी ख़तरा होता है, जब कि दाने अच्छी तरह नहीं निकलते। देर तक दी गई सारे शरीर पर गीली पट्टी से दाने खूब निकल जाते हैं, पर अगर कोई गड़बड़ी मालूम हो तो भाप-नहान और उसके बाद नहला कर कमर-नहान देना चाहिए। एक भाप-नहान काफ़ी है; अगर ज़रूरत ही हो तो दूसरे दिन एक और दिया जा सकता है। अगर पेड़ू पर दाने निकल आए हों तो कमर-नहान में पेड़ू न रगड़ कर पानी में यों ही बैठना चाहिए। यह भी न बन सके तो पेड़ू पर कपड़े की गीली पट्टी रखी जाय।

चेचक के रोगी को खाना देने में बहुत होशियार रहना चाहिए। अक्सर लोग देवी-देवता समझ कर सभी कुछ खिला देते हैं। ऐसा करना बहुत बड़ी भूल है। मामूली हालतों में, जब कि बुख़ार उतर जाता है और दाने अच्छी तरह निकल आते हैं, सब कुछ खिलाने पर भी रोगी चंगा हो जाता है, पर बहुत बार धोखा भी उठाना पड़ता है। बे-ढंगा खाने-पीने से मामूली चेचक बढ़ कर घातक बन जाती है। खाने के लिए बुख़ार की हालत में भरसक कुछ नहीं; नहीं तो फलों का रस, और बुख़ार उतर जाने पर हलका फल देना चाहिए।

चेचक में रोगी का पेट साफ़ रखिए और दानों को दबने न दीजिए—बस, बेड़ा पार है।

हैज़ा

हैज़ा शुरू होते ही कमर-नहान दीजिए। दो-तीन कमर-नहान के बाद से ही लक्षण सुधरने लगेगा। बहुत बार तो एक ही नहान से बीमारी वश में हो जायगी। लेकिन जब जब दस्त आए तब तब शक्ति के अनुसार ५ या ७ या १० मिनट के लिए कमर-नहान दीजिए। यह न हो सके तो पेड़ू पर

मिट्टी रखिए। एक हैज़ा के रोगी को, जिसके कई दस्त आ चुके थे और ४-५ घंटों से पेशाब बन्द था, बीस बीस मिनट पर मिट्टी की पट्टी बदलवा कर मैंने अच्छा किया। पहली पट्टी देते ही पेशाब उतर गया और हालत सुधर गई। दूसरे दिन मिट्टी नहीं मिली, तब मैं कपड़े की मोटी गीली पट्टी रखवाने लगा, शाम तक हल्का बुख़ार हो आया। बुख़ार आने से समझना चाहिए कि ख़तरा गया। कुछ हालतों में बुख़ार नहीं भी आता।

हैज़ा में खाना एकदम बन्द कीजिए। प्यास लगने पर सिर्फ़ पानी या नींबू के रस के साथ पानी थोड़ी थोड़ी मात्रा में दीजिए। वैसे भी एक चम्मच पानी में एक चौथाई नींबू का रस बार-बार पिलाना अच्छा है। दस्त-कै बिलकुल बन्द हो जाने के एक दिन बाद पानी मिला कर फलों के रस दिन में दो-तीन बार दीजिए। दूसरे दिन बिना पानी मिलाया रस। इस तरह चार पांच दिन के बाद पहले बार्ली का पानी और तब हल्के भोजन पर रोगी को लाइए।

कमर-नहान के सम्बन्ध में यह ख़्याल रखना चाहिए कि अगर नहाते समय गरम पानी में दोनों पैर टखने तक डूबे रहें तो ज़्यादा अच्छा होगा। पानी काफ़ी गरम हो पर पांव न जलें। कमज़ोर रोगी के लिए यह ज़रूरी है।

प्लेग

अगर बुखार के शुरू में ही उचित चिकित्सा शुरू कर दी जाय तो प्लेग होगा ही नहीं। इसलिए प्लेग के मरीज़ का भी इलाज बुखार के मरीज़ की तरह कीजिए। अगर गिल्टी निकल आई हो तो उस पर मिट्टी की पट्टी भी दिन में तीन से पांच बार तक दीजिए। एक-दो बार पट्टी देने के बाद उस हिस्से को भाप-नहान या उस पर गरम और ठंढी सेंक भी देनी चाहिए।

लू लगना

लू लगने में सारे बदन पर गीली पट्टी (२० मिनट के लिए) बहुत काम देती है। उसी दिन दो-तीन बार सारे बदन पर गीली पट्टी के साथ-साथ अगर कमर-नहान भी दिया जाय तो रोगी दूसरे ही दिन भला-चंगा हो जायगा। मान लीजिए, एक गीली पट्टी अभी उतरी। उसके एक घंटे बाद ही दूसरी पट्टी या नहान दो। शक्ति को देखो और ज़रूरत समझो। पट्टी के लिए दो गीले कपड़े हों और ऊपर से लपेटने के लिए हल्का गरम कपड़ा एक ही हो।

अगर कुछ न हो तो खाट पर लिटा कर रोगी को अच्छी तरह खूब ठंडे पानी से देर तक नहलवाइए; तीन-चार घंटे के बाद, अगर जरूरत हो तो फिर नहलवाइए।

भोजन के लिए, जरूरत पड़ने पर, सिर्फ़ रसाहार।

खाँसी

नई खांसी ७ से १० दिन तक में जाती है। पुरानी खांसी में १ से ३ महीने लग सकते हैं।

नई खांसी में एक-दो दिन पूरा या रसाहार पर उपवास कर के दो-तीन दिनों तक सिर्फ फलाहार या चार-पांच दिनों तक फलाहार करना चाहिए और उपवास और फलाहार के दिनों में एनीमा लेना चाहिए। फल न मिले तो सिर्फ़ तरकारी या सिर्फ़ रोटी।

पुरानी खांसी में पहले दस दिनों तक दोनों समय सिर्फ़ फल, फिर तीन दिनों का पूरा या रसाहार पर उपवास, फिर एक सप्ताह तक सिर्फ़ फल, फिर एक सप्ताह तक एक समय रोटी-भाजी और दो समय फल और फिर दोनों समय रोटी-भाजी भोजन के लिए देना चाहिए। अगर जरूरत हो तो इस क्रम को महीना डेढ़ महीने के बाद दुहरा दीजिए। फलाहार और रसाहार के दिनों में एनीमा जरूरी है।

पुरानी खांसी में कमर-महान या उपस्थस्नान से अच्छी मदद मिलती है। सभी पुरानी बीमारियों में पहले दो हफ्ते तक दोनों समय कमर-नहान लेकर फिर एक समय कमर-नहान और दूसरे समय उपस्थ-स्नान लेना चाहिए। अगर दोनों न बन सकें तो किसी एक से काम निकल सकता है।

खांसी की हालत में, निमोनिया में भी, सीने के चारों तरफ़ गीली पट्टी देने से और गरम और ठंडी सेंक से बहुत लाभ होता है। दिन में दो बार पट्टी और एक बार सेंक काफ़ी है, पर अगर तीसरी या चौथी बार भी जरूरत हो तो दे सकते हैं। गीली पट्टी पर गरम कपड़ा अच्छी तरह रहे।

अगर गले में खराश हो तो गर्म पानी में जरा नमक डाल कर दिन में २-३ बार गरारा करना चाहिए। हर हालत में गर्दन में चारों तरफ़ से कपड़े की ठंडी पट्टी लपेट ऊपर से एक ऊनी कपड़ा लपेट कर घंटे भर रखना लाभदायक होता है। पट्टी इतनी गीली न हो कि पानी टपके। दिन में दो-तीन बार ऐसी पट्टी दी

जा सकती है। रात में सोने से पहले भी पट्टी लपेट देना चाहिए। किसी समय जगने पर या सबेरे खोल सकते हैं।

दमा

दमे का इलाज पुरानी खांसी की ही तरह करना चाहिए। यह कुछ ज़्यादा समय लेता है, पर जाता ज़रूर है। इसमें एनीमा से पेट की सफ़ाई, हल्का खाना, जिस से वायु न हो, गहरी सांस की क्रिया और हल्की कसरत ज़रूरी है। दमे वाले को रात में रोटी के बदले मुनक्के दिये जायँ।

चमड़े और ख़ून की बीमारी

चमड़े की बीमारियों में नमक छोड़ना ज़रूरी है, इसलिए जब तक बीमारी दूर न हो जाय फलाहार करके रहना अच्छा है। हां, अगर बिना नमक के सब्जी-भाजी खा सके, जिसमें बहुत थोड़ा घी हो और सिर्फ़ ज़ीरा, तो कुछ हर्ज नहीं। मामूली और नई बीमारियों में रोटी भी ले सकते हैं।

पुरानी खुजली और एक्ज़िमा जैसी बीमारियों में फलाहार के साथ-साथ बीच में उपवास करना ज़रूरी है। एक २५ वर्ष के पुराने एक्ज़िमा रोग को लेखक ने चार महीने के फलाहार और बीच-बीच में तीन-तीन दिन के उपवास से बिल्कुल दूर कर दिया था। रोगी के सारे शरीर में चकत्ते और ज़ख्म थे और वह सारे हिन्दुस्तान में घूम घूम कर अपना इलाज करा चुका था।

इस रोगी को फलाहार के साथ-साथ सारे शरीर पर गीली पट्टी एक हफ्ते तक रोज़ दी गई। हर रोज़ एनीमा भी दिया जाता था। इससे खाल का हाल कुछ सुधरा सा देख पड़ने लगा। फिर एक हफ़्ते के बाद उसे सुबह-शाम कमर-नहान दिया जाता था। कुछ ही दिनों मे बुख़ार उभड़ आया, जो एक हफ़्ते तक रहा। बुख़ार में उपवास कराया गया और कमर-नहान जारी रहा। बुख़ार उतरते ही चमड़े के ऊपर की तकलीफ़ पहले से कहीं ज़्यादा बढ़ गई, जिसका मतलब है कि अन्दर की छिपी ख़राबियां अच्छी तरह ऊपर प्रकट हो गईं। अब कमर-नहान के अलावा दोपहर में उसे सारे शरीर की गीली पट्टी भी दी जाने लगी। भाप-नहान से अच्छा काम हो सकता था, लेकिन रोगी दूसरे शहर में था और लेखक दूसरे में, और लेखक अपनी ग़ैरहाज़िरी (अनुपस्थिति) में भाप-नहान दिल-वाना नहीं चाहता था। पन्द्रह दिनों के बाद यह तकलीफ़ कम होने लगी। फिर तीसरे महीने के अन्त में ज़ुकाम हो गया। ज़ुकाम में रोगी को फिर उपवास कराया

गया। जुकाम अच्छा होने के बाद से ही उसकी हालत अच्छी होने लगी। यह रोगी बहुत मांस खाता था, अब नहीं खाता। शरीर बिल्कुल नया हो गया है।

एक दूसरे पुरानी खुजली के रोगी को लेखक ने सिर्फ़ रोटी पर रखा और हर रोज गंगा में नहलवाया। नहाते समय वह अपने बदन में मिट्टी भी रगड़ता था। पूछा जा सकता है कि उसे रोटी पर क्यों रखा गया। इसलिए कि फलों के लिए उसके पास पैसे न थे। बात यह है कि सिर्फ़ रोटी या और किसी एक चीज़ के पचाने में शरीर को ज्यादा ताक़त नहीं लगानी पड़ती। बची हुई ताक़त रोग को दूर करने में लग जाती है। प्रकृति तो खुद ही रोग को दूर करना चाहती है, पर शरीर की सभी शक्तियां अधिक भोजन के पचाने, विकारों से लड़ने और ऐसी ही ऐसी फ़ज़ूल बातों में लगी रहती हैं।

बहुत दिन हुए, एक कोढ़ के रोगी को लेखक ने अपना इलाज आप ही करते देखा था। उन दिनों न तो लेखक और न रोगी ही प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में कुछ जानता था। जीवन से निराश होकर यह रोगी थोड़े से चने लेकर एक पहाड़ी पर रहने चला गया। उसने सोचा था कि चनों के खत्म हो जाने के बाद उपवास रखकर प्राण दे दूंगा। दो-तीन दिन में चने ख़त्म हो गये। रोगी ने लगभग एक हफ़्ते तक उपवास किया। इससे वह मरा नहीं, पर उसे खुलकर भूख लगने लगी। पास में नीम के दरख़्त थे। भूख के मारे उसने नीम के पत्तों को चबाना शुरू किया। नीम में खून साफ़ करने की ताक़त है। एक-दो दिनों में ही उसकी जीने की लालसा लौट आई। साथ ही उसने सोचा कि चने और नीम के पत्ते ही खाकर रहूँ तो अच्छा है, उसने मकान से चने मँगवाये। इस तरह ४–५ महीने वह पहाड़ी पर रहा। वहां वह खुली हवा में रहता, झरने के साफ़ पानी में नहाता और चने खाकर अपने दिन बिताता। इस सब का असर हुआ। प्रकृति के नियम के अनुसार शरीर की शक्तियां जग गईं और रोग जड़-मूल से दूर हो गया। उस समय तो नहीं, पर इन दिनों लेखक ने उस घटना से यह सबक़ सीखा कि शरीर की शक्तियों का, बेकार चीज़ों के पचाने से बचाकर, जितना कम ह्रास किया जाय उतनी ही ये शक्तियां रोगों को दूर करने में समर्थ होती हैं।

मामूली फोड़े-फुन्सियों और ज़ख्म पर दिन में दो-तीन बार मिट्टी की पट्टी देने से ही वे एक दो दिन में जाती रहती हैं। बड़े फोड़ों में, जिनमें बुख़ार भी रहता है, उपवास या रसाहार के साथ-साथ कमर-नहान लेना और फोड़े पर मिट्टी और भाप देनी चाहिए।

उपदंश (गर्मी) और सूजाक का इलाज भी ऊपर बताये ढंग से करना चाहिये। समय लगेगा। इन दोनों बीमारियों में लंबे उपवास की जरूरत पड़ती है। पहले महीने में तीन दिनों का, दूसरे में सात दिनों का, चौथे में दस दिनों का और छठें में पन्द्रह दिनों का उपवास करना चाहिए। बीच बीच का भोजन नियमित और बिना नमक का होना चाहिए। नहान भी नियमपूर्वक लिये जायं। बीच बीच में धूप या भाप-नहान से मदद मिलती है।

कुछ लोगों की राय में ये दोनों बीमारियां जड़ से नहीं जातीं। है कुछ ऐसा ही पर प्राकृतिक चिकित्सा इन्हें निर्मूल कर देती है। उपवास इसके लिए एकमात्र उपाय है।

कोढ़

ऊपर दी हुई बातों को पढ़कर पाठक समझ सकते हैं कि कोढ़ रोग भी अच्छा किया जा सकता है। कोढ़ का इलाज चमड़े की बीमारी की ही तरह करना चाहिए। जो बहुत ही पुराना और बहुत बिगड़ा कोढ़ है वह तो नहीं जायगा, बाकी और सब चले जायंगे। समय छः महीने से तीन साल तक लग सकता है। कोढ़ के रोगियों के खून में अक्सर आतशक (गर्मी, उपदंश) का जहर रहता है, जो जरा देर से दूर होता है।

नारियल के तेल में नींबू का रस मिलाकर लगाने से खुजली दूर होती है।

गठिया

कारण और प्रकार—

गठिया के कई प्रकार हैं। किसी के पुट्ठों में, किसी के जोड़ों में और किसी के पुट्ठों और जोड़ों दोनों में दर्द और सूजन होती है या सिर्फ़ दर्द होता है। कभी कभी बुखार भी बना रहता है। किसी हिस्से में भी दर्द हो, कारण एक ही है। अनुचित आहार-बिहार से खून में खटाई (acidity) का माद्दा बहुत बढ़ जाता है। साथ ही खून गाढ़ा होकर सरेस की तरह हो जाता है, जिससे खून के दौरान (रक्त-संचार) में बाधा पड़ती है। जहां ऐसी बाधा पड़ती है वहीं दर्द और सूजन हो जाती है। कभी कभी जोड़ों में सख्ती हो जाती है। उपवास, उचित भोजन, धूप-नहान, भाप-नहान, और नहान और एनीमा-प्रयोग से खून को साफ़ कर देने पर यह रोग जाता रहता है।

इलाज——

(१) जिस गठिया के साथ-साथ बुखार रहे, जैसा कि नये गठिया में अक्सर होता है, खाना बन्द कर देना चाहिए। अगर लंबा चले तो कुछ दिनों के उपवास के बाद सन्तरा, मोसंबी, चकोतरा, मीठे नींबू या अनन्नास का रस पानी के साथ या यों ही बहुत लाभ के साथ दिया जा सकता है। ये फल गठिया के दुश्मन हैं। बुखार उतरने के बाद कुछ दिनों तक फलाहार, फिर सिर्फ़ रोटी और फल या सादी पकी हरी (पत्तीदार नहीं) भाजी। पालक और टमाटर बहुत अच्छे होते हुए भी किसी किसी गठिया के रोगी के लिए वर्जित हैं। उनमें एक प्रकार की खटाई, आक्ज़ेलिक एसिड (oxalic acid), होती है। अगर उनके इस्तेमाल से तकलीफ़ बढ़ने लगे तो इनका खाना कुछ दिनों के लिए बन्द कर देना चाहिए। अगर तकलीफ़ न बढ़े तो इनका खाना जारी रखना चाहिए।

(२) पुराने गठिया में पहले फलाहार से शुरू करके तीन दिनों का उपवास फिर फलाहार। बीच-बीच में उपवास। दूध, दलहन, मांस-मछली, अंडे, बादाम, अखरोट, मूंगफली, काजू, इत्यादि वर्जित। शरीफ़ा बहुत लाभदायक है।

(३) एनीमा का प्रयोग इलाज के शुरू से ही करना चाहिए।

(४) तकलीफ़ की जगह पर मिट्टी की पट्टी और भाप-नहान हर रोज़, या एक रोज़ यह और दूसरे रोज़ वह, देना चाहिए।

(५) हर हफ़्ते एक बार सारे शरीर का भाप-नहान या हर दूसरे-तीसरे धूप-नहान और दोनों के बाद कमर-नहान।

(६) अगर बन सके तो हर रोज़ उपस्थ-स्नान या कमर-नहान या दोनों।

(७) तकलीफ़ की जगह पर और सारे बदन में हर रोज़ तिल के तेल में नींबू का रस निचोड़ कर और उसे गरम कर उससे हल्की मालिश।

(८) दिन भर का एक उचित कार्य-क्रम बना लेना चाहिए, जैसे रोग के शुरू होते ही दो-तीन दिन के उपवास के बाद——

५-३० बजे सुबह——पेड़ू पर मिट्टी और उसके बाद एनीमा।

६ बजे सुबह—तकलीफ़ की जगह पर मिट्टी की पट्टी और भाप-नहान और उसके बाद कमर-नहान या उपस्थ-स्नान।

११ बजे सुबह—फलाहार

१२-३० बजे दिन—धूप नहान (सप्ताह में १ या दो बार) और कमर-नहान।

५ बजे शाम—रसाहार या फलाहार

६ बजे शाम—पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा या उपस्थ-स्नान

७-३० बजे रात—रसाहार या फलाहार

ऊपर का कार्यक्रम नमूने के लिए है। इसमें हेर-फेर किया जा सकता है। कुछ दिनों के बाद एक समय और कुछ और दिनों के बाद दोनों समय सिर्फ़ रोटी या रोटी भाजी दी जा सकती है।

गठिया हठी रोग है। पुराना गठिया, जिसमें जोड़ सख्त हो गये हैं, दो से चार साल तक में अच्छा हो सकता है। यदि रोग बहुत ही पुराना हो तो एक-डेढ़ महीने के फलाहार के बाद रोगी दो महीने के लिए रोटी या रोटी-भाजी खाकर फिर फलाहार और बीच-बीच में उपवास करे।

लेखक ने ५-६ साल के पुराने गठिया के एक रोगी को तीन महीने तक सिर्फ़ फलाहार पर रखकर और बीच-बीच मे उपवास कराकर अच्छा किया। जल-चिकित्सा के रूप में वह पहले कुछ दिनों तक ठंढे पानी से सर को धोकर, गर्दन से नीचे गरम पानी से नहाता था और फिर तुरन्त ही ठंडे पानी से नहा लेता था। नहाने के बाद वह शरीर को तौलिए से पोंछता न था, बल्कि तलहथी से बदन को रगड़कर पानी सुखा देता था। उसका सारा शरीर जकड़ा हुआ था। एक दूसरे रोगी को लेखक ने सिर्फ़ चने की पत्तियों के कच्चे और पकाये साग पर दो महीने तक रख कर अच्छा किया। एक बुढ़िया, जो मरना चाहती थी, सिर्फ़ शरीफ़े खाकर अच्छी हो गई। इन दोनों रोगियों ने और कुछ उपचार न किये। फलों और भाजियों में ख़ून की खटाई को दूर करने की ताक़त है, और साथ ही हल्के भोजन के कारण शरीर की शक्तियां बचकर रोग को दूर करने में लग जाती हैं।

आँखों के रोग

आंखें उठने पर तीन से पांच दिन के लिए फलाहार के साथ साथ दिन में एक बार एनीमा और दो बार आंखों पर मिट्टी की गीली पट्टी बांधना और उसके

बाद भाप देना काफ़ी है। आंखें जल्दी ही साफ़ और अच्छी हो जायँगी। आंखें उठने के लक्षण देखते ही अगर यह उपचार शुरू कर दिया जाय तो पहले ही दिन तकलीफ़ जाती रहती है। अगर आंखों में तकलीफ़ ज़्यादा हो और कुछ दिन पहले से आंखें उठी हों तो दिन में एक या दो बार कमर-नहान भी देना चाहिए। मामूली रोटी-सब्ज़ी भी खा सकते हैं, पर आंख के नये रोगों में नमक का इस्तेमाल छोड़ देना ज़्यादा अच्छा है।

प्राकृतिक चिकित्सा से आंखों का कोई भी रोग दूर हो सकता है। आंखों की रोशनी का कमज़ोर होना, दूर की चीज़ें देख सकना लेकिन पास की नहीं, पास पास की चीज़ें देख सकना लेकिन दूर की नहीं, धुंधला दिखाई देना, को मोतिया-बिन्द (बहुत पुराना नहीं) वगैरः आंख के सभी रोग प्रकृति का सहारा लेने से जाते रहते हैं। इसके लिए भोजन-सुधार के साथ साथ कमर-नहान, उपस्थ-स्नान, रीढ़ की पट्टी और आंख पर और गर्दन के पीछे के हिस्से पर गीली मिट्टी की पट्टी से ऊपर बताये नियमों के अनुसार काम लेना चाहिए। इलाज शुरू करने से पहले तीन दिन का उपवास या रसाहार और फिर बीच-बीच में एक-दो दिन का उपवास लाभदायक है। हर रोज़ के लिए कार्य-क्रम बना लेना चाहिए। पहले दो-तीन हफ़्ते तक दोनों समय कमर-नहान और एक किसी समय पेट और आंखों पर मिट्टी की पट्टी और फिर एनीमा चलना चाहिए। सोकर उठते ही और सोने से पहले आंखों पर ठंढा पानी झोंकना चाहिए। कुछ दिनों के बाद एक बार कमर-नहान और दूसरी बार उपस्थ-स्नान लेना चाहिए। यदि दोपहर में समय मिले तो उपस्थ-स्नान के बदले रीढ़ की गीली पट्टी लाभ के साथ ली जा सकती है। बीच-बीच में पन्द्रह पन्द्रह दिनों के लिए आंखों पर मिट्टी की पट्टी भी देनी चाहिए। दो-तीन महीने के बाद आंखों को कुछ ख़ास कसरत देनी चाहिए। आंखों की कमज़ोरी या पुरानी बीमारी अच्छी होने के लिए तीन से छः महीने या इससे कुछ ज़्यादा समय भी लेती है, पर जाती ज़रूर है। लेखक और दूसरे दूसरे प्राकृतिक चिकित्सकों ने बहुतों को इस योग्य बना दिया कि उन्होंने चश्मा लगाना छोड़ दिया।

आँखों की कसरत—

(१) सबेरे के निकलते हुए सूर्य की तरफ़ कुछ देर एकटक देखना।

(२) जब कभी आंखें हल्के हल्के मटमटाना। यह मटमटाना पढ़ने के समय ज़रूरी है। आंखों के बंद होने के अन्तर एक दूसरे के बराबर हों।

(३) पुतलियों से बार-बार लेकिन धीरे-धीरे ऊपर और नीचे देखना।

(४) पहले बहुत दूर की किसी चीज़ को एकटक थोड़ी देर तक देखिए और फिर बिना पलक झपाए ही बहुत पास की किसी चीज़ को--अपने हाथ में लिए पेन्सिल की नोक को--देखने लग जाइए। इसे कई बार कीजिए।

(५) आंखों की पुतलियों को पहले एक तरफ़ से और फिर दूसरी तरफ़ से गोला घुमाइए।

आंखों की और भी कसरतें हैं, पर ऊपर दी हुई काफ़ी हैं। इन कसरतों में बहुत जोर न लगाना चाहिए।

कसरतों के बाद किसी एक बड़े बर्त्तन में, जिसमें पूरा चेहरा आसानी से अमा सके, ठंडा पानी भरकर चेहरे को डुबोना और डुबाए डुबाए आंखें खोलकर पानी के अन्दर ही देखना चाहिए। इस तरह १-२ सेकेंड के लिए ही देखा जा सकता है, क्योंकि दम घुटने लगेगा। दो-तीन बार चेहरा डुबाने और पानी में देखने के बाद बन्द आंखों पर ४०-५० बार उसी पानी के छपके लगाने चाहिए। फिर एक बहुत मुलायम तौलिए से आंखों के चारों तरफ़ पोंछ पोंछकर हल्के हल्के रगड़ना चाहिए। इसके बाद 'पामिंग' करके इस क्रिया को समाप्त करना चाहिए। ऐसा करने से जल्दी लाभ होगा।

आँखों को आराम देना--

(१) आंखों को आराम देने के लिए उनको जब कभी हल्के हल्के मटमटाना (बन्द करना और खोलना) अच्छा है।

(२) बन्द आंखों को हाथों की तलहथी से इस तरह ५-७ मिनट के लिए ढकना कि तलहथी एक दूसरे पर तिर्छे रहें पर पुतलियों को न दबाएं। इसे अँगरेजी में 'पामिंग' (Palming) कहते हैं। पामिंग करते समय आराम से बैठना या लेटना चाहिए, खासकर गर्दन और सिर के हिस्सों में तनाव न रहे। उस समय कोई चिन्ता वाली बात न सोचना चाहिए। आंखें बन्द कर कल्पित काली विन्दुओं को देखिए और सोचिए कि ये विन्दुएँ बड़ी होती जा रही हैं।

आंखों की कसरत से पहले, कसरतों के बीच-बीच में और कसरत के बाद 'पामिंग' जरूर करनी चाहिए। जब पढ़ते पढ़ते आंखें थक जायें तो उस समय भी पामिंग कर लेनी चाहिए।

चश्मे का अभ्यास, जितना जल्द हो सके, छोड़ने लग जाइए। पहले तकलीफ़ मालूम होगी, पर ऐसा करना जरूरी है। चश्मे का सहारा छोड़ने से ही आंखें अपना काम ठीक ठीक करने लगेंगी। लेखक के एक ६० वर्ष के मित्र ने, जिन्होंने ४५ वर्ष चश्मा का व्यवहार किया था, अभी हाल में ही लगाना छोड़ दिया। उन्होंने अपने को इतना सबल और स्वस्थ बनाया कि चश्मे की जरूरत ही न रह गई। आंख भी तो शरीर का एक हिस्सा है। सारे शरीर को—खून और नाड़ी-बल को—ठीक कीजिए, आंखों की मांस-पेशियों को मजबूत कीजिए और उन्हें उचित आराम दीजिए—वे जरूर ही ठीक हो जायंगी।

अपच

कब्ज के इलाज के बारे में पहले बताया जा चुका है। अपच का मतलब है खाना ठीक ठीक न पचना, भूख न लगना, पाखाना न होना या पतला होना, इत्यादि इत्यादि।

इसको दूर करने के लिए पहले उपवास, फिर हलका भोजन—ऐसा और इतना भोजन कि उसे पेट आसानी से पचा सके—फिर बीच-बीच में उपवास, कमर-नहान और उपस्थ-स्नान, धूप-नहान और अपनी ताकत भर दो से छः मील तक टहलना जरूरी है। पुराने अपच में ३ महीने से २ साल तक का समय लग सकता है। शरीर नया हो जायगा।

अपच अक्सर पेट के बड़े होने और नीचे लटकने से भी बना रहता है। इसके लिए उपवास और कसरत लाभदायक हैं। कसरतों में सर्वांगासन विशेष लाभदायक है। यह आसन आगे बताया जायगा।

आँव

जब तक आंव आती रहे तब तक सिर्फ़ रसाहार और सुबह शाम पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी, एनीमा और शक्ति के अनुसार एक या दोनों समय कमर-नहान; ऐंठन ज्यादा होने पर पेड़ू और पेट पर गरम या गरम-ठंडी सेंक या कभी कभी मिट्टी की गरम पट्टी। आंव के बिलकुल निकल जाने पर पहले दो दिन पतला मठा (दिन में तीन बार), फिर हलकी बिना छिलके की पकी भाजी, और फिर साधारण भोजन पर आना चाहिए।

पुरानी आंव के जाने में समय लगता है। इस हालत में दोनों समय नियमित कमर-नहान और चावल-दही या रोटी-भाजी का सहारा लेना चाहिए। नाश्ते में रसदार फल।

नई आंव में पके बेल का गूदा या कच्चे बेल को आग में पका कर उसके गूदे के साथ दही खाने से लाभ होता है।

दर्द

पेट का दर्द--

पेड़ू पर मिट्टी की गरम पट्टी और उसके बाद सहने लायक़ काफ़ी गरम पानी का एनीमा। अगर ज़रूरत हो तो आध घंटे के बाद फिर पट्टी को दुहरा दीजिए। पुराना और बहुत दिनों तक चलने वाले दर्द में दो तीन बार पेड़ू पर मिट्टी की गरम या ठंडी पट्टी, एक बार एनीमा और एक या दो बार कमर-नहान भी लेना चाहिए। गरम और ठंडी सेंक भी आज़माइए।

जब तक दर्द रहे कुछ न खाना चाहिए। बहुत दिन तक चलने वाले दर्द में रसाहार या सूप-पान और पीछे मठा पीकर रहना अच्छा होता है। गरम या ठंडे पानी के साथ नींबू या सन्तरे का रस सभी हालतों में लाभ के साथ दिया जा सकता है।

सिर और कान के दर्द--

सिर-दर्द में पेड़ू पर (और गर्दन के पीछे के हिस्से पर) मिट्टी की पट्टी और एनीमा। सिर का दर्द अक्सर पेट की ख़राबी से ही होता है, इसलिए पेड़ू पर मिट्टी रखने के बाद एनीमा देना चाहिए। पुराने सिर-दर्द में कई दिनों तक कमर-नहान और उपस्थ-स्नान या रीढ़ पर गीली पट्टी भी ज़रूरी है।

भोजन के लिए बहुत तेज़ दर्द में सिर्फ़ रसाहार, कम तेज़ दर्द में फलाहार या शाकाहार और हल्के दर्द में रोटी-भाजी ले सकते हैं।

किसी भी दर्द में, चोट में और मोच में, दर्द के स्थान पर मिट्टी की पट्टी या गरम-और-ठंढी सेंक (यह सिर में नहीं) या दोनों कुछ अन्तर देकर तब तक जारी रखना चाहिए जब तक दर्द दूर न हो जाय। अगर गहरी चोट और तेज़ या पुराना दर्द है तो भोजन-सुधार पर भी ध्यान देना चाहिए। नींबू का रस किसी भी हालत में इस्तेमाल कर सकते हैं।

कान के दर्द में तिल्ली के तेल में नींबू का रस मिला कर और उसे ज़रा गरम कर थोड़ा थोड़ा कान में छोड़ना चाहिए। कान के ऊपर और जड़ में चारों तरफ़ मिट्टी की पट्टी भी बांध सकते हैं। कान पर भाप दी जा सकती है।

अपेन्डिसाइटिस

जहां पर छोटी आंत बड़ी आंत से मिलती है वहीं पर, पास में ही एक छोटी सी चीज़ रहती है, जिसे अंगरेज़ी में अपेन्डिक्स वर्मीफ़ोरम (appendix vermi forum) कहते हैं। उसकी जलन-सूजन और उससे उभड़ी तकलीफ़ को 'अपेन्डिसाइटिस' कहते हैं। इसमें बड़ी परेशानी होती है, पेट की दाहिनी तरफ़ भयानक दर्द उठता है। विद्वान डाक्टरों की राय में अपेन्डिक्स एक बेकार अंग है और नश्तर देकर इसे निकाल देना ही इसका सच्चा इलाज है। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सकों की राय में यह एक ज़रूरी अंग है और यह बीमारी अपने दोष से होती है। इसके शुरू होते ही पूरा उपवास करना चाहिए। बीच-बीच में सिर्फ़ गरम पानी पीना चाहिए। दर्द की जगह पर गरम सेंक या मिट्टी की गरम पट्टी, जब-जब दर्द बढ़े, देनी चाहिए। सहने लायक़ गरम पानी का हल्का एनीमा, अगर बन सके तो सुबह-शाम नहीं तो एक समय देना चाहिए। तीसरे रोज़ तक एक पूरा एनीमा दिया जा सकता है। दर्द के समय गरम पानी में कमर-नहान की तरह बैठने से भी लाभ होता है। जब दर्द शान्त हो जाय तो तीन-चार दिन रस या मठे पर रह कर तब रसदार फल खाना शुरू करना चाहिए। अन्न देर से शुरू करना चाहिए। अन्न शुरू करने पर नहान भी शुरू कर देना चाहिए।

नश्तर तभी ज़रूरी है जब कि बहुत दिनों की लापरवाही या ग़लत इलाज से अपेन्डिक्स में मवाद आ गया है। अगर शुरू-शुरू में ही ठीक इलाज हुआ तो एक हफ़्ते में तकलीफ़ बिलकुल जाती रहती है, लेकिन शरीर को ठीक करने के लिए महीने-डेढ़ महीने का संयम और नहान इत्यादि ज़रूरी हैं।

ज़ख़्म

चार बातों पर ध्यान दीजिए:—

(१) ज़ख़्म को साफ़ रखना। उसे हर रोज़ गरम पानी से, जिसमें चार-छः बूंद नींबू के रस (ज़्यादा नहीं) पड़े हों, अच्छी तरह धो दीजिए।

(२) दिन में कई बार ज़ख्म पर मिट्टी की पट्टी आध-आध घंटे के लिए ज़रूर रखिए और पट्टी हटाने के बाद ज़ख्म को ठंडे पानी से धो दीजिए। अगर ज़ख्म पुराना और गंदा है तो मिट्टी की पट्टी के बाद उस पर भाप-नहान भी दीजिए।

(३) ज़ख्म को बराबर छिपा कर न रखिए। नारियल के तेल में चार-छः बूंद नींबू का रस डाल कर ऊपर से मरहम की तरह जब-तब लगाइए। मक्खी न बैठेगी।

(४) पुराने ज़ख्मों के इलाज में भोजन-सुधार भी करना होता है।

बड़े से बड़े ज़ख्म को अगर साफ़ और ढँक कर रखा जाय, उस पर भाप दी जाय और रोगी दिन में दो बार नियमित कमर-नहान ले तो वह ज़ख्म जल्द अच्छा हो जाता है। याद रहे कि त्रुटि-पूर्ण भोजन के कारण ख़ून में ख़राबी न पैदा हो।

अगर कोई बड़ा फोड़ा निकल रहा हो तो फ़ौरन ही भोजन-सुधार, एनीमा-प्रयोग और कमर-नहान इत्यादि का सहारा लेना चाहिए। फोड़ा या तो ग़ायब हो जायगा या बहुत छोटा मुंह बन कर उस से मवाद निकल जायगा। जहां का चमड़ा सख़्त है वहां चीरा लगवाने की ज़रूरत पड़ सकती है। चीरे के बाद ज़ख्म को और ज़ख्मों की तरह अच्छा कर लेना चाहिए।

दाँतों के रोग

दांत भी शरीर के अंग हैं। सारे शरीर की ख़राबी के कारण और उसी के साथ-साथ दांतों की जड़ में ख़राबी पैदा हो जाने से दांतों के बहुत रोग होते हैं। दांतों की खराबी का एक ख़ास कारण है, मुलायम चीजों का खाना, जिससे दांतों की कसरत नहीं हो पाती और दांतों की जड़ में काफ़ी खून नहीं पहुँचता। इन रोगों में 'मसूड़ों से खून निकलना' और 'पायरिया' मशहूर हैं। विद्वान् डाक्टर तो दांतों को उखड़वा कर ही दम लेते हैं। लेकिन क्या दांतों के उखड़वा देने से शरीर के अन्दर की ख़राबी दूर हो जाती है ?

गठिया के रोगी के दांत भी अक्सर खराब रहते हैं। उनसे कहा जाता है, 'दांतों से पीर इत्यादि जहरीले पदार्थ निकलते हैं, जो पेट में जाकर खून को ख़राब करते हैं—इसलिए दांत उखड़वा दो।' ऐसा कहने वाले यह नहीं सोचते कि दांतों में ख़राबी कैसे आई। प्राकृतिक चिकित्सा से दांतों की

बीमारी और गठिया दोनों एक ही बार में खत्म हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि सारा शरीर साफ़-सुथरा हो जाता है और फिर उसमें किसी तरह की ख़राबी नहीं रह जाती।

दांतों की ख़राबी सारे शरीर की ख़राबी से होती है, पर उनके विशेष कारण यह भी हैं--ज्यादा मिठाई, खास कर चीनी खाना; गरम गरम चीजें खाना; गरम चीज खाने के बाद ठंढा पानी पी लेना; वर्फ़, आइस-क्रीम और ऐसी ही ठंढी चीज़ों का इस्तेमाल; बहुत मात्रा में पान और उसके साथ तम्बाकू खाना; दांतों को हर रोज साफ़ न करना; बाजारू दवाइयों और मंजनों से दांत धोना इत्यादि।

दांतों को अच्छी हालत में रखने के लिए शरीर के अन्दर का खून अच्छा होना चाहिए और खून में 'कैलशियम' (calcium--चूना) और 'सिलिकोन' (silicon) नाम के दो पदार्थों का होना जरूरी है। इसीलिए जो अपने दांतों को अच्छा रखना या उनकी ख़राबियों को दूर करना चाहता है उसे चाहिए कि वह इस किताब में बताए ढंग से पहले फलाहार से अपना शरीर शुद्ध करे और तब अपने भोजन को ठीक करे। याद रखना चाहिए कि 'कैलशियम' गाजर, सभी तरह के साग, हरी मटर, मूली, नींबू, चुक़न्दर, सन्तरा, अंगूर इत्यादि में और 'सिलिकोन' बिना छने आटे की रोटी, खीरा, ककड़ी, बे-छटे चावलों के भात (जिससे मांड़ नहीं निकाला गया है), अंजीर, किशमिश और खजूर इत्यादि में पाया जाता है। अगर कोई पहले तीन दिन के उपवास या रसाहार और एनीमा-प्रयोग के बाद १५ दिन सिर्फ़ फलाहार करे और फिर १ महीना तक एक वक्त रोटी-साग और दो वक्त सिर्फ़ फल और दूध लेकर रहे तो वह दांतों की बहुत सी बीमारियों को भगा सकता है। बहुत दिनों के पुराने पायरिया में कुछ महीने इसी तरह रहना पड़ेगा, लेकिन इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वह अपने दांतों को फिर से अच्छा कर लेगा।

दुखते हुए मसूड़ों और दांतों की हालत में मुंह और दांतों को हर रोज कुछ दिनों तक भाप-नहान देना चाहिए। मसूड़ों की उँगलियों से हल्की हल्की मालिश करनी चाहिए। साथ ही साथ अगर कमर-नहान और उपस्थ-स्नान लिए जायँ तो दांतों के कठिन रोग भी जल्द ही दूर होंगे।

दांतों को साफ़ करने के लिए बबूल, नीम और आम इत्यादि की दातुन काम में लाना चाहिए। कुछ लोग दांतों की जड़ के कालापन को दूर करने

के लिए उसे रेत रेत कर साफ़ कराते हैं। यह ठीक नहीं हैं, क्योंकि इससे दांत कमजोर पड़ जाते हैं।

दांत तभी उखड़वाए जांय जब कि उनकी जड़ बिलकुल ढीली पड़ गई हो और दांतों पर कालापन और पीलापन बुरी तरह छा गए हों।

टॉन्सिलाइटिस

गले की कौड़ियों की सूजन के लिए अंगरेजी में इतना बड़ा नाम है। इस बीमारी में खांसी भी रहती है। डाक्टर इसमें भी नश्तर का ही सहारा लेते हैं और उस हिस्से को काट कर इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि रोग जाता रहा। वह बेचारा हिस्सा तो सिर्फ़ यह बताता था कि शरीर में विकार है, जिसका असर (प्रभाव) उस पर पड़ रहा है। भला उसके काट देने से शरीर का विकार क्योंकर दूर हो जायगा? देखा गया है कि जिनकी कौड़ियां इस तरह काट दी जाती हैं उन्हें ज़ुकाम या कोई न कोई दूसरा रोग बना रहता है। इसलिए इस बीमारी को भी उपवास, फलाहार और भोजन-सुधार और दूसरे प्राकृतिक ढंगों के प्रयोग से दूर करना चाहिए। और उपायों के साथ-साथ कुछ दिनों तक हर रोज एनीमा का प्रयोग जरूरी है। कभी-कभी गर्दन और गले के भाप-नहान से जल्द लाभ होता है। कौड़ियां तभी निकलवाई जायँ जब कि उसमें पीव पड़ गई हो, लेकिन ऐसी हालत में नश्तर के बाद भोजन-सुधार इत्यादि से शरीर को साफ़-सुथरा कर लेना चाहिए। इस बीमारी के दूर होने में कुछ समय लगता है, घबराना न चाहिए।

बवासीर

भोजन-प्रणाली (वह नाली जो एक सीध में लेकिन टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई मुंह से लेकर पाखाने के रास्ते तक है) के अखीर के हिस्से में जकड़न होने और रक्त-संचार में बाधा पड़ने से यह बीमारी होती है। पुराने कब्ज और पाखाने के समय जोर लगाने से यह तकलीफ़ अक्सर हो जाती है। यह दुहराने की जरूरत नहीं कि कब्ज की जड़ में कई खराबियां रहती हैं। बवासीर की दो किस्में हैं—खूनी और बादी। बवासीर चाहे खूनी हो या बादी, इलाज एक ही है। इसके इलाज में इन बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) तकलीफ़ शुरू होते ही उपवास और तब फलाहार पर रहना चाहिए।

(२) पुराने रोग में फलाहार की अवधि के बाद बहुत दिनों तक दिन में एक वक्त रोटी और हरी पकी भाजी खाना और दो ब र फलाहार करना चाहिए। दाल खाना तब तक छोड़ देना चाहिए जब तक कि बीमारी बिल्कुल अच्छी न हो जाय। कोई भी क़ब्ज़ करनेवाली चीज़ न खानी चाहिए।

(३) शुरू में लगातार एनीमा-प्रयोग करना चाहिए और जभी क़ब्ज़ हो एनीमा का सहारा लेना चाहिए। ख़ूनी बवासीर में एनीमा का पानी ऐसा हो कि वह न ठंडा ही हो न गरम। गरम पानी से ख़ून आयेगा। ठंढे पानी में बहुत थोड़ा गरम पानी मिला कर पानी तैयार कर लेना चाहिए। गर्मी में ठंडे पानी से काम लेना चाहिए।

(४) पेड़ू-नहान से बहुत लाभ होता है। सुहब-शाम पेड़ू-नहान लेना चाहिए।

(५) तकलीफ़ की जगह पर मिट्टी की पट्टी या भाप-नहान या कभी-कभी दोनों (पट्टी के बाद भाप-नहान) पहले हर रोज़ और आगे चलकर हर तीसरे-चौथे रोज़ लेना चाहिए।

(६) सोने के समय अगर पाख़ाने के रास्ते से आध पाव बहुत ठंडा पानी (गर्मी में बर्फ़ मिलाई जा सकती है) आंत में चढ़ा दिया जाय और वहीं रोक लिया जाय तो बहुत फायदा होगा। इसके लिए 'ग्लिसरीन सिरिंज' (glycerine syringe) काम में लाना चाहिए। वह न हो तो एनीमा के यंत्र से भी काम लिया जा सकता है। यह क्रिया ख़ूनी बवासीर के लिए जरूरी है और चिकित्सा के शुरू में लगातार दस-पन्द्रह दिनों तक इसे जारी रखना चाहिए। बाद में भी ठंढा पानी चढ़ाया जा सकता है।

यह बीमारी जरा देर से जाती है। इसमें नश्तर से सच्चा लाभ नहीं होता क्योंकि अन्दर ख़राबी बने रहने से नश्तर के बाद फिर हो जाती है। लेखक ने एक ऐसे रोगी को अच्छा किया है, जिसने ५ बार नश्तर लिया था पर अच्छा न हो सका था।

यक्ष्मा

शुरू शुरू की (दूसरे दर्जे के शुरू तक) यक्ष्मा (तपेदिक, थाइसिस) प्राकृतिक चिकित्सा से निश्चय ही जाती है, लेकिन अगर रोगी की जीवन-शक्ति का ह्रास हो गया है या उसका फेफड़ा या शरीर का कोई जरूरी अंग इतना ख़राब हो गया है कि वह सुधर नहीं सकता तो ऐसा रोगी अच्छा नहीं हो सकता।

यक्ष्मा के रोगी की चिकित्सा में इन बातों पर पूरा ध्यान दीजिए :—

(१) वह बराबर ही ऐसी खुली जगह में रहे, जहां उसे सोते-जागते साफ़ हवा मिले। इसी से यक्ष्मा के रोगियों को नदी में नाव पर या ऊँचे पहाड़ी इलाके में रहना बताया जाता है। अगर यह न हो सके तो ऐसा प्रबन्ध (इन्तज़ाम) जरूर करना चाहिए कि रोगी अच्छी, साफ़ और खुली जगह में रहे। जाड़ों में भी रात के समय उसे रज़ाई या कम्बल से अच्छी तरह ढक कर ऐसी जगह में रखना चाहिए, जहां हवा बेरोक आती-जाती हो।

(२) दिन में उसके सारे नंगे शरीर में जितनी ज्यादा देर तक हो सके साफ़ हवा और रोशनी (धूप नहीं) लगे। इस अभ्यास को पहले ५ मिनट से शुरू करके समय को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

ताक़त होने पर धूप-नहान शुरू करना चाहिए।

हवा, रोशनी और धूप में ही यक्ष्मा रोग को भगाने की सच्ची शक्ति है।

(३) रोगी को काफ़ी आराम मिलना चाहिए।

(४) कमज़ोर रोगी से उपवास न कराना चाहिए। शक्ति के अनुसार एक बार गाय या बकरी का कच्चा दूध, दूसरी बार रोटी और एक भाजी, तीसरी बार एक फल और दूध और चौथी बार सब्ज़ी का सूप और थोड़ा दूध हर रोज़ देना चाहिए। यह ख़याल रहे कि मात्रा इतनी ही हो जो पच जाय। अच्छा हो अगर रोगी तीन बार भोजन करे—एक बार, किशमिश और दूध; दूसरी बार, रोटी और भाजी; तीसरी बार, सेव की तरह का फल या फिर किशमिश और दूध; लेकिन अगर कमज़ोरी ज़्यादा है तो थोड़ा थोड़ा भोजन कई बार देना चाहिए।

रोग शुरू होते ही एक दिन उपवास, फिर २–३ दिनों तक रसाहार करके अगर १५ दिनों तक दिन में ४–५ बार दूध पीकर ही रोगी रहे और तब दो बार फल और दूध और एक बार रोटी-भाजी खाने लगे तो बहुत लाभ हो। दूध की मात्रा एक बार ३ छटांक से शुरू करके ५–६ छटांक तक हो सकती है। यक्ष्मा में रोगी का वजन जल्दी जल्दी घटता है, इसलिए बाद में उपवास वर्जित है। आगे चलकर भोजन में अच्छे गाय के दूध का थोड़ा मक्खन (रोटी के साथ) मिलाना चाहिए। इस रोग में दूध, मक्खन, मठा से बहुत लाभ होता है। पर मात्रा इतनी ही रहे कि आसानी से पच जाय।

इसी तरह महीने, सवा महीने, डेढ़ महीने के बाद २ दिन का रसाहार करके अगर १५ दिन सिर्फ़ दूध पर रोगी रहे और फिर धीरे-धीरे कुछ फल और एक बार रोटी-भाजी के अलावा २–३ बार दूध पीकर रहे तो वह निश्चय अच्छा हो जायगा।

नमक छोड़ देना बहुत लाभदायक होता है। इस रोग में सबसे अच्छा बकरी का दूध होता है।

इस रोग के आरंभ में हर रोज तीसरे पहर या शाम को थोड़ा बुखार हो जाता है और तबियत गिरी-गिरी रहती है। उसी समय से अचूक चिकित्सा के ढंगों से काम लेना चाहिए—१ दिन उपवास, २–३ दिन रसाहार, फिर १५ दिन सिर्फ़ दुग्धाहार, इसके बाद १५ दिन १ या २ बार फल-दूध, १ बार सिर्फ़ दूध और १ बार (दिन में) रोटी-भाजी; सवा महीने के बाद फिर इस क्रम को दुहराना चाहिए। इस तरह करते रहने से नया रोग ३–४ महीने में जरूर चला जाता है।

(५) हर रोज एक बार, नहीं तो एक दिन बीच देकर, एनीमा।

(६) बीच-बीच में जब कभी छोटे चमचे के आधे जितने शहद में लहसन के दो-चार बूंद डालकर रोगी को देना चाहिए।

(७) भोजन, धूप-नहान और कमर-नहान इत्यादि का एक अच्छा कार्यक्रम हर रोज के लिए बना लेना चाहिए, जैसे

६ बजे सुबह—मेहन-नहान। फिर गरम कपड़ा ओढ़कर लेटना या अगर शक्ति हो तो शक्ति भर टहलना।

७–३० बजे सुबह—एक पाव दूध और एक संतरे का नाश्ता।

८ बजे से १०–३० बजे तक—हवा और रोशनी में लेटना।

१०–३० बजे सुबह—पूरा नहान या गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ लेना।

११ बजे सुबह—फल–दूध या रोटी-भाजी खाना। कुछ दिनों के बाद थोड़ा गाय का मक्खन लिया जा सकता है।

१ बजे दोपहर—पानी पीना।

२ से ३ बजे तीसरे पहर—हवा और रोशनी में लेटना। अगर सर्दी मालूम हो तो एक पतली चादर ऊपर से डाल सकते हैं।

३ बजे--पेड़ू पर मिट्टी।

४-३० बजे कोई मीठा फल और दूध या ऐसा मठा, जो खट्टा न हो।

६-३० या ७ बजे शाम--कमर-नहान और उसके बाद शक्ति-भर टहलना या गरम कपड़ा ओढ़कर लेटना।

८ बजे रात--मुनक्के या सेव और दूध या सिर्फ़ दूध।

रोगी की अवस्था के अनुसार ऊपर का नमूना देख कर एक कार्यक्रम बना लेना चाहिए। यक्ष्मा के शुरू में बहुत से रोगी इस अवस्था में रहते हैं कि वे टहल सकें। उनके लिए शक्ति भर टहलना और धीरे-धीरे टहलने की मात्रा को बढ़ाना बहुत हितकर होगा। रोगी को गर्मी से बचाना चाहिए। गर्मी में रोगी कमजोर हो जाते हैं। इसीलिये पहाड़ों पर ले जाना अच्छा होता है, पर दूसरी जगहों में भी गर्मी से बचने का उपाय हो सकता है।

कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे अनेक रोगी, जिनकी हालत बिल्कुल ख़राब नहीं हुई थी, प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे हो गये हैं। समय जरूर लगता है, इसलिए धैर्य-पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए।

जिन रोगियों के कफ़ में मवाद या पतले दस्त आने लगते हैं उनका रोग कठिन समझना चाहिए। ऐसी बहुत हालतों में कोई चिकित्सा काम नहीं करती।

रक्त-चाप का बढ़ना

इसे अंगरेज़ी में हाई-ब्लड-प्रेशर (high blood-pressure) कहते है। यह अमीरों की बीमारी है और ज़्यादातर उन्हीं को होती है, जो चाय, कहवा, शराब, कबाब, अंडे, तम्बाकू, सिगरेट आदि बहुत मात्रा में इस्तेमाल करते हैं और सुस्ती-काहिली की जिन्दगी बिताते हैं। ख़ून ले जाने वाली नली में विकारों को इकट्ठा हो जाने से नली सकरी पड़ जाती है और ख़ून के दौरान में रुकावट होती है। इसीलिए दिल को ज़्यादा काम करना पड़ता है, जिससे खून का दबाव बढ़ जाता है--सिर में चक्कर, दिल में घबराहट और कई तरह की परेशानियां होती हैं। फ़ालिज भी हो सकता है।

इसके लिए पहले तीन दिन का उपवास, फिर ३-४ दिन या ज़्यादा दिनों के लिए किसी-किसी हालत में एक सप्ताह उपवास और १५-२० दिन रसाहार की जरूरत पड़ती है। रसाहार, फिर कुछ दिनों (लगभग तीन हफ्ते) के

लिए फलाहार, तब नियमित भोजन (दो बार फल और एक बार रोटी-भाजी) और फिर डेढ़-दो महीने के बाद फिर उपवास और उसके बाद नियमित भोजन करना चाहिए। कुछ दिनों के बाद कमर-नहान और उपस्थ-स्नान (या रीढ़ की गीली पट्टी) दोनों ही साथ शुरू किये जा सकते हैं। एनीमा का समय ठीक करके शुरू से ही एनीमा कुछ दिनों तक रोज़ लेना चाहिए। तकलीफ़ कम होने के बाद प्राकृतिक भोजन पर ही रहना चाहिए। इसमें धूप-नहान या भाप्-नहान वर्जित है। सिर का चक्कर, परेशानी, नींद न आना इत्यादि लक्षण पहले उपवास और फलाहार और फिर नहानों या रीढ़ की गीली पट्टी से जड़ से चले जाते हैं। इसमें रोगी को आराम करना चाहिए और शान्त रहना चाहिए। धीरे-धीरे टहलने का अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

घटा हुआ रक्त-चाप

जिस तरह रक्त-चाप के बढ़ने की बीमारी होती है उसी तरह रक्त-चाप के घटने या कमज़ोर पड़ने की भी बीमारी होती है। इस बीमारी में सिर खाली खाली मालूम होता है और सिर के हल्केपन और खाली रहने की अवस्था के कारण कमज़ोरी बनी रहती है। चलते समय पैर लड़खड़ाते से मालूम होते हैं, रोगी गिर भी सकता है। बढ़े रक्त-चाप से सिर भरा-भरा रहता है और घटे रक्त-चाप में सिर खाली-खाली सा मालूम होता है। इस अवस्था को दूर करने के लिए पहले एक दिन उपवास, दो दिन रसाहार, तब पांच-सात दिन सिर्फ़ फलाहार (दिन में तीन बार, एक समय एक तरह का फल), दोनों समय एनीमा, फिर तीन हफ़्ते तक फलाहार और हर बार फल के साथ थोड़ा-थोड़ा दूध, बीच-बीच में छोटे चम्मच भर शहद (दिन में दो बार) और टहलने का क्रम बनाना चाहिए। तीन हफ़्ते के बाद दो बार फल-दूध और एक बार रोटी भाजी और सुबह-शाम कमर-नहान के बाद टहलने से बहुत लाभ होगा। काफ़ी दिन तक चिकित्सा चलनी चाहिए।

दिमाग़ की ख़राबी

सभी दिमाग़ की ख़राबियों के लिए और मृगी इत्यादि के लिए भी वही इलाज करना चाहिए जो रक्त-चाप के बढ़ने के संबंध में बताया गया है। उपस्थ-नहान शुरू से लेना चाहिए।

फ़ालिज, लक़वा

शुरू में तीन से पांच दिन तक रोगी को उपवास और तब रसाहार पर रखकर या सात दिनों तक लगातार रस पर रखकर दिन में दो या एक बार एनीमा का प्रयोग करना चाहिए। फिर फलाहार और बीच-बीच में एक-दो दिन के लिए रसाहार या उपवास। चार-पांच दिन सिर्फ़ फलों पर रखकर उसके बाद हर बार फल के साथ तीन-तीन छटांक दूध देना चाहिए। फिर एक बार रोटी-भाजी और दो बार फल-दूध। और सभी इलाज ऊपर दिए रक्त-चाप के इलाज की तरह होंगे। इसमें बहुत दिनों तक जम के इलाज करना चाहिए। मांस का शोरवा, अंडा इत्यादि बिल्कुल वर्जित है।

मैं एक ऐसे सज्जन को जानता हूं, जिन्हें लगभग ६० की उम्र में बुरी तरह फ़ालिज का शिकार होना पड़ा। तब से उन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया। सिर्फ़ फलाहार से ही वे स्वस्थ हो गये। दूसरा कोई भी इलाज नहीं किया।

बात यह है कि ज़्यादातर बीमारियां खाने-पीने की बदपरहेज़ी और इसी तरह क़ुदरत के दूसरे क़ानूनों को तोड़ने से होती हैं। जैसे ही आदमी अपने को सम्हालता है वैसे ही शरीर के अन्दर की प्राकृतिक शक्तियां ख़राबी को निकालने और शरीर की मरम्मत करने में लग जाती हैं। इस बात को अच्छी तरह समझना चाहिए--शरीर के अन्दर ही वह ताक़त है, जिससे अपने आपको वह ठीक कर ले सकता है। उसके सामने की अड़चनों को दूर कर देना चाहिए।

लक़वा, फ़ालिज कई तरह के होते हैं। एक तो वह, जो रक्त-चाप के बढ़ने से होता है; दूसरा वह, जो घटे रक्त-चाप की हालत में होता है। बढ़े रक्त-चाप में जब इस रोग का दौरा होता है तो आदमी एक-ब-एक गिर जाता है और उसका कोई अंग या एक तरफ़ का सारा शरीर निर्जीव सा हो जाता है। घटे रक्त-चाप वाले रोग में एक-ब-एक दौरा नहीं होता, बल्कि धीरे-धीरे कमज़ोरी बढ़ती है और एक-एक करके अंग सुन्न होने लगते हैं। बढ़े रक्त-चाप वाले रोग में शुरू-शुरू में ही उपवास और रसाहार ज़रूरी है, घटे रक्त-चाप वाले में पहले फलाहार (७ से १० दिनों तक), फिर फल और दूध (१५ से २० दिनों तक), फिर नियामत भोजन (१५ दिनों तक) और तब इसके बाद रसाहार (३ से ५ दिनों तक) करना चाहिए। रसाहार के बाद फिर फलाहार और नियमित भोजन पर आना चाहिए। इस

अवस्था में धीरे-धीरे टहलना और फिर उसकी मात्रा और तेजी बढ़ाकर और टहलना बहुत लाभदायक होता है। मालिश दोनों ही हालत में लाभदायक है।

वीर्य-दोष

(१) शरीर में ताक़त हो तो एक से तीन दिन का उपवास या रसाहार और दिन में दो बार एनीमा-प्रयोग।

(२) पन्द्रह दिन के लिए फलाहार और दिन में एक या दो बार एनीमा का प्रयोग।

(३) फिर पन्द्रह दिन के लिए फलों के साथ थोड़ा-थोड़ा कच्चा दूध या मठा लेना। जरूरत होने पर एनीमा-प्रयोग।

(४) फिर एक समय रोटी और एक-दो भाजी और दो समय फल और दूध। कुछ दिनों के बाद दोनों समय रोटी-भाजी और एक समय फल-दूध (सुबह में)।

(५) फल-दूध के भोजन के समय से ही एक महीने के लिए दोनों समय कमर-नहान और फिर एक महीना एक बार कमर-नहान और दूसरी बार उपस्थ-स्नान। कुछ दिनों के बाद दोनों समय उपस्थ-स्नान। अगर उपस्थ-स्नान न बन सके तो सुबह में कमर-नहान और तीसरे पहर रीढ़ की गीली पट्टी लेनी चाहिए।

(६) हफ़्ते में एक बार धूप-नहान और उसके बाद कमर-नहान।

(७) ताक़त भर टहलना या कसरत। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाय।

समय छः महीने से लेकर दो-ढाई वर्ष तक लग सकता है।

इस रोग में अक्सर लोग हतोत्साह रहते हैं। कुछ लोग और पुस्तकें भी इस रोग की भयानकता का वर्णन करके रोगी को पस्त-हिम्मत बनाये रहते हैं। यह ठीक नहीं। वीर्य-दोष खराब, बहुत ख़राब, जरूर है, लेकिन हतोत्साह होने का भी कोई कारण नहीं है। ब्रह्मचर्य के पालन के लिए पेट का बिलकुल साफ़ रहना बहुत जरूरी है, नहीं तो शरीर के अन्दर ही उत्तेजना होती है, जिससे ब्रह्मचर्य-भंग के कई उपाय सूझते हैं। पेट साफ़ रखना, सत्संग, खुले स्थान में रहना और काफ़ी कसरत करना जरूरी है।

गंजापन, चंदलापन

सिर के बालों के गिर जाने को गंजापन कहते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा से यह ऐब भी दूर हो जाता है। अमेरिका के प्रोफ़ेसर आर्नोल्ड एहरेट के सिर के बाल बिल्कुल गिर गये थे। दो वर्ष के सिर्फ़ फलाहार और बीच-बीच के उपवास से उनके बाल पहले की तरह उग गये, साथ ही शरीर पूरे तौर से स्वस्थ हो गया। नीचे लिखी बातों पर ध्यान दीजिए :—

(१) नहानों से, ख़ासकर कमर-नहान से, बहुत मदद मिलती है।

(२) सिर को, जब कभी फुर्सत मिले तो, उँगलियों की नोक से धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए। यह रोग के शुरू में जरूरी है। नहाते समय ऐसा करने से बहुत लाभ होता है।

(३) नींबू को काटकर उसके आधे टुकड़े से नहाने के पहले सिर को मलना चाहिए।

(४) रात में सोते समय नारियल के तेल में नींबू का थोड़ा रस मिलाकर उससे सिर को हल्की-हल्की, लेकिन कुछ देर तक, मालिश करनी या करानी चाहिए।

(५) भोजन-सुधार इत्यादि से सारे शरीर की तनदुरुस्ती को बढ़ाइए, सिर के बाल उग आयेंगे।

(६) सर्वांगासन के अभ्यास से बहुत फ़ायदा होता है। यह और कसरतों के साथ आगे बताया जायगा।

इसी तरह बालों का कुसमय ही सफ़ेद होना भी रोका जा सकता है। अगर बाल की जड़ें बिल्कुल नष्ट हो गई हैं तो चंदलापन नहीं जा सकता। जिनका सिर बिलकुल सपाट हो गया है उनके लिए आशा नहीं है।

मुटापा, दुबलापन

दोनों असल में एक ही रोग के दो रूप हैं। शक्ति भर उपवास, फिर १५ दिन का फलाहार, बीच-बीच में उपवास, नियमित भोजन, कमर-नहान और उपस्थ-स्नान, कसरत, इत्यादि उपचारों से काम लीजिये।

दुबला होने के लिए दूध, घी, मक्खन कुछ दिनों तक बिल्कुल छोड़ना चाहिए। आगे चलकर दूध के बदले मठे का व्यवहार करना चाहिए।

अगर उसमें नींबू निचोड़ लिया जाय तो और लाभ हो। दिन में एक बार एक गिलास गरम पानी में एक नींबू निचोड़कर पी लिया जाय तो और अच्छा हो।

मोटे होने के लिए पहले २-३ दिन उपवास करके धीरे-धीरे दूध की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

अगर शरीर की अन्दरूनी सफ़ाई करने के बाद समुचित भोजन किया जाय तो वज़न बढ़ेगा और शरीर मांसल होगा। कुछ दिनों के नियमित भोजन के बाद रोटी के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में गाय का मक्खन या घी लेना चाहिए। पिनखजूर या अंजीर के साथ मक्खन लेना भी सहायक होता है। मात्रा पर ज़रूर ध्यान देना चाहिए। किसी तरह भी अपच न हो।

दुबला और मोटा होने के लिए, दोनों ही बातों के लिए, कसरत ज़रूरी है। एक ही तरह की कसरतों से दोनों काम बनते हैं, लेकिन दुबला होने के लिए उसी कसरत को जल्दी-जल्दी और तेजी से दुहराना चाहिए और मोटा होने के लिए धीरे-धीरे। हर हालत में कसरत की मात्रा पर ध्यान देना चाहिए। मोटे लोगों के लिए पहले टहलना शुरू करना ही ठीक होगा। मुटाई कम करने में यह देखना चाहिए कि वज़न बहुत जल्दी-जल्दी न घटे, नहीं तो दिल की कमज़ोरी बढ़ेगी।

दिल की धड़कन

यह बीमारी ज़्यादातर दिल की ख़राबी या कमज़ोरी से नहीं बल्कि पेट की ख़राबी से होती है। पेट की वायु का असर दिल पर पड़ता है। अगर दिल की कमज़ोरी भी हो तो भी इलाज वही है। पहले फलाहार से शुरू कीजिए। उपवास बहुत लाभदायक है, लेकिन कमज़ोर दिलवालों को उपवास से घबराहट होती है। इसलिए कुछ दिन के फलाहार, पेड़ू-नहान, मिट्टी की पट्टी और एनीमा-प्रयोग के बाद एक-दो दिन रसाहार पर रहना ठीक होता है। इस तरह पंद्रह-बीस दिन फलों पर रहकर फल और मठा या दूध पर रहना चाहिए। फिर तनदुरुस्ती के दिनों के भोजन और विविध नहान। दिल की बीमारियों में धूप या भाप-नहान वर्जित है।

नाड़ी-संस्थान की दुर्बलता

इसको अँगरेज़ी में न्यूरसथीनिया (neurasthenia) या नर्वस ब्रेक डाउन (nervous breakdown) कहते हैं। इसमें सारे

शरीर में बहुत सुस्ती, दिमाग़ में सुस्ती, घबराहट, चिड़चिड़ापन, नींद का न आना या कम आना इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। पेट की ख़राबी, काफ़ी आराम न करना, हल-चल की ज़िन्दगी, ब्रह्मचर्य के अभाव इत्यादि से ऐसी दशा होती है। इसका इलाज वैसा ही करना चाहिए जैसा कि रक्त-चाप के बढ़ने पर लेकिन इसमें काफ़ी दिनों तक शारीरिक और मानसिक आराम बहुत जरूरी है। रोगी के संबंधियों को चाहिए कि वे उसे आराम दें और किसी भी तरह चिढ़ने-कुढ़ने का मौक़ा न दें। इस रोग वाले के लिए जरूरी है कि वह प्रसन्न-चित्त और उत्साह-युक्त रहे। उसे स्वयं और घर वालों को भी इसके लिए कोशिश करनी चाहिए।

कोष-वृद्धि

कोष-वृद्धि या आब-नज़ूल एक ऐसा रोग है, जो कमज़ोरी के कारण होता है और शरीर को काहिल बनाये रहता है। यह रोग भी, अगर कई साल का पुराना न हुआ हो तो, प्राकृतिक उपचारों से जाता है। मैंने देखा है कि अक्सर उपवास और फलाहार के दिनों में ही मेरे मरीज़ों की कोष-वृद्धि में बहुत कुछ कमी हो गई है। इसलिए इस रोग की चिकित्सा पहले तीन दिनों के उपवास, १० दिनों के फलाहार और फिर फल और दूध के भोजन और साथ ही साथ एनीमा-प्रयोग से शुरू करना चाहिए। फल और दूध खाने के दिनों से कमर-नहान इत्यादि और हर हफ़्ते भाप-नहान लेना भी शुरू करना चाहिए।

बच्चों के रोग

बच्चों के रोगों के प्रायः वही इलाज हैं जो बड़ों के लिए हैं। छोटे बच्चों के दूध पिलाने का समय बँधा होना चाहिए। डेढ़ साल से पहले उन्हें अन्न न देना चाहिए।

इस विषय पर 'बच्चों का पालन-पोषण' नामक खंड में, जो आगे है, सभी बातें विस्तार-पूर्वक बताई गई हैं।

स्त्री-रोग

इस संबंध की बातें एक अलग खंड में आगे बताई गई हैं।

* * * *

ऐसे बहुत से छोटे-मोटे रोग बच रहे हैं, जिनका इलाज यहां नहीं बताया गया है, लेकिन अगर पाठक ने पहले के पृष्ठों को अच्छी तरह पढ़ा है तो वे जरूर समझ सकेंगे कि किस रोग का इलाज किस तरह होना चाहिए। रोगी की शारीरिक अवस्था को अच्छी तरह समझ कर इस किताब में दिये उपायों को नियम के साथ लगाना चाहिए।

यह संभव नहीं कि सब तरह के रोगों का उपचार बताया जा सके। कभी-कभी बहुत से लक्षण एक ही साथ होते हैं। ऐसी हालत में चिकित्सक को समझदारी से काम करना होता है। एक बार मुझे एक सात साल का रोगी बच्चा मिला। उसे गर्दनतोड़ बुख़ार (meningitis) था। लक्षणों में बेहोशी, बोली का बंद हो जाना, निमोनिया, पतले दस्तों का आना थे। पहले उसे दिन में २ बार पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी दी गई और १ बार सारे शरीर की गीली पट्टी दी गई। तीन-चार दिन में उसके सभी लक्षणों में कमी हुई। फिर एनीमा दिया जाने लगा। दो-तीन दिनों के बाद एनीमा के यंत्र के सहारे उपस्थ-स्नान दिया जाने लगा। इस तरह धीरे-धीरे सुविधा के अनुसार कई तरह के उपचार काम में लाये गये, बच्चा तीन हफ़्ते में भला-चंगा हो गया।

चिकित्सा के वही नियम हैं। वे बताये जा चुके हैं। समझदारी से काम लेना चाहिए।
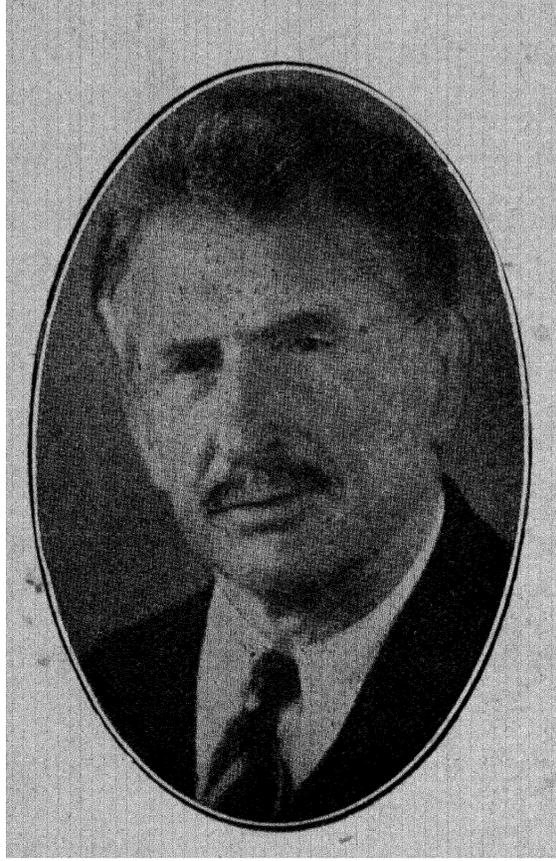
बर्नर मेकफ़ेडन

न्यूयार्क (अमरीका)-निवासी। शरीरिक योग्यता के सिद्धान्तो के उत्साही प्रवर्त्तक और संसार-प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक

पुराने रोगों का इलाज

इसके पहले जो बीमारियों के इलाज बताये गये हैं उनमें जीर्ण (पुराने) रोगों के इलाज भी हैं। लेकिन ऐसे रोगों पर ख़ास रोशनी डालने के लिए यह अध्याय लिखा जा रहा है।

पुराना रोग किसे कहते हैं——

उम्मीद है कि पाठक अब तक यह समझने लगे हैं कि पुराना या जीर्ण रोग (chronic disease) किसे कहते हैं, लेकिन उसके लक्षण फिर भी यहां दुहराये जाते हैं। जिस रोग में बहुत तेज तकलीफ़ नहीं रहती, जो बहुत दिनों तक, अक्सर मरने तक, चलता है और जिसके कारण आदमी न तो जल्दी मरता ही है और न जीते रहने का ही आनन्द पाता है, उसे पुराना या जीर्ण रोग कहते हैं। जब शरीर में काफ़ी मात्रा में जीवन-शक्ति रहती है तब तो शरीर अपने अन्दर के विकारों को नये या तीव्र रोग (acute disease) के रूप में बाहर निकाल देता है। नये रोग कुछ दिन रह कर चले जाते हैं, और अगर उनकी उचित चिकित्सा हुई तो, वे शरीर को पहले से ज्यादा अच्छी हालत में छोड़ जाते हैं। लेकिन अगर नये रोग अनुचित दवा और भोजन या और ग़लत तरीकों से बार-बार शरीर के अन्दर ही दबा दिये जाते हैं, और साथ ही जब शरीर में काफ़ी जीवन-शक्ति नहीं रहती, तो पुराने रोग खड़े हो जाते हैं। कोई भी रोग पुराना हो सकता है, पर मशहूर पुराने रोगों में दमा, बवासीर, पुराना गठिया, रक्त-चाप का बढ़ना या घटना, बहुमूत्र, दिल और गुर्दे की बीमारी, एक्जिमा, फेफड़े के रोग इत्यादि की गिनती है। इनमें से बहुतों के इलाज का तरीक़ा पिछले अध्याय में बताया गया है। जिन रोगों के नाम पिछले अध्याय में नहीं हैं उनका इलाज भी और रोगों की ही तरह किया जाता है।

क्या पुराने रोग भी अच्छे हो सकते हैं——

जरूर। जब तक शरीर के अन्दर इतनी जीवन-शक्ति है जितनी उचित ढंगों से जगाई जाने पर रोग के पुरानेपन को नयापन में बदल दे तब तक कोई भी रोग दूर किया जा सकता है। विद्वान् डाक्टर अक्सर इन बीमारियों

को असाध्य (ला-इलाज) कहकर छोड़ देते हैं, पर प्राकृतिक-चिकित्सा वाले इनको निर्मूल कर शरीर को फिर से नया बना देते हैं। शर्त यही है कि शरीर में जीवन-शक्ति बच रही हो, जिसे जगाया और पुष्ट किया जा सके। बहुतों के अन्दर, जिन्हें असाध्य रोग के रोगी कहकर छोड़ दिया जाता है, काफी जीवन-शक्ति बची रहती है। अगर जीवन-शक्ति का बहुत ह्रास हो चुका है और शरीर का कोई जरूरी कल-पुर्जा बिलकुल ही ख़राब हो गया है तो रोग दूर नहीं हो सकता। इसी से कहा जाता है कि उचित चिकित्सा से सभी रोग अच्छे हो सकते हैं पर सभी रोगी अच्छे नहीं हो सकते। जिनकी जीवन-शक्ति क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुकी है वे अच्छे नहीं हो सकते। लेकिन ऐसे रोगियों को भी प्राकृतिक चिकित्सा से काफ़ी आराम मिलता है और उनके अन्तिम दिन कुछ सुख से बीतते हैं, लेकिन उनके मरने के लिए सारा दोष प्राकृतिक चिकित्सक के मत्थे मढ़ा जाता है! खैर, इस ऊपर वाली बात को--जीवन-शक्ति को जगाकर रोग को दूर करने को--अच्छी तरह समझना चाहिए। जीवन-शक्ति ही वह शक्ति है, जो मनुष्य को जीवित और तनदुरुस्त रखती है, जो शरीर की भलाई के लिए, उसके अन्दर के विकारों को निकालने की गरज से, नये रोग पैदा करती है और फिर से शरीर को भला-चंगा बना लेती है और जिसके कमज़ोर पड़ जाने से पुराने रोग शरीर में अपना घर बना लेते हैं। अगर इस जीवन-शक्ति को फिर से मज़बूत किया जाय तो वह इन पुराने रोगों को भी बाहर निकाल देती है।

यहां पर एक समझने की बात यह है कि जीवन-शक्ति को फिर से बढ़ाना दो-चार दिन, या दो-चार हफ़्तों, की क्रिया नहीं है। जब तक धीरे-धीरे सारी खराबियां नहीं निकल जातीं जीवन-शक्ति पहले की तरह नहीं हो पाती; साथ ही जब तक जीवन-शक्ति काफ़ी अच्छी नहीं होती ख़राबियां निकल नहीं पातीं--इससे इस क्रिया में महीनों, कभी-कभी कई साल, लग सकते हैं। अनुचित दवा के प्रयोग का प्रभाव भी शरीर में बना रहता है; उसके निकलने में भी समय लगता है।

जो रोगी अधैर्य के कारण हतोत्साह हो जाते हैं या खाने-पीने में असंयम करने लगते हैं वे या तो पूरा-पूरा अच्छे नहीं होते या जरूरत से ज़्यादा समय में अच्छे होते हैं।

जीर्ण रोगों को दूर करने के लिए दृढ़ता के साथ संयम-पालन, प्रसन्न-चित्त और आशायुक्त बना रहना आवश्यक है।

लेखक का अनुभव है कि आशायुक्त रहने वाला कठिन रोग का रोगी शीघ्र अच्छा होता है लेकिन उससे कम कठिन रोग का रोगी अपने अधैर्य के कारण ज्यादा समय लेता है।

पुराने रोगों का इलाज--

पुराने रोगों के इलाज में जीवन-शक्ति को बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए इतनी बातें जरूरी हैं:--

(१) उपवास, फलाहार, सुधरा भोजन; शक्ति के अनुसार फिर डेढ़-दो महीने बाद उपवास, फलाहार और भोजन-सुधार। इससे शरीर के अन्दर के विकार निकलेंगे और शरीर इस लायक़ होगा कि उसमें जीवन-शक्ति का पूरा संचार हो पावे। जरूरत से ज़्यादा किये गये भोजन को पचाने में जीवन-शक्ति का ह्रास होता रहता है। भोजन-सुधार और बीच-बीच के उपवास से यह पचाने का काम हल्का हो जाता है, और बची हुई जीवन-शक्ति रोग के बाहर निकालने में लग जाती है; साथ ही खून अच्छा बनता है।

अगर रोगी बहुत ज़्यादा कमज़ोर है तो उसे पहले उपवास न करा के फलाहार पर रखते हैं फिर फल और दूध या मठा। इसके बाद तीन हफ़्ते या एक महीने तक सुधरा भोजन। तब २-३ दिनों का उपवास--इस तरह उसे धीरे-धीरे उपवास के लिए तैयार करते हैं।

उपवास या रसाहार या फलाहार के बाद अक्सर लोग छूट कर खाने लगते हैं। वे समझते हैं कि फिर उपवास करके ठीक कर लेंगे, लेकिन उपवास और असंयम से शरीर खींचा-तानी की हालत में रहता है और धीरे-धीरे कमजोर पड़ता जाता है। उपवास या फलाहर के बाद संयमित भोजन (पहले कुछ दिनों तक दो बार फल-दूध या फल-मठा और एक बार रोटी (या चावल) -भाजी और फिर एक बार फल और दूध या मठा और दो बार रोटी-भाजी। अगर पाचनशक्ति बहुत कमज़ोर है तो एक बार फल और दूध या मठा और एक बार रोटी-भाजी) पर रहना आवश्यक है। बिलकुल अच्छे और तगड़े हो जाने पर थोड़ी बदपरहेज़ी निभ सकती है, पर चिकित्सा के बीच में अ-संयम न करना चाहिए। ७-७-३० बजे सबेरे फल-दूध (पावभर या तीन छटांक), ११-३० बजे दोपहर सलाद, रोटी-भाजी और ७-३० बजे शाम रोटी-भाजी और १५-२० मुनक्के या ३-४ अंजीर या पिन-खजूर किसी के लिए भी काफ़ी हैं। लेकिन भोजन के प्रकार और परिणाम का निश्चय व्यक्तिगत

शक्ति और आवश्यकता पर निर्भर है। आवश्यकता इस बात की है कि काफ़ी मात्रा हो पर किसी तरह भी अपच न हो। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(३) नियमपूर्वक एनीमा का प्रयोग। कम से कम तीन हफ्ते या एक महीना शुरू में लगातार। पहले हफ़्ते में सेर भर गरम पानी, दूसरे हफ़्ते में डेढ़ सेर न गरम न ठंडा और अंत में आध सेर मामूली ठंडा। उम्र और शक्ति के अनुसार पानी की मात्रा हो।

(४) कसरत या टहलना और सांस की क्रियाएँ। इनसे जीवन-शक्ति बढ़ेगी और भोजन के पचने में और पेट के साफ़ रहने में मदद मिलेगी। इससे खून अच्छा हो जायगा और रोग को शरीर के बाहर निकाल सकेगा। लेकिन कसरत तभी करनी चाहिए, जब कि शरीर में ताक़त हो। कसरत की मात्रा भी धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। पहले दोनों समय टहलने से शुरू करना चाहिए, फिर एक समय कसरत और दूसरे समय टहलना। टहलना भी शक्ति के अनुसार हो।

(५) धूप-नहान, जिससे भी जीवन-शक्ति बढ़ेगी और साथ ही शरीर के विकार दूर होंगे। इसे भी बहुत कमज़ोरी की हालत में या दिल की कमज़ोरी या बड़े रक्त-चाप में न लेना चाहिए। शक्ति बढ़ने पर इसे आरंभ किया जा सकता है। सप्ताह में एक बार साधारण तौर पर काफ़ी होगा।

(६) मिट्टी और पानी का इस्तेमाल। इससे भी वही बात होगी।

(७) आराम। यह बहुत ज़रूरी है। आराम और बे-फ़िक्र होकर सोने के समय में ही जीवन-शक्ति अपने भंडार से उतर कर दिमाग में इकट्ठा होती और शरीर में फैलती है। शरीर को बिल्कुल शिथिल करना सीखिए।

(८) विचार और भावों का अच्छा होना। रोगी को खुश रहना चाहिए और उसे इस बात की पूरी आशा रहनी चाहिए कि वह ज़रूर ही अच्छा हो जायगा। पुराने रोग के रोगी अक्सर चिड़चिड़े हो जाते हैं, हताश रहते हैं, गुस्सा करते हैं और ऐसी ही ऐसी बातों से अपनी नाड़ी की अवस्था को और भी ख़राब करते हैं। उन्हें अपने ऊपर काबू रखना सीखना चाहिए और उनके सम्बन्धी और दोस्तों को भी चाहिए कि जहां तक बन सके उन्हें खुश रखें, सहानुभूति का व्यवहार करें और उम्मीद बँधावें कि वे अच्छे हो जायंगे।

ऊपर की सभी बातों को बताते हुए लेखक का पूर्ण विश्वास है कि सैकड़े नब्बे पुराने रोग में रोगी अगर सिर्फ़ (१) फलाहार और नियमित आहार करे (२) अपनी शक्ति भर कसरत और (३) जरूरत भर आराम करे और (४) खुश रहे तो वह अपने रोग को भगा सकता है। लेखक ने बहुत से ऐसे आदमी देखे हैं, और खुद भी कुछ की चिकित्सा की है, जो सिर्फ़ (फलाहार पर रह कर या साग-भाजी खाकर) अच्छे हो गये हैं। इसका कारण यही है, जैसा कि बार बार दुहराया गया है, कि शरीर के अन्दर ही वह शक्ति है, जिससे वह अपने आपको अच्छा कर ले सकता है। शुद्ध भोजन से शुद्ध खून बनेगा और शुद्ध खून से नाड़ियां अच्छी होंगी और शरीर के सब हिस्सों को जरूरी खूराक मिलेगी—बस, इतने से ही तनदुरुस्ती का मसला हल हो जाता है। तो क्या पानी का इस्तेमाल और दूसरी-दूसरी बातें जो इस किताब में बताई गई हैं, जरूरी नहीं हैं? हैं, उनसे मदद मिलती है और साल भर का काम नौ महीने में ही पूरा हो सकता है; कभी कभी पानी का इस्तेमाल और और क्रियाएं बिलकुल जरूरी भी होती हैं, लेकिन ऐसा न समझना चाहिए कि अगर टब नहीं है तो इलाज हो ही नहीं सकता।

पुराने रोगों को दूर करने में कुछ समय लगता है—

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि अगर प्राकृतिक चिकित्सा के शुरू दिन उन्हें फ़ायदा न मालूम हो तो वह हताश हो जाते हैं और कहते हैं कि इलाज करने का यह तरीक़ा भी ठीक नहीं है। इन लोगों में बहुत से तो ऐसे होते हैं जो पहले और सब तरीकों को आजमाने के बाद, सब से हैरान होकर, प्राकृतिक चिकित्सा की तरफ़ झुकते हैं। अगर वे शुरू से ही प्राकृतिक चिकित्सा करने लग जाते तो उन्हें यह हैरानी न उठानी पड़ती। जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में कहा गया है, यह समझने की बात है कि रोगों का दूर करना कोई 'छुः मन्तर' की बात नहीं है, और यह भी कि जितने साल का पुराना रोग है कम से कम उतने महीने तो देना ही चाहिए। बहुत से पुराने रोग इससे कम समय में ही अच्छे हो जाते हैं, लेकिन कुछ हठी रोग और ऐसे रोग, जिनमें पहले जहरीली दवाओं का इस्तेमाल किया गया है, दो-तीन साल तक का अर्सा (अवधि) ले सकते हैं। समय चाहे जितना भी लग जाय, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि अगर शरीर में जीवन-शक्ति है—बहुतों के यह शक्ति रहती है—और अगर चिकित्सा भी उचित है तो रोग जरूर जाता रहेगा। समय इसलिए लगता है कि बहुत से पुराने रोगों में शरीर के अंग-

अंग और कोष-कोष--खून, रग, रेशे, सभी--विकार-युक्त हो जाते हैं और इन सब को साफ़ करने में समय लगेगा ही। इसके अलावा अगर जहरीली दवाओं का इस्तेमाल हुआ है तो रोग के साथ-साथ दवा के जहर को निकालने का काम भी प्राकृतिक चिकित्सा के मत्थे पड़ जाता है। लेकिन जैसे ही शरीर साफ़ होकर अपनी असली हालत में आ जाता है वैसे ही रोग निर्मूल हो जाता है और शरीर एक बार फिर से नया हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा से पुराने रोग को अच्छा करना मानो अपनी काया-पलट करनी है। अक्सर लोग कहते हैं कि इस विधि से रोग के जाने में देर लगती है। मेरा कहना है कि देर या सबेर, जीर्ण रोग तो इसी विधि से जायगा। अगर कोई सरल और साथ ही अचूक विधि हो तो सब से पहले मैं ही उसे अपनाऊँगा।

कुछ लोग दो-ढाई महीने प्राकृतिक चिकित्सा करके पर्याप्त लाभ न देख कर ऊब जाते हैं और फिर दवा की शरण लेते हैं और ऊट-पटांग खाना शुरू करते हैं। यह बताने की जरूरत नहीं कि ऐसा करना ग़लत है। ऐसा तो वही करे, जिसने निश्चय कर लिया है कि अब अच्छे न होंगे। अगर दवा ऐसी है, जो जहरीली न होती हुई रोगों के लक्षण को नहीं दबाती और भोजन भी वैसा ही है जैसा कि होना चाहिए तब तो प्राकृतिक चिकित्सा से चला सिलसिला न टूटेगा और लाभ भी होगा, लेकिन अगर दवा लक्षणों को दबाने वाली और भोजन अनुचित ढंग का है तो और ख़राबी हो जायगी। इन सब बातों को सोच समझ कर प्राकृतिक चिकित्सा शुरू करनी चाहिए।

चिकित्सा के लिए एक कार्य-क्रम बना लेना चाहिए--

पुराने रोगों में इस पुस्तक में बताये गये सभी उपायों को काम में लाना पड़ता है, पर सभी उपायों को एक साथ नहीं लगाते। जल्दबाजी करने से कोई लाभ नहीं होता बल्कि नई कठिनाइयां खड़ी हो जाती हैं। इन कठिनाइयों का जिक्र आगे किया जायगा। यहां इतना ही कहा जाता है कि किसी भी पुराने रोग के इलाज में अच्छी तरह समझ-बूझ कर हर रोज के लिए एक कार्य-क्रम बना लेना चाहिए।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सक शुरू से ही मामूली भोजन-सुधार के साथ-साथ कमर-नहान या उपस्थ-स्नान या दोनों शुरू करा देते हैं। इससे लाभ जरूर होता है, लेकिन इससे भी अच्छा तरीका है कि अगर रोगी

कमज़ोर नहीं है तो शुरू में ही उसे तीन दिन का उपवास करा दिया जाय या तीन दिन उसे रसाहार पर रखा जाय। इन दिनों उसे सुबह और शाम दोनों समय और चौथे दिन भी सुबह में एनीमा दिया जाय और इसके बाद चौथे दिन से लेकर दस-पन्द्रह दिनों तक उसे फलाहार या सादी पकी भाजी पर रखा जाय। अगर ऐसा न हो सके या रोग बहुत पुराना नहीं है तो उपवास के बाद तो एक समय के भोजन में आधा हिस्सा ताजे फल या कच्चे सलाद का रहे और आधे हिस्से में रोटी और एक पकी भाजी। दूसरे समय अगर रोगी फल ही खाय तो अच्छी बात है। अगर रोगी ने ज़हरीली दवा नहीं खाई है तो तीन दिन के उपवास या रसाहार के बाद जब रोगी फलाहार शुरू करे तो उसे पहले कुछ दिनों तक सुबह में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और एनीमा, तीसरे पहर पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और उसके बाद कमर-नहान और रात में फिर पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी लेनी चाहिए। मिट्टी की पट्टी लगातार पन्द्रह-बीस दिनों तक ली जा सकती है। फिर सात-आठ दिनों का अन्तर देकर उसे जारी कर सकते हैं। हो सकता है कि इन दिनों मुंह का स्वाद ख़राब हो जाय। जब शरीर अपने अन्दर के विकारों को निकालने पर तुल जाता है तो और लक्षणों के साथ मुंह का स्वाद भी ख़राब हो जाता है। जब तक मुंह का स्वाद ख़राब रहे तब तक दोनों समय कमर-नहान ही देना चाहिए। जब मुंह का स्वाद ठीक हो जाय तो, या अगर मुंह का स्वाद ख़राब नहीं हुआ हो तो, एक-डेढ़ महीना तक दोनों समय कमर-नहान लेकर, एक समय कमर-नहान और दूसरे समय उपस्थ-स्नान या रीढ़ की गीली पट्टी देने लग जाना चाहिए। बहुत से पुराने रोग तीन-चार महीने में ही चले जाते है, लेकिन बहुत से ज़्यादा समय भी लेते हैं। ऐसे रोगों के इलाज में धीरज रखना चाहिए। नहानों को एक डेढ़ महीने के बाद आठ-दस दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए, लेकिन इन दिनों भी भोजन और कसरत के नियम का पालन करना चाहिए।

फ़ालिज, लक़वा, यक्ष्मा, दिल के रोग, रक्त-चाप का बढ़ना, बहुत कमज़ोरी और दिमागी रोगों को छोड़कर और सब रोगों में इलाज के शुरू से ही कुछ देर नंगे बदन धूप में बैठने या लेटने के बाद या टहलने के बाद सारे बदन को नहला देना चाहिए। अगर धूप तेज़ है तो सिर को ढँक लेना चाहिए। मान लीजिए कि रोगी अगर ७ बजे सुबह को कमर-स्नान लेता है तो नौ बजे कुछ देर (समय धीरे-धीरे बढ़ाया जाय) धूप में रहकर वह तुरन्त ही नहा ले। बताया गया है कि धूप-नहान के बाद सिर से नहाकर कमर-नहान भी लेना चाहिए। अगर रोगी सुबह शाम दोनों समय कमर-नहान या उपस्थ-स्नान ले रहा है तो धूप में

रहने के बाद फिर तीसरी बार कमर-नहान लेने की कोई ख़ास जरूरत नहीं है। लेकिन अगर धूप के बाद कमर-नहान रोगी पसंद करता है तो कमर-नहान बहुत सबेरे न लेकर वह धूप के बाद नौ, साढ़े नौ बजे ले सकता है। शाम का नहान पहले की तरह जारी रहेगा।

नहानों के बारे में यह ख़याल रखना चाहिए कि सुबह का नहान, जितना सबेरे हो सके ले लिया जाय। कुछ हालतों में जरा देर से ही नहान लेने में सुविधा होती है। इन हालतों में नहान लेने के पहले भरसक कुछ न खाया जाय और अगर कुछ खाया भी जाय तो बहुत हल्की चीज। फल का रस पीकर ही अगर रोगी रह जाय और फिर साढ़े दस-ग्यारह बजे के लगभग (नहान के एक-डेढ़ घंटे बाद) वह भोजन करे तो भी अच्छा है। नहाने के जो नियम पहले बताये गये हैं उनका पालन अच्छी तरह करना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि नहान इत्यादि का एक ही निश्चित समय हर रोज के लिए रहे।

इलाज के तरीकों को समय समय पर जरूरत देखकर बदलते जाना चाहिए। मान लीजिए कि इलाज के दिनों में ही क़ब्ज हो गया। ऐसी हालत में दोनों समय के नाहनों में एक नहान को बन्द कर देना या इनके अलावा एनीमा का प्रयोग शुरू करना चाहिए। जब क़ब्ज चला जाय तो एनीमा बन्द करके फिर से नहान को जारी करना चाहिए। अगर बीच में बुख़ार या और कोई तेज रोग हो जाय तो भोजन बन्द कर उपवास करना या रसाहार पर रहना चाहिए। अगर चमड़े पर फुन्सियां निकल आयें या पित्ती उछल जाय तो एक या दोनों नहान के बदले सारे शरीर की गीली पट्टी या भाप-नहान से काम लेना चाहिए। अगर सिर में परेशानी सी रहने लगे तो दोनों समय उपस्थ-स्नान या रीढ़ पर गीली पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। जब कभी भोजन में भी हेर-फेर करने की जरूरत पड़ती है। अगर इलाज के बीच पतले दस्त आने लगें तो रोगी को सिर्फ़ रसाहार पर रहना चाहिए। फिर एक दो दिन मठा पिलाना चाहिए। इसी तरह समझदार और चतुर चिकित्सक अवसर देखकर इलाज के भिन्न-भिन्न ढंगों से फ़ायदा उठाते हैं।

पिछले अध्याय में नमूने के बतौर कुछ कार्य-क्रम बताये गये हैं। हर बीमारी के इलाज के लिए एक उचित कार्य-क्रम बनाना चाहिए। कार्य-क्रम के संबंध में एक बात बताना जरूरी है। कुछ लोग बड़ी विचित्र तबीयत के होते हैं। एक तो वे खिच-खिच में रहते हैं और दूसरे वे हर रोज नया क्रम बनाना चाहते हैं। इस-से काम नहीं चल सकता। चाहिए यह कि अच्छी तरह सोच-विचार कर एक क्रम एक-डेढ़ महीने के लिए बना लिया जाय और उसका स्थिरता से पालन किया

जाय। उसके बारे में हर रोज सोचने की भी जरूरत नहीं; उसके बारे में तभी सोचा जाय जब कि उस क्रम का समय समाप्त होने से पहले ही बीच में कोई नई बात हो जाय। अगर कोई उभाड़ हो या ऐसी ही कोई बात हो जाय तब तो क्रम में रद्दोबदल करना जरूरी है, नहीं तो उसके समय के समाप्त होने पर ही या उससे एक दो दिन पहले आगे का क्रम निश्चित किया जाय। खिच-खिच बहुत खराब बात है। 'यह चीज खांय न खांय', 'अच्छा, जरा आलू खालें तो कोई हानि न होगी' जैसी उधेड़-बुन में रहना ठीक नहीं। सोच-समझ कर ही कुछ निश्चय करना चाहिए और दृढ़ता-पूर्वक उसका पालन भी करना चाहिए। फिर न तो अपनी बीमारी के बारे में सोचना चाहिए और न क्रम के बारे में।

कुछ रोगों के दूर होने में बहुत ज्यादा समय लगता है। उनमें चार-पांच महीने नहान इत्यादि का क्रम विधि के साथ पालन करके नहान आदि को दो-ढाई महीने के लिए छोड़ देना चाहिये। लेकिन इन दोनों भोजन पर ध्यान अवश्य देना चाहिए। दूध-घी का व्यवहार बहुत हालतों में चल सकता है। पर खून में खटाई बढ़ाने वाली कोई चीज न ली जाय। खटाई रहित पौष्टिक भोजन से शरीर में बल मालूम होगा और सन्तोष भी बना रहेगा। फिर दो-ढाई महीने के बाद ४-५ दिनों फलों पर रहने और सुबह शाम एनीमा लेने के बाद नहान इत्यादि शुरू कर देना चाहिए। इस दूसरी बार के नहान इत्यादि से विशेष लाभ होने लगता है।

भोजन का क्रम--

पुराने रोगों में भोजन पर बहुत ध्यान देना पड़ता है। सच्ची बात तो यह है कि जब तक रोग दूर न हो फलाहार या संयमिताहार ही करना चाहिए। जहां फल न मिले या फल खाते खाते जी ऊब जाय तो कच्ची और सादी पकी भाजी से काम चलाना चाहिए। जब दूध शुरू किया जाय तो कच्चा ही दूध लिया जाय। अगर दूध अच्छा न मिले तो दूध न लिया जाय। अगर पतले दस्त आते हों या यकृत का विकार हो तो दूध के बदले बिना मक्खन का पतला मठा लेना चाहिए। दूध या तो अकेला या फलों के साथ पीना चाहिए--रोटी या चावल के साथ नहीं। आगे चल कर रोटी खाने के ठीक २० मिनट बाद पाव भर दूध या मठा पी सकते हैं।

जिन्हें दिन में कोई काम-काज न करना हो उनके लिए भोजन का क्रम इस तरह होना चाहिए:--

सुबह ८ बजे के लगभग---एक तरह का फल। तीन-चार हफ्ते के बाद, जब रोग सम्हाल में आ जाय तब, इसके साथ एक पाव दूध या मठा (चीनी, गुड़ कुछ नहीं)।

लगभग एक बजे दूसरे पहर---कच्ची भाजी का सलाद (या फल) और एक मोटी रोटी (अगर कोई कठिन चर्म या रक्त रोग नहीं है तो थोड़ा नमक भी)। सलाद या फल की मात्रा इतनी हो कि उसके बाद एक रोटी के खा लेने से पेट भर जाय। इतना कभी न खाना चाहिए कि पेट कस-मकस हो जाय। मोटी रोटी पतली के बनिस्बत अच्छी है। मोटी रोटी को चबा चबा कर खाने से क़ब्ज़ यों ही जाता रहता है। दो-तीन हफ़्ते बाद रोटी के साथ थोड़ी सादी पकी भाजी और कुछ और हफ़्तों के बाद थोड़ा मक्खन या अच्छा घी भी लिया जा सकता है। थोड़ा सा शहद शुरू से ही लिया जा सकता है।

लगभग साढ़े सात बजे शाम---एक या दो पकी हरी भाजी (हरी या कन्द-भाजी नहीं) और आठ-दस दाने मुनक्के या तीन-चार अंजीर या पिन-खजूर। भाजी बनाने में बहुत थोड़ा घी और शुरू में सिर्फ जीरा का इस्तेमाल करना चाहिए। जब रोग बहुत कुछ दूर हो जाय तो हल्दी-धनिया का इस्तेमाल कर सकते हैं। हरी भाजी, जैसे पालक इत्यादि, बहुत अच्छी हैं, लेकिन कुछ लोगों को उनसे वायु होती है। वायु से बचना चाहिए। उपवास और फलाहार के दिनों में और कुछ समय तक उसके बाद भी अन्दर की दबी वायु प्रकट होकर तकलीफ़ देती है, इसलिए इन दिनों कोई ऐसी ऊपरी बात न करनी चाहिए कि वायु और बढ़े। जो अन्दर से उभरी हुई वायु है वह कुछ दिनों में स्वयं ही निकल जाती है।

शाम को सिर्फ़ भाजी और मुनक्के इत्यादि खाना बताया गया है। हालत बहुत कुछ सम्हल जाने पर शाम को दलिया (और फिर कुछ दिनों के बाद रोटी), एक भाजी और मुनक्के या अंजीर या खजूर खा सकते हैं।

ऊपर बताये तीन समय के भोजनों के पहले और बीच-बीच में और और उपायों का प्रयोग होशियारी से करना चाहिए।

अगर रोगी को स्कूल-कालेज या दफ़्तर जाना होता है तो सुबह सिर्फ़ भिगोये किशमिश का पानी, ९ बजे सलाद और रोटी-भाजी, लगभग ३-३० बजे शाम को संतरे की तरह कोई रसदार फल और रात में पहले सिर्फ़ फल या भाजी और कुछ दिनों के बाद रोटी, भाजी, मुनक्के खाना चाहिये। याद रहे कि जब आदमी

कोई दिमागी काम करने लगता है तो सारी जीवन-शक्ति खिचकर दिमाग़ में चली जाती है और भोजन पचाने के लिए बहुत कम रह जाती है। इसलिए अगर अन्न जैसे कठिन पदार्थ के खाने के तुरन्त बाद दिमागी काम शुरू किया जायगा तो खाया हुआ पदार्थ ठीक तरह न पचेगा। इन दिनों जो अपच और कब्ज़ की शिकायत तमाम फैली है उसका एक कारण यह भी है कि भर पेट खाने के बाद लोग दिमागी काम करने लगते हैं। यह अच्छा है कि अन्न जैसा भारी पदार्थ दिन में ही खाया जाय, लेकिन अगर दिमागी काम करना है तो अन्न खाने के कम से कम एक घंटे बाद दिमागी काम शुरू किया जाय।

ऊपर जो खाने का क्रम बताया गया है वह नमूने के लिए है।

इलाज में कमज़ोरी--

शुरू से ही तगड़ा बनने की फ़िक्र न होनी चाहिए। पुराने रोगों में यह ज़रूरी है कि शरीर के हर हिस्से से विकार निकाला जाय और बाहरी और अन्दरूनी सफ़ाई की जाय। विकार निकलने के समय दुबला होना स्वाभाविक और ज़रूरी है। उन दिनों सिर्फ इतना ही चाहिए कि शरीर के साधारण तौर पर चलने के लिए कुछ भोजन उसे मिलता जाय। जब रोग दूर हो जायगा तो शरीर किसी भी अच्छे भोजन पर रहकर तगड़ा और मोटा हो जायगा। रोग को दूर करना रोगी और उसके संबंधियों की पहली चिंता होनी चाहिए। इसलिए ज़रूरी है कि भोजन बहुत हल्का हो। इससे पेट के पचाने का काम हल्का रहेगा और पचाने से बची हुई जीवन-शक्ति विकारों को निकालने और रोगों को दूर करने में लग जायगी। ऊपर जो रोटी-भाजी का एक साथ खाना बताया गया है वह दूसरे दर्जे का पथ्य है। अच्छा हो अगर एक वक्त सिर्फ़ रोटी या सिर्फ़ भाजी खाई जाय। अगर ऐसा बराबर न बन सके तो कम से कम चिकित्सा के शुरू में ज़रूर करना चाहिए।

अक्सर रोगी बहुत घबराते हैं और बिगड़ी आदत के कारण तरह-तरह की चीज़ें मांगते हैं। तरह-तरह की चीज़, और अधिक मात्रा में, खाने से बीमारी हुई थी पर वे बेचारे इस अनियमित भोजन और रोग के बीच कोई सम्बन्ध नहीं समझते। उन्हें सहानुभूति के साथ समझाना होगा।

इसे न भूलिए कि भोजन के साथ पानी न पीना चाहिए। दो-ढाई घंटे का अन्तर ज़रूरी है। फिर यह भी कि नींबू बहुत अच्छा फल है और उसके रस का प्रयोग प्रायः सभी हालत में किया जा सकता है। उसे पानी में मिलाकर दिन

में एक दो बार पीने से खून क्षारमय और साफ़ होता है, ठंडे पानी के साथ पीने से पतले दस्तों में फ़ायदा होता है और गरम पानी के साथ पीने से कब्ज दूर होता है। नींबू का रस दाल में छोड़ कर और फिर उस दाल को रोटी या चावल के साथ न खाना चाहिए। रोटी या चावल में श्वेतसार है, जो लार से पचता है। नींबू का रस लार के इस गुण को नष्ट कर देता है। लोग नींबू का इस्तेमाल ऐसे ही ज़्यादातर करते हैं, पर यह ग़लत तरीक़ा है। हां, दूध या मठा पीने के तुरन्त पहले या बाद थोड़े से पानी के साथ नींबू का रस पी लेना या आधा या एक नींबू या सन्तरा चूस लेना बहुत हितकर है।

दबे रोगों का उभाड़——

प्राकृतिक-चिकित्सा में अक्सर दबे और छिपे रोगों का उभाड़ होता है, जिसका मतलब यह है कि अगर पुरानी खांसी का इलाज हो रहा है तो कभी कभी बुखार भी हो आता है और कुछ दिनों तक चलता है या अगर पुराने अपच का इलाज होता है तो फोड़े-फुन्सियां निकल पड़ती हैं। नहीं जानने वाले इन उभाड़ों से डरते हैं, लेकिन जानने वाले रोगी को बधाई देते हैं, क्योंकि इन उभाड़ों के कारण खून के अन्दर गहरा छिपा हुआ विकार निकल जाता है। इन्हीं दबे हुए विकारों के कारण तो पुराने रोग हो जाते हैं, और इन्हीं विकारों के दूर होने पर पुराने रोग का अच्छा होना निर्भर है।

पूछा जा सकता है कि उभाड़ क्यों होता है। जवाब यह है कि प्राकृतिक जीवन के कारण खून साफ़ होने लगता है और धीरे-धीरे जीवन-शक्ति बढ़ने लगती है। बढ़ी हुई जीवन-शक्ति छिपे विकारों को बाहर ला लाकर दूर करती है और अन्त में शरीर को बिलकुल साफ़ सुथरा और निरोग बना देती है।

फिर पूछा जा सकता है कि क्या उभाड़ों में ख़तरा भी है। ख़तरा तभी है जब कि रोगी बहुत ज़्यादा कमज़ोर है और इलाज करने वाले ने शुरू-शुरू में ही पानी इत्यादि के बहुत और बे-ढंगे इस्तेमाल से छिपे रोगों को इस तरह उभाड़ दिया कि रोगी के लिए उसका सहना और चिकित्सक के लिए उसका सम्हालना मुश्किल है। यह तभी होता है कि जब रोगी वर्षों से बीमार होने के कारण बहुत ज़्यादा कमज़ोर हो गया है। सिर्फ़ एक इस हालत को छोड़कर और किसी हालत में ज़रा भी ख़तरा नहीं है। अगर विकार अन्दर दबे हैं तो उभाड़ होना ही चाहिए और ज्यों ज्यों उभाड़ होता जाय त्यों-त्यों समझना चाहिए कि रोगी तनदुरुस्ती की तरफ़ बढ़ता आ रहा है। अगर रोगी बहुत कमज़ोर है तो भोजन-सुधार और

एनीमा से शुरू कर उसकी हालत धीरे धीरे सुधारनी चाहिए। दो-तीन महीने भी इस प्रारंभिक क्रिया में लग जायँ तो हर्ज नहीं। इसके बाद कुछ और करना चाहिए।

क्या नये रोगों में उभाड़ नहीं होता? नया रोग तो खुद ही प्रकृति की तरफ़ से एक उभाड़ है। उसमें और उभाड़ क्या होगा। हां, अगर पहिले से ख़ून में विकार छिपे और दबे हैं और अगर इसी हालत में कोई नया लक्षण प्रकट हो जाय, जैसा कि बच्चों और लड़कों के अक्सर होता है, और इस लक्षण के प्राकृतिक चिकित्सा से दूर होने के बाद कुछ और दिनों तक अगर प्राकृतिक चिकित्सा इस मतलब से जारी रखी जाय कि शरीर और भी साफ़ सुथरा हो जायगा तो पुराने दबे विकार उभड़ पड़ते हैं। एक बार लेखक अपने एक छोटे बच्चे का इलाज नई खांसी को दूर करने के लिए कर रहा था। खांसी अच्छी हुई, पर पतले दस्त आने लगे। पतले दस्तों के लिए इलाज किया गया। जब दस्त रुके तो बुखार हो आया। जब बुखार अच्छा हो गया तो बच्चा भला-चंगा और कुछ ही दिनों में तगड़ा हो गया। लोग ऐसी हालत मे घबरायेंगे और कहेंगे कि यह अजीब इलाज है, पर जाननेवाले खुश होंगे और कहेंगे कि शरीर के अन्दर छिपे हुए विकारों का निकलना ही अच्छा है।

लेखक को उभाड़ के और भी बहुत से दिलचस्प अनुभव हैं। एक दमा के रोगी की चिकित्सा करते समय उसे टायफायड बुखार हो गया, जो हफ़्तों चला। एक गठिया के रोगी का दर्द दूर हुआ, पर बवासीर की तकलीफ़ उभड़ आई, जो पंद्रह दिन रह कर चली गई। एक बुखार के रोगी को एक्ज़िमा हो गया, जो एक हफ़्ते में ही अच्छा हो गया। एक मेम साहब को बताया गया कि उन्हें आंतों की टी० बी० है। जब लेखक उनका इलाज करने लगा तो बुख़ार हो आया, जो पूरे तीस दिन चला। बुख़ार अच्छा होने के एक हफ़्ते बाद उन्हें जुकाम हो गया। इन उभाड़ों के बाद रोगियों के रोग जड़ से दूर हो गये और अब वे सब के सब तन-दुरुस्त हैं। पहले वे घबराते जरूर थे, पर समझाने पर सच्ची बात समझ गये।

उभाड़ में क्या करना चाहिए? उसे एक नया रोग समझकर उसका इलाज करना चाहिए। अगर जुकाम या बुखार या कोई तेज़ तकलीफ़ है तो भोजन छोड़-कर उपवास करना चाहिए या फलों का रस पीकर रहना चाहिए। अगर बुखार ज़्यादा दिन चले तो एक दो दिन उपवास करके दिन में तीन-चार बार फलों के रस पीकर रहना चाहिए। ऊपर जिन मेम साहबा का जिक्र आया है उन्हें मैंने ३० दिनों तक फल के रस पर ही रखा। उनके दोस्त और रिश्तेमंद मुझे भला-

बुरा कहते रहे पर मेम साहबा दृढ़ रहीं। अगर बुखार बहुत दिन चले तो तीन हफ़्ते के बाद दिन में एक दो बार बहुत पतला मठा या पानी मिलाकर दूध भी दे सकते हैं। अगर जुकाम या बुखार को छोड़कर कोई ऐसा लक्षण प्रकट हो जाय जिसमें तकलीफ़ ज़्यादा हो, तो उस हालत में भी उपवास करना या रस पीकर रहना चाहिए। अगर तकलीफ़ न हो तो भी एक दिन का उपवास अच्छा होता है। अगर फोड़े-फुन्सी निकल आवें तो चार-पांच दिन फलाहार करके रह जाना चाहिए।

भोजन को छोड़ने या कम करने के अलावा दिन में एक या दो बार एनीमा भी तब तक लेना चाहिए जब तक कि लक्षण बिल्कुल शान्त न हो। साथ ही कमर-नहान या उपस्थ-स्नान इत्यादि का प्रयोग भी शुरू करना या जारी रखना चाहिए। ज़्यादातर उभाड़ मामूली ही होते हैं और हफ़्ते भर के अन्दर ही अन्दर अपना काम पूरा करके निकल जाते हैं। ऊपर जो उभाड़ की हालतें मैंने बताई हैं वे उन रोगियों की हैं, जिनके रोग बहुत पुराने थे और जिन्होंने जहरीली दवाओं को खा खाकर रोगों को खून के अन्दर गहरा छिपा रखा है। कुछ लोग उभाड़ होते ही घबराकर इलाज बदल देते हैं और विकारों को कुछ दिनों के लिए फिर से दबाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसा न करना चाहिए।

जो चिकित्सक पुराने रोगों का इलाज रोगी की अवस्था देख कर तीन दिन के उपवास और फिर फलाहार से शुरू कराते हैं और इन दिनों एनीमा से पेट भी साफ़ करते रहते हैं उन्हें बहुत मामूली उभाड़ों का सामना करना पड़ता है।

उभाड़ों से डरना न चाहिए। उभाड़ होना जरूरी है, उसी में शरीर की भलाई है, पर इतना ख़याल जरूर रखना चाहिए कि अपने उतावलेपन से उभाड़ न आने पावें। अगर अपनी ही ग़लती से उभाड़ आ जायँ और रोगी अगर मामूली (बहुत नहीं) तौर से कमजोर है तो भी कोई हर्ज नहीं। कुछ दिनों के अनुभव के बाद चिकित्सक खुद ही दबे लक्षणों का बाहर निकालना सीख जाता है और जरूरत के मुताबिक (अनुसार) विकारों को निकाल निकाल कर दूर कर देता है।

उभाड़ का समय—

अनुभवी चिकित्सकों का कहना है कि अगर उभाड़ आने को होता है तो ६-७ वें दिन या ६-७ वें हफ़्ते या महीना या समय के किसी ६–७ वें विभाग में आता है। तीस साल के पुराने अपच रोग के एक रोगी का उभाड़ मैंने ७ वें महीने में आते देखा। उसकी तबीयत धीरे-धीरे अच्छी हो रही थी, पर छठे महीने के

शुरू से ही गड़बड़ी शुरू हुई और सातवें महीने में पतले दस्त आने लगे। रोगी ने खुद ही सब बातों को समझ लिया था, इसलिए घबराया नहीं। दस्त बंद होनेके बाद उसकी तबीयत और अच्छी हो गई, लेकिन इक्कीसवें दिन फिर गड़बड़ी शुरू हुई। इस उभाड़ के शान्त होने पर रोगी की तबीयत और ज्यादा अच्छी हो गई।

एक दिलचस्प बात यह भी है कि उभाड़ उसी क्रम (सिलसिले) से आते हैं, जिस क्रम में रोग दबाये गये हैं। एक दूसरी मेम साहबा का इलाज में गठिया दूर करने के लिए कर रहा था। उन्हें पहले फोड़े निकले, फिर पतले दस्त आने लगे और अन्त में कानों में दर्द हो गया। पूछने से मालूम हुआ कि बचपन में मेम साहबा के कानों में दर्द हुआ था। इस बार का दर्द बिल्कुल वैसा ही, लेकिन तेजी में पहले से कम था। कुछ साल के बाद उन्हें पतले दस्त आने लगे थे और उसके कुछ साल के बाद उन्हें खारिश भी हुई थी। जब उनके सभी तरह के दबे विकार निकल गये तो मेम साहबा बिल्कुल तनदुरुस्त हो गईं।

चिकित्सक और रोगियों से लेखक की प्रार्थना है कि वे उभाड़ों से न घबरायें। पुराने रोगों में दिन में कई बार और बहुत देर तक नहान लेने से या पानी के और इस्तेमालों से उभाड़ जल्द आता है। बस, इसी को बचाना चाहिए। अगर पानी का इस्तेमाल शरीर को थोड़ा थोड़ा सहाकर किया जाय तो उभाड़ अपने ठीक समय पर और बहुत हल्का आयेगा। नये रोगों में इसका डर नहीं है, क्योंकि वे तो खुद ही उभाड़ हैं। उन रोगों में जब जब जरूरत पड़े रोगी को शक्ति देखकर पानी का इस्तेमाल कीजिए।

चिकित्सक को इशारा—

पुराने रोगों के इलाज में यह तय करना चाहिए कि रोगी को पहले उपवास कराया जाय या फलाहार, या रोटी-भाजी दी जाय। एनीमा हर हालत में शुरू कराया जा सकता है। अगर रोगी बहुत थोड़ा कमजोर है तो उपवास से डरना न चाहिए। अगर रोगी कुछ कमजोर है तो फलाहार से शुरू करा के आगे उपवास के लिए तैयारी करनी चाहिए। अगर वह बहुत ज्यादा कमजोर है तो पहले एक समय सिर्फ रोटी या रोटी भाजी और दूसरे समय फल चलना चाहिए। फिर फलाहार और रसाहार, अन्त में उपवास। उपवास के बाद रसाहार, फलाहार, अन्नाहार।

रोगी और रिश्तेमंदों की परेशानी—

पुराने रोगों के इलाज में अक्सर रोगी कुछ दिनों तक दुबले होते जाते हैं और भीतर से अच्छा मालूम करते हुए भी कमजोर दीखते हैं इससे रोगियों को

और उनके रिश्तेमंदों को घबराहट होती है। वे डरते हैं कि कहीं रोगी इतना कमज़ोर न हो जाय कि फिर उसका सम्हलना कठिन हो जाय। दूसरे दूसरे लोग भी बहुत डरवाते हैं। लेकिन यह घबराहट और डर बे-बुनियाद हैं। शुरू-शुरू में दुबला होना ज़रूरी है। जब रग-रेशे, मांसपेशी और कोषों से, और साथ ही आंतों से, मल और विकार निकाले जा रहे हैं, तो रोगी का दुबला होना स्वाभाविक है। लेकिन दुबला दीखते हुए भी रोगी का चित्त प्रसन्न रहता है, और जब विकार फिर दूर हो जाते हैं खून साफ़ हो जाता है, और अंत में रोगी जब साधारण अच्छे भोजन पर आ जाता है, तो वह बात की बात में पहले से कहीं ज़्यादा तगड़ा और हट्टा-कट्टा हो जाता है।

साधना—

पुराने रोगों से छुटकारा पाना एक साधना है। जिसे पुराने रोग होते हैं उसका सिर्फ़ शरीर ही नहीं बल्कि विचार और भाव भी त्रुटिपूर्ण रहते हैं। उसकी इच्छा-शक्ति कमज़ोर हो जाती है और उसका सारा नैतिक बल जाता रहता है। इसलिए वही मनुष्य पुराने रोग को दूर कर सकता है, जो शरीर के धर्म और हालत को समझे, खाद्य-अखाद्य को जाने, और तनदुरुस्ती के सभी नियमों का अच्छी तरह पालन करे। इस काम में चिकित्सक और रिश्तेमन्दों को बहुत होशियारी और सहानुभूति से चलना चाहिए और धीरे-धीरे रोगी के नैतिक बल को बढ़ाना चाहिए। जब रोगी स्वयं समझदार होकर अपनी चिकित्सा अपने हाथ में ले लेता है तभी वह सच्चे तौर पर तनदुरुस्त हो सकता है। जो आदमी अपने पुराने रोग को बिलकुल भगा देता है वह सिर्फ़ शरीर की ही तनदुरुस्ती नहीं बल्कि दिलोदिमाग़ की तन्दुरुस्ती भी हासिल करता है। वह एक ऊँचे दर्जे का और बिल्कुल नया आदमी हो जाता है। इसी से दवा पी पीकर किसी का भी पुराना रोग नहीं जाता और दवा पीने और पिलाने वालों की सूची में असाध्य रोगों की गिनती दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। याद रखिए कि अगर कोई तनदुरुस्त रहना चाहता है तो उसे प्राकृतिक जीवन बिताना चाहिए, लेकिन अगर कोई पुराने रोग को भगाकर फिर से तनदुरुस्त बनना चाहता है तो उसे योगी बनना पड़ेगा।

सौ में निन्यानबे जीर्ण रोग सादे भोजन के साथ साथ कमर-नहान और उपस्थ-नहान और आवश्यकतानुसार धूप या भाप-नहान से निस्सन्देह चले जायंगे। लगकर इलाज करना चाहिए।

अचानक की तकलीफें

अचानक की तकलीफ़ों और बीमारियों के इलाज के बारे में कुछ बताना जरूरी है। इन तकलीफ़ों को अंगरेज़ी में accidents (दुर्घटनाएं) कहते हैं और उनकी शुरू की चिकित्सा को फर्स्ट एड (first aid) कहते हैं। चतुर चिकित्सक मिट्टी पानी के इस्तेमाल से सभी तकलीफ़ों की प्राथमिक सहायता (पहली इमदाद, first aid) अच्छी तरह कर सकते हैं, लेकिन फिर भी कुछ इशारे यहां दिये जाते हैं।

फ़ालिज--

फ़ालिज (पक्षाघात) का आना अचानक होता है, यद्यपि उसके असली कारण बहुत पहले से अपना असर फैलाते हैं। फ़ालिज के शुरू होते ही रोगी के सिर और कंधों को कुछ ऊंचा रखते हुए उसे चित लिटा देना चाहिए। फिर पेड़ू पर एक मिट्टी की ठंडी पट्टी रखकर और गर्दन के चारों तरफ़ कपड़े की एक काफ़ी मोटी गीली पट्टी रखकर रोगी के शरीर और हाथ पैरों को हल्के हल्के पर तेज़ी के साथ कुछ मिनटों तक ऊपर से नीचे रगड़ना चाहिए। पट्टी से कपड़े और बिस्तर न भीगें। इसलिए गर्दन की पट्टी के चारों तरफ़ कोई हल्का सूखा ऊनी कपड़ा लपेटना चाहिए। सर्दी में रोगी के शरीर को कंबल या रजाई से भी ढंकना चाहिए। इन तरकीबों से खून सिर से नीचे की तरफ़ खिंच आता है। पट्टियों को ३०-४० मिनट तक रखना चाहिए और जरूरत होने पर आधे घंटे के बाद फिर दुहराना चाहिए या उन्हें लगातार दो-ढाई घंटे रहने देना चाहिए। इस हालत में उसे पानी से तर करते रहना जरूरी है। पट्टी के बाद अगर रोगी की हालत कुछ अच्छी हो तो सहने लायक काफ़ी गरम पानी का एक हल्का एनीमा बहुत लाभदायक होगा। जभी रोगी की हालत सुधरे एनीमा दे देना चाहिए।

अगर रोगी को कहीं ले जाना हो तो स्ट्रेचर या डोली पर ले जाना चाहिए, किसी गाड़ी पर नहीं।

पूरे इलाज के लिए उपवास से शुरू करना चाहिए।

बनावटी सांस—

दम घुटने पर, जैसा कि पानी में डूबने, फांसी लटकने या कभी-कभी बेहोशी के समय होता है, बनावटी सांस देनी चाहिए। इसकी दो-तीन तरकीबें हैं।

(१) रोगी के ऊपरी कपड़ों को जल्दी लेकिन सहूलियत से हटाकर उसे पेट के बल लिटा दो। एक छोटा हल्का गद्दा या तकिया उसके सिर के नीचे रखो, जिससे उसकी नाक और मुंह जरा ऊपर उठे रहें। फिर रोगी के पैरों के पास घुटने टेक कर बैठो और अपने दोनों खुले हाथों को कमर के ठीक ऊपर पीठ पर दोनों तरफ़ रखो और इसी हालत में हल्के हल्के पर मजबूती के साथ पीठ के उस हिस्से को दबाओ। दबाते समय दबाने वाले का शरीर झुकेगा, उसी झुकने से दबाव होना चाहिए। हाथों से जोर न लगाना चाहिए। सयानों में एक एक दबाव चार-चार सेकंड के लिए हो और बच्चों में तीन तीन सेकंड के लिए। कुछ देर तक बारी-बारी इसी तरह दबाना और दबाव को ढीला करना चाहिए।

(२) रोगी को पीठ के बल लिटाओ। कमर के ऊपर पीठ के निचले हिस्से के नीचे एक छोटा गद्दा रखो, जिससे सिर सीने से नीचा हो जाय। फिर टांगों के आर-पार घुटने टेक कर बैठते हुए दोनों तरफ़ सीने पर (स्तनों के नीचे) दोनों हाथों को खोलकर रखो और १, २, ३, ४, गिनो। १, २, गिनते समय सीने को हल्का लेकिन मजबूती से दबाओ और ३, ४ गिनते समय दबाव को ढीला करो। ऐसा तब तक करो जब तक सांस वापस न आ जाय। सांस वापस आते समय सीने में हल्की थर्राहट सी होती है। सीना दबाते समय हाथों में कलाई के पास से हल्का कंपन देना चाहिए।

(३) रोगी को नं० २ की हालत में इस तरह लिटाओ कि सीना ऊपर उठा रहे। तब झुक कर रोगी के हाथ को कलाई के पास पकड़ पूरे बाजुओं को ऊपर और पीछे की तरफ़ ले जाओ और तब उसी तरह पूरे खुले बाजुओं को वापस लाकर शरीर के बगल के पास से कोहनियों को मोड़ते हुए सिर्फ़ बाजुओं के अगले हिस्से को सीने पर मोड़ो। इस तरह सयानों में फी मिनट १५ बार और बच्चों में २० बार तब तक करना चाहिए जब तक सांस वापस न आ जाय।

पानी में डूबने के मौके पर जब दम घुटता है तो नं० १ वाली तरकीब को काम में लाना ज्यादा अच्छा है। उससे पानी बाहर निकल आता है।

पानी को बाहर निकालने के लिए दूसरी तरकीब है पेट के बल लेटे हुए रोगी के पेट और पेड़ू पर हाथ रखना और उसे हल्का हल्का दबाना, फिर उसी तरह पेट और पेड़ू को दबाए हुए रोगी को बीच-बीच में थोड़ा ऊपर उठाना और उसके ऊपरी अंग को नीचे की तरफ़ कुछ झुकाना।

ज़हरीले कीड़ों की डंक—

बिच्छू, बर्र के डँसने पर एक बार या बार बार की मिट्टी की ठंडी पट्टी से ही काम निकल जाता है। भाप देने से तो जादू का सा असर होता है।

सांप के काटने पर काटने की जगह पर X ऐसा चीरा देकर उँगलियों से दबा दबाकर खून जितना हो सके निकाल देना चाहिए। अगर हो सके तो मुंह से भी चूस चूस कर खून फेंक देना चाहिए। चूसने वाले के मुंह में कोई जख्म न हो और चूस कर खून फेंकने के बाद खूब कुल्ला करके मुंह को अच्छी तरह साफ़ करना चाहिए। जख्म को नींबू के रस से (अगर मिले तो, नहीं तो पानी से) अच्छी तर धो कर उस पर मिट्टी की पट्टी चढ़ा देनी चाहिए। साथ ही पेड़ू पर भी मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए। अच्छा हो अगर जख्म पर मिट्टी चढ़ाने के बाद ही पहले एनीमा से पेट साफ़ कर तब पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी दी जाय। जख्म को धोने और उसपर मिट्टी चढ़ाने के साथ-साथ उसके कुछ ऊपर एक मजबूत कपड़े के टुकड़े से अच्छी तरह कस कर बांध देना चाहिए। फिर उसके एक-डेढ़ फुट ऊपर भी बांधना चाहिए। यह दोनों बंधन पन्द्रह मिनट से ज़्यादा देर तक न बंधे रहें। यह सब काम जल्द होने चाहिए। साथ ही उधर भाप नहान के लिए पानी गरम हो। पानी तैयार होते ही रोगी को भाप-नहान और उसके बाद मामूली नहान और कमर-नहान देने चाहिए। उसके बाद रोगी को गरम कपड़ों से ढक कर लिटा दीजिए, लेकिन सोने न दीजिए। एक डेढ घंटे बाद, अगर जरूरत हो तो, भाप-नहान और कमर-नहान दिये जा सकते हैं। रोगी को सोने न देना चाहिए। अगर दो बार कमर-नहान के बाद भी शक रहे तो रोगी के सारे शरीर को, चेहरा और गर्दन छोड़कर, जमीन में गाड़ दीजिए। सारे शरीर के चारों तरफ़ अच्छी तरह गीली मिट्टी रहे। इस हालत में रोगी सो न जाय, इसका ख़्याल रहे। एक डेढ़ घंटे के बाद रोगी को नहला कर लिटा दीजिए

रोगी को तब तक कुछ भी खाने को न देना चाहिए, जब तक कि जहर का अन्देशा बिलकुल दूर न हो जाय। फिर रसाहार पर एक-दो दिन रखकर फल

देना चाहिए। एनीमा का प्रयोग भी चलना चाहिए। शराब, चाय इत्यादि भूलकर भी न देना चाहिए।

कुत्ते का काटना—

अक्सर इसका असर कुछ दिनों बाद होता है। काटने के बाद से ही शरीर को उपवास, रसाहार, फलाहार, सुथरा भोजन, बीच-बीच में भाप-नहान और शुरू से ही कमर-नहान से शुद्ध कीजिए।

बुखार में बर्राना—

इसे अंगरेज़ी में डिलीरियम (delirium) कहते हैं। १०३ डिग्री या इससे ज़्यादा बुखार होने पर कोई-कोई रोगी कभी या तो बर्राता है या बेहोशी की हालत में हो जाता है। दोनों हालतों में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और गर्दन के चारों तरफ़ गीले कपड़े की पट्टी देनी चाहिए। सिर पर भी कपड़े की गीली पट्टी दी जा सकती है। अगर गर्दन के चारों तरफ़ पट्टी दी जाय तो गरम कपड़े से लपेट देना चाहिए। पट्टी गरम होते ही बदली जानी चाहिए। बुख़ार कुछ भी कम होते ही पट्टी हटा देनी या बिल्कुल बन्द कर देनी चाहिए। अगर बुख़ार कम भी न हो लेकिन हालत कुछ सुधर जाय तो पट्टी रुक रुक कर देनी चाहिए। बर्फ़ का इस्तेमाल वर्जित है।

चोट से खुरचना, किसी अंग का कटना—

कपड़े की गीली पट्टी से काम लो। खुरचने पर दिन भर में तीन-चार पट्टी काफ़ी है। दूसरे दिन सिर्फ़ दो या तीन।

कट जाने पर अगर ख़ून ज़्यादा निकलता हो तो जरा मोटा गद्दा अच्छी तरह ठंढे पानी में भिगो कर कटे स्थान पर रखकर दूसरी पट्टी से उसे अच्छी तरह बांध देना चाहिए और जब तक खून बन्द न हो इस गद्दे को वहीं और तर रखना चाहिए। खून बन्द हो जाने पर दिन भर में एक दो गीली पट्टी की और ज़रूरत पड़ेगी। मामूली कटने पर मामूली गीली पट्टी से काम निकल जायगा।

जलना—

अगर कपड़े में आग लग जाय तो भागना न चाहिए। ज़मीन में लोट-लोट कर आग को बुझा देना चाहिए। ऊपर से अगर कोई मोटा और भारी कपड़ा

(मोटा कम्बल, दरी) डाल दिया जाय और तब लोटा जाय तो आग जल्द बुझ जाती है ।

अगर शरीर भी जल गया है तो कपड़ा उतारते समय होशियारी से काम लेना चाहिए । काट-काट कर कपड़े को हटाओ। अगर कपड़ा चिपक गया है तो चारों तरफ़ से कैंची से काट दो और चिपके कपड़े को हटाने की कोशिश न करो ।

जले हुए स्थान पर सोडा बाइकारबोनेट (bi-carbonate of soda) और तिल या जैतून के तेल का लेप या सिर्फ़ नारियल का तेल या मिट्टी की पट्टी लगाने से लाभ होता है । बुरी तरह जल जाने पर जले हुए अंग को सहने लायक़ काफ़ी गरम पानी में देर तक डुबो कर रखने से लाभ होता है । जलने से जहां पर खाल उजड़ गई है और जख्म हो गया है वहां अंडे की सफ़ेदी का गाढ़ा-गाढ़ा लेप करके छोड़ देना चाहिए । वह ज़ख्म को अच्छा करके ही छोड़ेगा ।

गले में किसी चीज़ का अटकना—

चेहरे को ज़रा नीचा करते हुए रोगी को बैठा दो। फिर कंधों के बीच (गर्दन के नीचे ही) हल्के घूंसे लगाओ । मुंह में उँगलियों को डाल कर कोई होशियार आदमी अटकी हुई चीज को निकाल सकता है । अगर रोगी बच्चा है तो उसके नथनों को दबा कर बन्द करने से वह मुंह खोल देगा और तब उँगलियों से अटकी चीज़ निकाली जा सकती है ।

कान में किसी चीज़ का पड़ जाना—

अगर कीड़ा है तो कान में तेल डालने से वह मर जायगा और तब वह निकाला जा सकता है । किसी चीज़ को निकालने के लिए कान के बाहरी हिस्से को खींच कर पीछे की तरफ़ ले जाना चाहिए । तब कान के अन्दर की चीज़ के निकालने में सहूलियत होती है । बहुत सी चीजें पिच-कारी देने से निकल आती हैं । कुछ को कान साफ़ करने वालों से निकल-वाना पड़ता है ।

बेहोशी—

पहले यह ठीक कर लो कि रोगी जीता है । जीते रहने की हालत में नाक के पास शीशे का टुकड़ा रखने से उस पर भाप सी जमती है ।

फिर यह जानने की कोशिश करो कि रोगी ने जहर तो नहीं खाया है (आगे देखो)। अगर जीभ कटी है तो मिर्गी है। अगर आंखें छूने पर या रोशनी से चौंकती-तिरमिराती हैं तो दिमागी खराबी नहीं है। पुतलियों का ना-बराबर सिकुड़ा रहना दिमाग को खराबी बताता है। पुतलियों का सिकुड़ कर सुई की नोक को तरह बन जाना अफ़ीम का खाया जाना बताता है। रुक-रुक कर धीरे-धीरे सांस का आना-जाना सख्त सदमा या एकाएक कमजोरी की हालत में होता है। नाक का बजना या सांस की खर्राहट और कमजोर नब्ज़ फ़ालिज जैसी हालत या और दिमागी खराबी में रहती है। बहुत गरम बदन और बहुत तेज नब्ज़ जोरदार बुखार या लू लगने की हालत में होती है। ठंडा शरीर और कमज़ोर नब्ज़ ठंड से या मामूली बेहोशी की हालत में होती है। इन सब बातों को अच्छी तरह समझना और जानना चाहिए।

रोगी के कपड़े ढीले कर दो। मामूली बेहोशी में रोगी को आराम की हालत में लिटाना चाहिए। अगर उसका चेहरा पीला है तो उसका सिर कुछ नीचा कर दो। लेकिन अगर चेहरा तमतमाया है तो सिर को कुछ ऊँचा कर दो। उसके शरीर और चेहरे में हवा लगने दो। धीरे-धीरे हवा करो। पेड़ू पर जल्दी से मिट्टी की गीली पट्टी रखो, सीने पर कपड़े की गीली पट्टी दो और चेहरा और गर्दन पर हल्के हल्के पानी का छींटा दो, रीढ़ को भी तौलिया भिगो कर रगड़ दो। साथ ही पैर-हाथ को हल्के-हल्के दबाओ और पानी का प्रयोग करते समय रोगी को मोटे कपड़े या कम्बल से ढक कर गरम रक्खो। अगर सांस धीमी, कमज़ोर और रुक-रुक कर आती हो तो थोड़ी देर बनावटी सांस दो। होश होने और हालत सुधरने पर गुनगुने पानी का एनीमा दो।

बेहोशी की हालत में पानी या कुछ भी पीने को न दो। उससे गला घुटने का डर रहता है। होश हो जाने पर थोड़ा-थोड़ा पानी या फल का रस, थोड़ी-थोड़ी मात्रा में, चूसने को दिया जा सकता है। नशीली चीज किसी भी हालत में न दो।

मिर्गी की मूर्छा—

जब मूर्छा हो तो उसे हो लेने दो; रोकने या दबाने की कोशिश करना हानिकर है। रोगी को जितने आराम से हो सके रखो, सिर को कुछ

ऊँचा कर दो। रोगी को हवा लगने दो। नीचे के जबड़े को हल्के हल्के खींच कर कुछ आगे करो, जिससे हवा जा सके और दम न घुटे। फिर यह भी देखो की दांतों से जीभ न कटे। इसके लिए रूमाल या किसी साफ़ कपड़े के टुकड़े को दांतों के बीच दिया जा सकता है। बँधी मुट्ठियों को खोलने की चिन्ता या कोशिश बेकार है। रीढ़ को गीले कपड़े से हल्के-हल्के रगड़ना चाहिए।

मिर्गी के रोगियों को धीरज के साथ अपना इलाज कई महीनों तक करना चाहिए। उपवास, रसाहार, फलाहार, फिर सुधरा भोजन, लगातार कुछ हफ्तों तक एनीमा-प्रयोग और तीन-तीन महीने पर या पहले इसी क्रम को दुहरा देना बहुत लाभदायक होता है। नहान, खास कर उपस्थ-नहान, मिट्टी का प्रयोग, रीढ़ की मालिश और रीढ़ की गीली पट्टी से काम लेना चाहिए।

मिर्गी के रोगियों को शान्त और संयम का जीवन बिताना चाहिए। समझदारी से इलाज करने पर साल भर में सैकड़े पीछे ९५ रोगी बिल्कुल चंगे हो सकते हैं।

हड्डी का टूटना—

इसके लिए हड्डी बैठाना जानना चाहिए। किसी अच्छे जानकार से काम लेना चाहिए, नहीं तो खींच-खांच में गड़बड़ी होगी। जब तक जानकार न मिले रोगी और उसके जख्मी अंग को आराम से रखना चाहिए और अगर खून बहता हो तो कपड़े की गीली गद्दियों से खून को बंद करने की कोशिश करनी चाहिए। दर्द रहने पर गरम और ठंढी सेंक हल्के-हल्के देनी चाहिए।

मुँह से खून का आना—

यह जानना चाहिए कि खून कहां से आ रहा है। अगर खून कुछ नीलापन लिये है या गंदा लाल है और उसमें कुछ भोजन का अंश है तो समझना चाहिए कि खून पेट के अन्दर से पुराने फोड़े (कैन्सर, cancer) के कारण आ रहा है। अगर खून चमकीला लाल है और उसमें भोजन का अंश भी है तो भी समझना चाहिए कि पेट के अन्दर से आ रहा है लेकिन मामूली जख्म के कारण है। दोनों हालतों में रोगी को आराम से लिटाकर थोड़ी थोड़ी देर पर नींबू का रस मिला १–२ चम्मच (छोटे) पानी पीने को देना चाहिए। साथ ही पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी रखनी चाहिए। जरूरत रहने पर मिट्टी की पट्टी आध-आध घंटे के बाद कई बार दी जा सकती है।

अगर खून चमकीला लाल है और उसमें फेन भी है लेकिन भोजन का अंश नहीं है तो उसे फेफड़ों से आता हुआ समझना चाहिए। घबराने की बात नहीं, क्योंकि कभी-कभी यक्ष्मा के रोगियों को आराम के उभाड़ के समय भी ऐसा होता है। चाहे जब हो, रोगी को आराम से लिटाकर पेड़ू पर गीली मिट्टी और सीने पर गीले कपड़े की पट्टी देनी चाहिए। उपवास जरूरी है। उपवास के बाद कुछ दिनों तक रसाहार और दुग्धाहार चलना चाहिए।

अगर नाक से खून आता हो तो सिर के नीचे बिना तकिया दिये लेटना चाहिए। नींबू के रस मिले ठंडे पानी को नाक से जब तब सिड़कना चाहिए भौंहों के बीच (नाक के ठीक ऊपर) और गर्दन के पीछे कपड़े की गीली पट्टी से लाभ होता है।

अगर नींबू न मिल सके तो सिर्फ ठंडे पानी का इस्तेमाल करना चाहिए। खून रोकने के लिए नींबू का रस एक बहुत अच्छी चीज है।

गरमी से बहुत कमज़ोरी—

इसमें भी बेहोशी सी होती है, शरीर ठंढा हो जाता है, नब्ज बहुत कमजोर लेकिन तेज हो जाती है।

रोगी को ठंढी जगह में रक्खो। कपड़ा भिगोकर सारे शरीर को हल्के-हल्के लेकिन तेज़ी से रगड़ो। सिर को अच्छी तरह ठंढे पानी से धोओ, साथ ही गरम पानी नींबू के रस के साथ पीने को दो, जिससे शरीर में गरमी छा जाय। अगर कमज़ोरी बहुत ज़्यादा है और पैर ठंढे पड़ गये हों तो सहने लायक काफ़ी गरम पानी में कम्बल अच्छी तरह निचोड़ कर टांगों में लपेट दो और ऊपर से दो-चार कम्बल और डाल दो। थोड़ी-थोड़ी देर पर नींबू के रस के साथ गरम पानी पीने को दो।

हिचकी—

हिचकी पेट की ख़राबी से होती है। मामूली हिचकी में धीरे-धीरे पानी चूसना चाहिए। गहरी सांस लेने से भी हिचकी बंद होती है। कभी-कभी जोरदार हिचकी में उपवास की भी जरूरत पड़ती है। मरने के समय की हिचकी बुरी होती है, पर उसका कोई इलाज नहीं।

लू लगना—

इसके लक्षण हैं एकाएक तबियत का ख़राब होना, परेशानी और कुछ बेहोशी, तेज बुखार, नब्ज कमजोर और कभी-कभी नब्ज का बहुत कमज़ोर हो जाना।

रोगी का कपड़ा हटाकर उसके सिर और सारे शरीर को अच्छी तरह ठंढे पानी से धोकर पोंछ देना चाहिए। तुरन्त ही मिट्टी की गीली पट्टी पेड़ू पर देना चाहिए। अगर फिर भी जरूरत हो तो आध घंटे के बाद रोगी को अच्छी तरह नहलाना चाहिए। ज़्यादा परेशानी में सारे शरीर की गीली पट्टी बिना कम्बल लपेटे देनी चाहिए और ऊपर से पानी डालना चाहिए, लेकिन अगर कमज़ोरी बहुत ज़्यादा है तो नहलाकर या गीली पट्टी देकर कम्बल से अच्छी तरह ढँक देना चाहिए। मौक़ा देखकर और होशियारी से काम करना चाहिए।

मोच—

मोच में कपड़े की गीली पट्टी से फ़ायदा होता है। इसे थोड़ी-थोड़ी देर का अन्तर देकर कई बार देना चाहिए। एक तरीक़ा आराम पहुँचाने का और है। पहले काफ़ी गरम पानी में उस हिस्से को डुबोकर रखना या ऊपर से गरम पानी गिराना और फिर ठंढे पानी में डुबोना या ठंढे पानी को ऊपर से गिराना। दिन में दो-तीन बार करना चाहिए। अक्सर मोच खाये अंग को बैठाने की जरूरत पड़ती है। इसके लिए कोई जानकार चाहिए।

दाँतों का दर्द—

गरम पानी में जरा नमक मिलाकर दिन में दो-तीन बार कुल्ला करना चाहिए। आम और महुए की छाल को पानी में उबालकर उस पानी से कुल्ला करने से भी लाभ होता है, लेकिन अगर दर्द के साथ मसूढ़ों में गर्मी और जलन भी है तो मुंह में मामूली ठंढा पानी लेकर उसे कुछ देर तक रखना चाहिए। जब पानी गरम हो जाय तो उसे फेंक कर फिर से ठंढा पानी मुंह में लेना चाहिए।

यह दर्द भी पेट की खराबी से होता है। इसलिए नियमित भोजन और एनीमा का सहारा लेना चाहिए।

भाप से बहुत लाभ होता है। भाप चेहरे पर लगे। बीच-बीच में मुंह खोलकर अंदर भी लगने देना चाहिए।

सदमा—

अक्सर चोटों के मौक़ों पर चोट तो कम रहती है, लेकिन सदमे से हालत ख़राब हो जाती है। ऊंचे से गिरने पर, किसी अंग के बुरी तरह कट जाने पर, बहुत खून निकलने पर, जल जाने पर या वैसे भी किसी बीमारी में सदमे का अन्देशा रहता है। लेखक ने एक ऐसे आदमी को एक बार देखा, जो दरख्त से गिर गया था। वैसे उसकी भीतरी हालत अच्छी थी, पर सदमे से उसका बाहरी हाल बहुत बुरा था। लेखक ने कहा कि यह आदमी बहुत बहादुर है। अगर कोई दूसरा आदमी दरख्त से गिरा होता तो उसका बदन चकनाचूर हो गया होता। यह सुनकर वह आदमी सम्हल गया और लगा बोलने। इस घटना से ज़ाहिर (स्पष्ट) होता है कि सदमे में हिम्मत दिलाने वाली हमदर्दी (सहानुभूति) की बात रोगी से कहनी चाहिए। साथ ही नींबू का रस मिले गरम पानी या अगर और कोई ख़राबी न हो तो गरम दूध पीने को देना चाहिए और रोगी को गरम कपड़ों से अच्छी तरह ढंकना चाहिए। जिस तकलीफ़ से सदमा आ है उसे भी दूर करना चाहिए।

ज़हर खाना—

जहर खाने पर जरा नमक मिले गरम पानी को (काफ़ी मात्रा में) पिला कर अच्छी तरह कै करानी चाहिए। पानी पीने के बाद हलक़ में उँगली डाल कर या चिड़िया के मुलायम पर से हलक़ गुदगुदाने से कै हो जाती है। इस तरह थोड़ी-थोड़ी देर के बाद बार-बार कै करानी चाहिए। नमक मिला कर सहने लायक पानी का एनीमा भी एक-दो बार देना चाहिए। अगर रोगी कमजोर नहीं हुआ है तो भाप-नहान और कमर-नहान से बहुत लाभ होगा। एक-दो बार कै और एनीमा से पेट साफ़ हो जाने के बाद दूध या शकर मिला पानी पीने को देना चाहिए।

अक्सर लोग तेज़ाब पी जाते हैं। उससे होठों में दाग हो जाता है। इसे देख लेना चाहिए और ऐसी हालत में कै नहीं करानी चाहिए। रोगी को दूध या थोड़ा गरम पानी में अंडे की सफ़ेदी अच्छी तरह मिलाकर पीने को देना चाहिए। साथ ही थोड़े दूध का एनीमा इस तरह देना चाहिए कि वह पेट में ही रह जाय।

अगर बेहोशी है और सांस घुटी है तो चेहरे और गर्दन को भीगे कपड़े से पोंछना चाहिए और बनावटी सांस देनी चाहिए।

ज़हर खाने की हालत में तब तक उपवास और एनीमा-प्रयोग की ज़रूरत है, जब तक कि शरीर से ज़हर बिलकुल निकल न जाय। फल का रस पानी के साथ मिला कर बीच-बीच में दिया जा सकता है।

आख़िरी हिदायतें--

(१) ऊपर जो कुछ बताया गया है वह अचानक की तकलीफ़ की हालतों में प्राथमिक सहायता या पहली इमदाद की तरह बताया गया है। कुछ तकलीफ़ों में पहले से कोई रोग चलता रहता है या कुछ तकलीफ़ें आने वाले रोगों की सूचना सी रहती हैं। ऐसी तकलीफों का इलाज जब तक ज़रूरी हो नियम-पूर्वक चलना चाहिए।

(२) प्राथमिक सहायक को होशियारी से काम करना चाहिए। उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि रोगी की तकलीफ़ कम हो जाय और आने वाले ख़तरे का अन्देशा दूर हो जाय।

(३) जब कोई बात अच्छी तरह समझ में न आवे या जभी कोई गड़बड़ी मालूम हो तो पेड़ू पर और तकलीफ़ के स्थान पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग न भूलो।

(४) प्राकृतिक चिकित्सा में किसी भी तरह ज़हर का प्रयोग--अन्दर पीने के या ज़ख्म पर लगाने के रूप में--मना है। इस चिकित्सा में टिंक्चर आयडीन के बदले नींबू का रस या पानी मिला नींबू का रस या सिर्फ़ पानी या मिट्टी की पट्टी ज़्यादा लाभ के साथ काम में लाई जाती है।

(५) अगर कुछ जानी-समझी जड़ी-बूटी, जो ज़हरीली नहीं है, काम में लाई जाय तो हर्ज नहीं।

कसरत और आराम

कसरत और आराम

यह दोनों भी अचूक चिकित्सा के ढंग हैं, लेकिन इनकी गिनती चिकित्सा-विधियों में इसलिए नहीं है कि यह तो हर रोज की जिन्दगी के भी जरूरी हिस्से हैं। फिर भी नये रोगों में 'आराम' की जरूरत रहती है और पुराने रोगों में 'कसरत' और 'आराम' दोनों की जरूरत होती है।

कसरत

कसरत की ज़रूरत--

सच पूछिए तो अलग से कसरत करना जरूरी न होता, अगर हम लोगों के रहने और काम करने के ढंग नहीं बिगड़ते। जो लोग सुबह उठकर मील दो मील बाहर मैदान जाकर पाखाने के लिए बैठते हैं और फिर मील दो मील वापस आते हैं और आते जाते खुली हवा में सांस लेते हैं उन्हें कसरत की क्या जरूरत? जो किसान खेतों में दिन भर दम तोड़ मेहनत करते हैं उन्हें कसरत की क्या जरूरत? जो नहान के लिए बंद कमरे के अन्दर नहीं घुसते बल्कि नदी या तालाब में जाकर घंटे आध घंटे अच्छी तरह तैरकर नहाते हैं या खुद कुंआ से पानी निकालकर नहाते हैं उन्हें कसरत की क्या जरूरत? जो औरतें अपने घर के काम-काज खुद ही करती हैं, चक्की पीसतीं, धान कूटतीं और ऐसे ही सब काम करती हैं, उन्हें कसरत की क्या जरूरत? लेकिन कसरत की जरूरत उन्हें जरूर है, जिनके काम नौकर या और कोई दूसरा कर देता है, जिनका रोजगार उन्हें बहुत देर तक बैठे रहने के लिए विवश करता है, जो देश और संसार के ऊँचे-ऊँचे कामों के करने में इतना व्यस्त रहते हैं कि अपने आप दैनिक जीवन के कामों को खुद नहीं कर सकते और जो निरी सभ्यता और फ़ैशन के कारण अपने कामों के लिए कल-पुर्जों का या दूसरों का मुंह ताका करते हैं। ऐसों के लिए कसरत नहीं करना अपने शरीर मे बीमारी इकट्ठा करना, अपनी योग्यता को घटाना और अपने जीने के दिनों को कम करना है। हिन्दुस्तानी और यूरोप-अमेरिका के लोगों मे यही अन्तर है। सच्ची बात यह है कि एक औसत दर्जे का हिन्दुस्तानी ज्यादा अच्छी तरह रहता है, ज्यादा प्राकृतिक जीवन बिताता है अपेक्षा (बनिस्बत) एक यूरोपियन या अमेरिकन

के, लेकिन यूरोपियन या अमेरिकन इस बात में बढ़ा-चढ़ा है कि वह नियमित कसरत करता है या कोई खेल खेलता है या बहुत दूर पैदल चलता है। आज तक मैंने एक भी ऐसा अँगरेज न देखा, जो हर रोज़ किसी न किसी तरह की कसरत न करता हो। क्या लड़के, क्या जवान, क्या अधेड़, क्या बुड्ढे, क्या औरत, क्या मर्द, सभी दिन के किसी न किसी समय अपनी ताक़त भर कोई कसरत ज़रूर कर लेते हैं तभी तो वे चाय, सफ़ेद डबल रोटी, मांस, शराब और ऐसी ही बहुत सी हानिकारक चीज़ों का इस्तेमाल करते हुए भी बहुत दिनों तक जीते और हट्टे कट्टे बने रहते हैं। अपने हिन्दुस्तानी भाइयों को इन विदेशियों से सबक़ सीखना चाहिए।

कसरत के फ़ायदे—

(१) कसरत से शरीर के विकार पसीना के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

(२) कसरत से शरीर का रक्त-संचार (खून का दौरान) तेज़ होता है और जिन जिन अंगों की कसरत होती है, उन्हें एक तरह का रक्त-नहान मिल जाता है, जो उनके लिए बहुत अच्छा है।

(३) कसरत से अंग मज़बूत और सुडौल होते हैं।

(४) कसरत से शरीर में लचीलापन और फुर्ती आती है, जिससे जवानी बनी रहती है। रीढ़ का लचीला बना रहना बहुत ज़रूरी है।

(५) ख़ास ख़ास कसरतों से ख़ास ख़ास रोग दूर किये जा सकते हैं जैसे कब्ज़ को दूर करने के लिए पेट और पेड़ू की कसरत। पाचन-शक्ति को पेट और पेड़ू की कसरतों से बहुत सहायता मिलती है।

(६) कसरत करते समय, ज़्यादा मात्रा (अन्दाज़) में हवा और उसके साथ आक्सीजन नाक के रास्ते शरीर में लिया जा सकता है, जिसका फ़ायदा पहले बताया जा चुका है।

(७) कसरत से शरीर की सुन्दरता बढ़ती और बनी रहती है।

(८) कसरत अनेक ख़राबियों को दूर करती है।

एक ही कसरत सब के लिए नहीं है—

इसे समझाने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि यह मामूली बात है कि जो कसरत लड़कों के लिए ठीक है वह जवान के लिए नहीं, और जो जवान के लिए ठीक है

वह अधेड़ और बुड्ढों के लिए नहीं, और इसी तरह जो बुड्ढों या जवानों के लिए ठीक है वह लड़कों के लिए ठीक नहीं है।

बच्चों और छोटे लड़कों के लिए सिवा दौड़-धूप के और कोई कसरत उपयुक्त नहीं है। बड़े लड़कों के लिए कसरतें ठीक हैं, और ज्यों ज्यों वे बड़े होते जायँ त्यों त्यों उनकी कसरतों को भी सख्त (कठिन) और ज्यादा देर तक चलने वाली होनी चाहिए। जवानों के लिए डंड-बैठक, जिमनास्टिक इत्यादि सभी उपयुक्त हैं। फिर ज्यों ज्यों उम्र ढलती जाय त्यों त्यों कसरत की मात्रा को कम करना चाहिए और टहलने की मात्रा को बढ़ाना चाहिए। साथ ही बागीचे में काम करना, घूम-घूम कर खेत-खलिहान देखना, बाज़ार करना, अंगरेजी खेल गाल्फ खेलना (अगर हो सके) इत्यादि चलने-फिरने वाले कामों को जारी रखना और बढ़ाना चाहिए। बुढ़ापे में सिर्फ़ टहलना ही टहलना बन सकता है, लेकिन जो शुरू से कसरत करते आये हैं उनकी कसरतें बुढ़ापे में भी, कुछ कम मात्रा में, जारी रह सकती हैं।

पुराने रोग से पीड़ितों के लिए, जब उपवास और फलाहार के बाद उन्हें मामूली काफ़ी ताक़त हो जाय तो, अपनी शक्ति भर कसरत करना जरूरी है। उससे उनके रोग जल्द जायँगे। नये रोगों में तो प्रकृति आराम करने को विवश करती है, इसलिए उस हालत में कसरत वर्जित है। साधारण तनदुरुस्ती में रोज कसरत करनी चाहिए। जो ऐसा नहीं करते वे अपने शरीर को बहुत दिनों तक अच्छी हालत में नहीं रख सकते।

बदन की मालिश--

बहुत से पुराने रोगों के रोगी इस हालत में रहते हैं कि वे हल्की से हल्की कसरत भी नहीं कर सकते और न वे टहल ही सकते हैं। कभी कभी गठिया के रोगियों की यही हालत होती है। ऐसों के लिए बदन की, ख़ास कर तकलीफ़ वाले अंग की, मालिश जरूरी है। मालिश में उतनी ही ताक़त लगानी चाहिए जितनी कि रोगी आसानी से सह सके। मालिश करते समय रीढ़ और जोड़ों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इन जगहों पर दोनों ओर से हल्की हल्की मालिश करते हुए हड्डी और जोड़ की तरफ़ हाथ ले जाना चाहिए। मालिश ज़रा देर तक हो, जिससे ख़ून में अच्छी और काफ़ी हरकत हो जाय।

अपने देश में बहुत से होशियार मालिश करने वाले हैं, जो इस हुनर को अच्छी तरह जानते हैं। मालिश में सारे शरीर को धीरे-धीरे कूटना, ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की तरफ़ रगड़ना, सारे बदन को पूरी हथेली से नीचे-

ऊपर की तरफ़ गोला-गोला मलना, तकलीफ़ की जगह को बहुत हल्के हल्के उँग-लियों की चुटकियों से दबाना इत्यादि बातें सम्मिलित हैं। ध्यान रहे कि रोगी को मालिश करते समय (तकलीफ़ नहीं बल्कि) आराम और आसूदगी मालूम हो और साथ ही सारे बदन में खून की रफ्तार (चाल) बढ़ जाय।

मालिश करते समय सरसों के तेल का इस्तेमाल करना बहुत अच्छा है, लेकिन अगर कोई खाल की बीमारी है तो तिल या नारियल का तेल इस्तेमाल करना चाहिए। सब से अच्छी मालिश धूप में ही होती है। रोगी जितनी कड़ी धूप सह सके उतनी कड़ी (ज़्यादा नहीं) धूप में उसके बदन की मालिश करनी चाहिए। अगर धूप ज़्यादा कड़ी है तो सिर को अच्छी तरह ढँक देना चाहिए। उन हालतों में धूप में नहीं बैठना चाहिए जिनमें धूप-नहान मना है। मालिश के बाद नहा लेना या गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ देना भी ज़रूरी है। साबुन का भरसक इस्तेमाल न करना चाहिए। बहुत से साबुनों में ऐसी चीजें रहती हैं जिनका खाल पर बुरा असर पड़ता है। सिर में सरसों का नहीं, तिल का तेल देना चाहिए।

टहलना—

मालिश के बाद टहलने का नम्बर आता है। जिन्हें ताक़त है लेकिन इतनी नहीं कि कसरत करें उनके लिए टहलना ज़रूरी है। जिन्हें काफ़ी ताक़त है उन्हें कसरत करना और टहलना दोनों ही चाहिए। सच पूछिए तो टहलना सब से अच्छी कसरत है। इससे कसरत के सभी फ़ायदे हासिल हो जाते हैं और कसरत की जो एक खराबी है—दिल पर बहुत ज़्यादा जोर का पड़ना—वह नहीं होती। कसरत का पूरा फ़ायदा टहलने से मिल जाता है, अगर तेजी के साथ खूब दूर तक टहल जाय।

देखिए, टहलने से किस तरह फ़ायदा पहुंचता है। कसरत से एक फ़ायदा है खून के दौरान को तेज़ करना और शरीर के सभी अंगों में खून पहुँचाना। यह काम टहलने से अच्छी तरह हो जाता है, क्योंकि मामूली तेजी से भी टहलने से दिल की धड़कन बढ़ जाती है, जो नाड़ी की तपकन से मालूम होती है। एक मिनट में एक साधारण तनदुरुस्त आदमी की नब्ज़ ७२ बार चलती है। अगर वह मामूली तेज़ी से चले तो एक मिनट में नब्ज़ ८२ बार चलने लगती है। इसका मतलब है कि दिल की धड़कन या नब्ज़ की गति (चाल) एक मिनट में १० बार बढ़ गई। पाठकों को यह जानना चाहिए कि दिल की धड़कन का मतलब है दिल से खून

का फेंका जाना। यही खून सारे शरीर में जाता है। एक धड़कन में दिल लगभग तीन छटांक खून चालू करता है। इस हिसाब से मामूली तेज़ी से टहलते समय जो १० धड़कन और बढ़ जाती है उससे ३० छटांक ज़्यादा खून शरीर में जाता है। अगर कोई आदमी एक घंटा टहले तो इसका मतलब है कि उसके शरीर का रक्त-संचार ६० X ३० = १८०० छटांक ज़्यादा खून के कारण तेज़ हो जाता है। यह एक बहुत बड़ा लाभ है। कसरत से थोड़ी ही देर में यह लाभ हो सकता है, लेकिन कसरत करते समय इस काम में दिल पर ज़्यादा ज़ोर पड़ता है। टहलते समय भी यह ज़ोर पड़ता है लेकिन उतना नहीं। फिर टहलते समय नाकों के रास्ते ज़्यादा हवा फेफड़े में पहुंचती है, जिससे ज़्यादा मात्रा में ऑक्सीजन खून के अन्दर जाकर खून को शुद्ध करता है। इस तरह दो काम—खून का साफ़ होना और उसका तेज़ी से शरीर भर में दौड़ना—एक ही साथ होते हैं।

ऊपर बताये फ़ायदे के अलावा तेज़ी से टहलने में शरीर से काफ़ी पसीना भी निकलता है, जिसका मतलब है कि शरीर का विकार निकल गया। साथ ही खुले मैदान में घूमते समय जो प्राकृतिक सुन्दरता देखने को मिलती है उसका असर दिल-दिमाग़ पर बहुत अच्छा पड़ता है।

कुछ लोग कहते हैं कि टहलने में मांसपेशियों (muscles) की कसरत नहीं होती। ऐसा समझना भूल है। टहलते समय सिर से लेकर पांव तक की २०० मांसपेशियों की हल्की-हल्की स्वाभाविक कसरत हो जाती है।

टहलने से पूरा फ़ायदा उठाने के लिए नीचे लिखी बातों पर ध्यान दीजिए :—

(१) टहलना हर रोज़ नियमित रूप से जारी रहे।

(२) ऐसी खुली जगह में टहलना चाहिए, जहां साफ़ हवा मिल सके।

(३) टहलने का फ़ासला (दूरी) धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए, एक-ब-एक बहुत थकान न हो। एक साधारण तनदुरुस्ती वाले को कम से कम ४-५ मील हर-रोज़ टहलना चाहिए।

(४) टहलते समय हल्के और आराम देने वाले कपड़े हों। गर्मियों के लिए कमीज़ और निकर (हाफ पैन्ट) आदर्श कपड़े हैं। जाड़ों में भी बहुत भारी लबादा पहनने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि तेजी से टहलते समय तो बदन में गरमी आ ही जाती है। जूते भी ऐसे हों कि चलने में कठिनाई न हो। अगर जमीन पथरीली या बहुत कड़ी नहीं है तो नंगे पांव चलने में

ज़्यादा फ़ायदा है। पृथ्वी से पैरों के ज़रिए शरीर को बहुत फ़ायदे की चीज़ें मिलती हैं।

(५) काफ़ी तेज़ी से टहलना चाहिए, जिससे शरीर में हरकत हो।

(६) टहलते समय बदन बिल्कुल सीधा और कुछ आगे को झुकता हुआ रहे। घुटने बहुत न मुड़ें, चेहरा सामने रहे लेकिन तना हुआ न हो। हाथ जहां तक हो सके, बिना मुड़े हुए आगे-पीछे जायँ।

(७) नाक से गहरी सांस लेनी चाहिए।

(८) टहलते समय चिन्ताओं को दूर रखिए। ऐसा न हो कि उसी समय अपनी सारी समस्याओं और कठिनाइयों को हल करने में लग जाइए।

(९) अगर अकेले टहलने में तबियत ऊबती हो तो अपने मन का एक साथी ढूंढ़िए और उसको अपने संग ले जाइए। ऐसा न हो कि एक गपोड़-मंडल के सदस्य बन कर आप टहलने जायँ।

थोड़े ही अभ्यास से अकेले टहलने की आदत पड़ जाती है और उसी में आनन्द आने लगता है।

(१०) टहलने के बाद, अगर पसीना निकला हो तो, बन्द कमरे में सारे बदन को गीले कपड़े से पोंछ दीजिए। अगर बदन में अच्छी ताक़त है और गरमी के दिन हों तो बन्द कमरे में नहा लीजिए।

लेखक ने कितने ही रोगियों को केवल भोजन-सुधार के साथ-साथ टहला-टहला कर भला-चंगा किया है।

कसरत——

जैसा कि ऊपर बताया गया है, जिस आदमी के साधारण बल भी है उसे टहलने के साथ साथ कसरत भी करनी चाहिए। कसरतें बहुत तरह की हैं पर सभी कसरतें सब के लिए ठीक नहीं हैं। इसलिए अपनी शक्ति के लायक़ कसरतों को ही करना चाहिए। आजकल हठयोग की भी बहुत सी कसरतें चली हैं। उन्हें आसन कहते हैं। आसनों से बहुत लाभ होता है, ख़ासकर अगर वे प्राकृतिक जीवन के अंग बनाए जायँ तो, लेकिन बिना किसी अच्छे जानकार की सलाह लिए आसन नहीं शुरू करना चाहिए। इन दिनों आसन सिखाने वाले बहुतेरे हो गए हैं, पर इनमें से बहुत से उस विषय को अच्छी तरह नहीं जानते।

जो कसरतें यहां बताई जा रही हैं वे सीधी-सादी हैं। इन्हें हर कोई कर सकता है। इन कसरतों के सहारे कोई पहलवान नहीं बन सकता, पर वह तनदुरुस्त जरूर रहेगा। शरीर के अन्दर के कल-पुर्जों को इन कसरतों से बहुत मदद मिलेगी और ये अपना अपना काम अच्छी तरह कर सकेंगे।

कसरतों से फ़ायदा उठाने के लिए ज़रूरी है कि वे हर रोज और बँधे समय पर ही की जायँ। किसी किसी को हर रोज़ एक ही तरह की कसरतों में तबियत नहीं लगती या उनके लिए फुर्सत नहीं मिलती। ऐसों को एक रोज़ अपनी शक्ति भर तेज़ी से टहलना और दूसरे दिन कसरत करनी चाहिए। इससे भी बहुत फ़ायदा होगा, लेकिन इसमें नागा न हो।

कसरतों के सम्बन्ध में नीचे दी हुई बातों पर ध्यान दीजिए:--

(१) खाने के बाद ही कसरत न करनी चाहिए। कम से कम ढाई-तीन घंटे का अन्तर देना ज़रूरी है। खाने के बाद हल्के हल्के टहलना बहुत लाभदायक है।

(२) सुबह या शाम में से कोई भी समय कसरत के लिए अच्छा है। जो टहलता है और कसरत भी करता है उसे सुबह में कसरत करनी चाहिए और शाम को टहलना, लेकिन अगर सुबह को ही टहला जाय और शाम को कसरत की जाय तो भी कोई हर्ज नहीं।

(३) कसरत के बाद ही खाना या पानी पीना न चाहिए। कम से कम आध घंटे का अन्तर दीजिए।

(४) कसरत, जहां तक हो सके, खुले मैदान या खुले कमरे में और बिना कपड़ा पहने या बहुत हल्का और ढीला कपड़ा पहन कर करनी चाहिए।

(५) हर दो तरह की कसरतों के बीच में तीन-चार बार गहरी सांस लेनी चाहिए।

(६) कसरत करते समय अगर पसीना निकल आया हो तो कसरत खत्म करने के बाद बन्द कमरे में गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ लेना या अगर ताक़त हो तो नहा लेना चाहिए। अगर कसरत करने वाला कमज़ोर है तो उसे बदन को गीले कपड़े से सिर्फ़ पोंछ कर कपड़ा पहन लेना चाहिए।

(७) कसरत की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाय, पहले ही से थकान न हो जाया करे।

(८) अगर सिर में चक्कर रहता हो या ऐसी ही कोई और तकलीफ़ हो तो कसरत करने के बदले टहलना ही अच्छा है।

अब कुछ आसान, लेकिन बहुत फ़ायदेमन्द, कसरतें बताई जाती हैं।
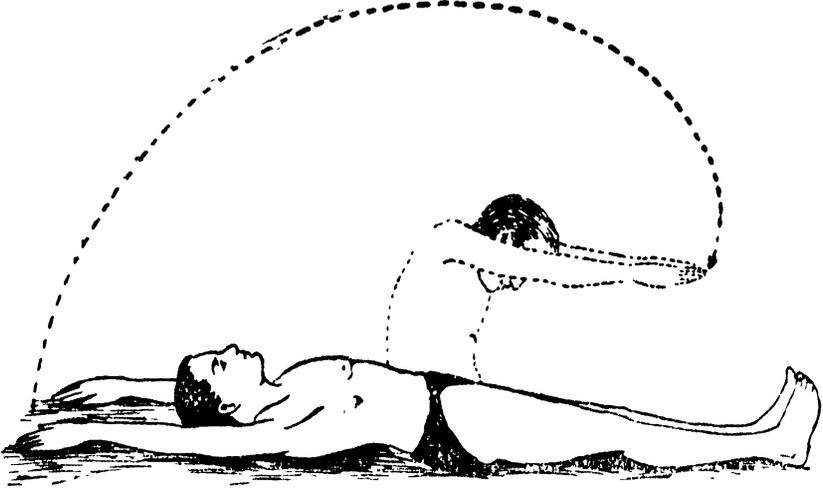
(१) पीठ के बल लेटकर सिर के अगल-बग़ल में फैले हुए हाथों को धीरे-धीरे सिर के ऊपर से लाकर अँगूठों को छूना और फिर वापस ले जाना। पहले-पहले एक या दो बार काफ़ी है। धीरे-धीरे संख्या बढ़ाइए। घुटने न मुड़ें और हाथों के ऊपर आते समय पैर न उठें।

कुछ दिनों के बाद कोशिश कीजिए कि सिर हाथों के साथ साथ उठे और आगे झुके।

(२) कोशिश कीजिए कि इसी ऊपर वाली कसरत में सिर घुटनों को छू ले। हाथ कोहनी के पास मुड़कर ज़मीन छूएंगे (तस्वीर ठीक नहीं बन
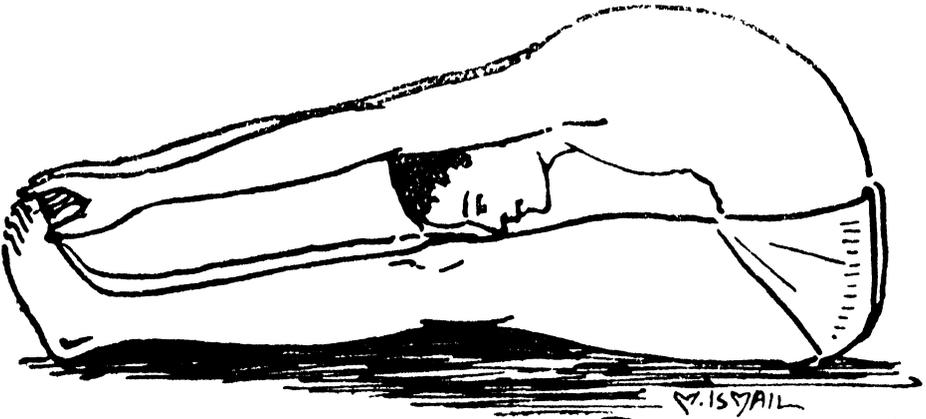
सकी।) समय लगेगा, लेकिन जब ऐसा होने लगेगा तो यही कसरत पश्चिम तान आसन हो जायगी।

इन दोनों से पेट, हाथ, सीना और रीढ़ की मांसपेशियां ठीक और मज़बूत होती हैं; कब्ज़ दूर होता है; मुटापा घटता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि दुबले लोग इसे न करें।

(३) सीधे खड़े होकर हाथों को सिर के अगल-बगल ऊपर से नीचे लाना और अँगूठा छूना और फिर ऊपर ले जाना।

कोशिश कीजिए कि सिर हाथों के साथ नीचे आवे।

फिर कोशिश कीजिए कि सिर घुटनों को छू ले।

फिर अँगूठों को छूने के बदले तल-हथियों को ज़मीन पर रखने की कोशिश कीजिए। घुटने किसी भी हालत में न मुड़ें। इस कसरत को दो बार से ही शुरू करना चाहिए।

इससे सिर से पैर तक की मांसपेशियां पुष्ट होती हैं।

ऊपर की तीनों कसरतों से पेट और पेड़ू के अन्दर के कल-पुर्जे ठीक रहते हैं और रीढ़ भी, जिसके अन्दर नाड़ी का मुख्य तार है, ठीक रहती है।

(४) पीठ के बल लेट कर तने पैरों को एक साथ धीरे-धीरे ऊपर ले जाना और फिर नीचे वापस लाना। एक या दो बार से शुरू कीजिए।

इसको सख्त बनाने के लिए हाथों को नीचे धड़ के पास आराम से रख कर परों को बहुत धीरे-धीरे ऊपर ले जाते हुए ३०, ६० और ९० डिग्री के कोणों (angles) पर एक-एक या दो-दो सेकंड के लिए रोकिए और फिर वापस लाते समय उन्हीं कोणों पर रोक-रोक कर वापस लाइए। घुटने तने और सीधे रहें।
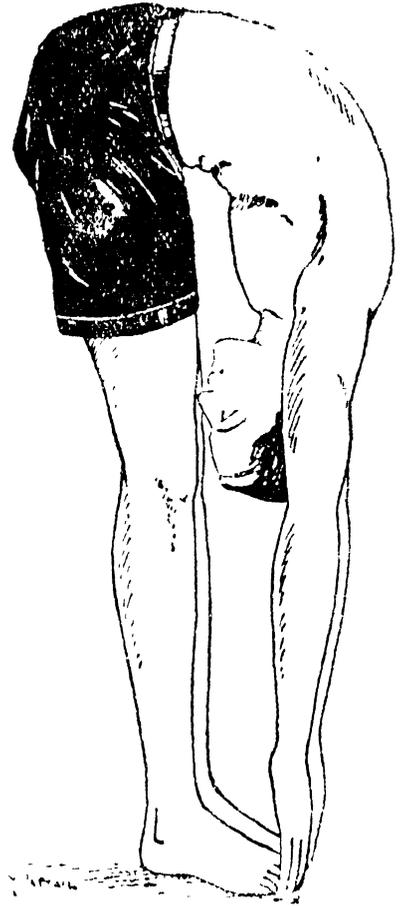
इस कसरत से पेड़ू, रीढ़ का निचला हिस्सा और टांगों की कसरत होती है। इससे क़ब्ज़ दूर होता है।
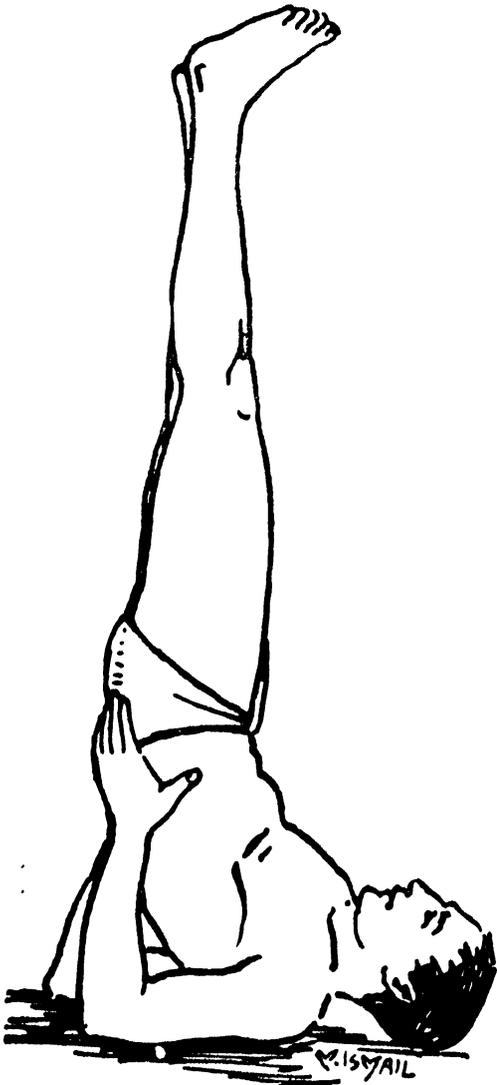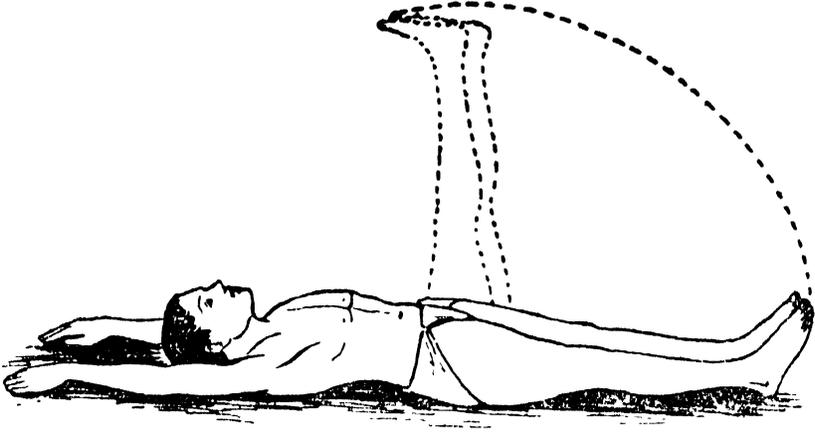
(५) इसी ऊपर वाली कसरत में अगर पैरों को ऊपर ९० डिग्री के कोण पर ले जाने के बाद ही उन्हें इस तरह और भी ऊपर उठाया जाय कि कमर से नीचे का हिस्सा भी आगे तस्वीर में दिखाए गए की तरह पूरी सीध में हो जाय, सिर्फ़ सिर और कंधे ज़मीन पर रहें, हाथों की तलहथियों से कमर के पास टेक लगाई जाय और ठुड्डी (ठोढ़ी) सीने के बीच के ऊपरी गड्ढे को छू ले तो यही कसरत सर्वांगासन हो जाती है। सारी धड़ एक सीध में हो जाय। सीना, पेट, कमर, टांगें बिलकुल एक लाइन में सीधी रहें। (तस्वीर में कुछ त्रुटि रह गई है।) पैरों को ऊपर ले जाने या वापस लाने के समय झटका न दीजिए। धीरे-धीरे ऊपर से पीछे ले जाइए और फिर नीचे

लाइए। नीचे जाते समय टांगें धड़ से ज़मीन पर आ जाती हैं, ऐसा न होना चाहिए। पैरों को सिर की तरफ़ आगे झुकाते हुए धीरे-धीरे नीचे लाना चाहिए। पहले रहल पैरों को आध मिनट तक ही रोकिए, फिर बहुत धीरे-धीरे समय बढ़ाकर ७ से १० मिनट तक उसी हालत में रख सकते हैं।

सर्वांगासन के बहुत फ़ायदे हैं। इससे नाड़ी बल (nervous strength) मिलता है, भूख तेज़ होती है, कब्ज़ दूर होता है और लगातार करते रहने से शरीर नया हो सकता है। लेकिन पहले दिन से ही इसे न करने लगिए।

(६) बारह इंच के फ़ासले पर दोनों पैरों को रखते हुए सीधे खड़े हो जाइए और दोनों हाथों को कंधों के बराबर अपने सामने लाइए। अब उनको जितना भी बन सके दाहिनी ओर ले जाइए और सामने वापस लाइए। कोहनी न मुड़ें। आख़िरी बार एक झटके के साथ दाहिनी ओर ज़रा और ज़्यादा ले जाने की कोशिश कीजिए। पैर अपनी जगह पर रहें। इसी तरह फिर सीधे आकर हाथों को बाईं ओर ले जाइए और आख़िरी बार झटके के साथ ज़रा और ज़्यादा उधर ले जाने की कोशिश कीजिए। पहले चार बार से शुरू कर के पन्द्रह बार तक कर सकते हैं।
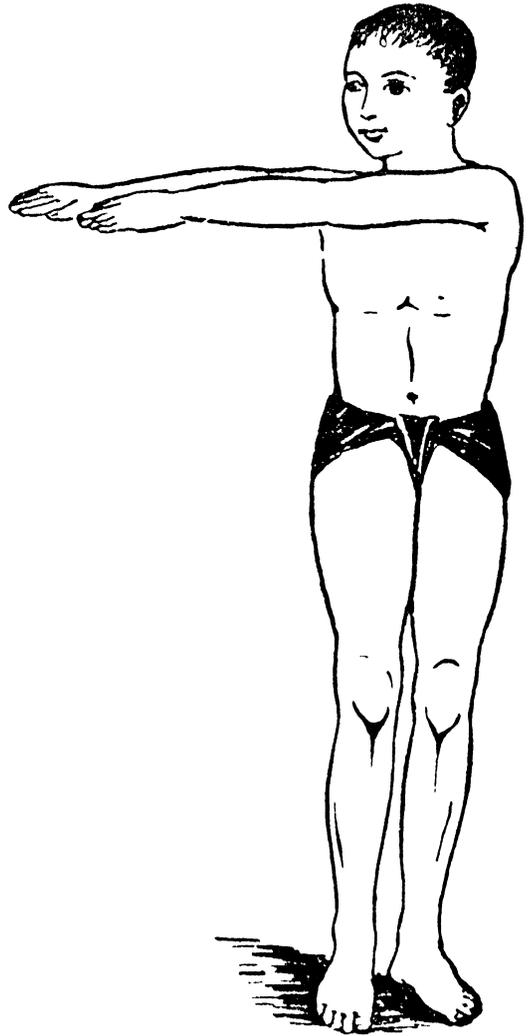
इससे ऊपरी रीढ़ के अगल-बगल, कन्धों और ऊपरी बांह की मांसपेशियां मज़बूत होंगी।

(७) एड़ियों को मिलाते हुए सीधे खड़े हो जाइए। दोनों हाथों को कंधों के बराबर अगल-बग़ल में कंधों की ही सीध में रखिए। अब बायें हाथ को नीचे बायें घुटने तक लाइए और दाहिने हाथ को ऊपर ले जाइए। फिर सीधे खड़े हों और हाथों को कंधों की सीध में लाकर दाहिने हाथ को नीचे दाहिने घुटने तक लाइए और बायें हाथ को ऊपर ले जाइए। इस कसरत को तीन बार से शुरू कर के पन्द्रह बार तक कर सकते हैं।

इससे कमर के आस-पास की मांसपेशियां और हाथ पर ज़ोर पड़ेगा। साथ ही रीढ़ भी तनेगी और मज़बूत होगी।

(८) हाथों को ऊपर फैलाते हुए सीधे खड़े हो जाइए। सामने झुकिए और फिर हाथों को ऊपर-ऊपर गोलाकार में ले जाकर धड़को जहां तक बन सके पीछे झुकाइए। फिर वापस ले जाइए। पहले-पहल दो बार से ही शुरू कीजिए।
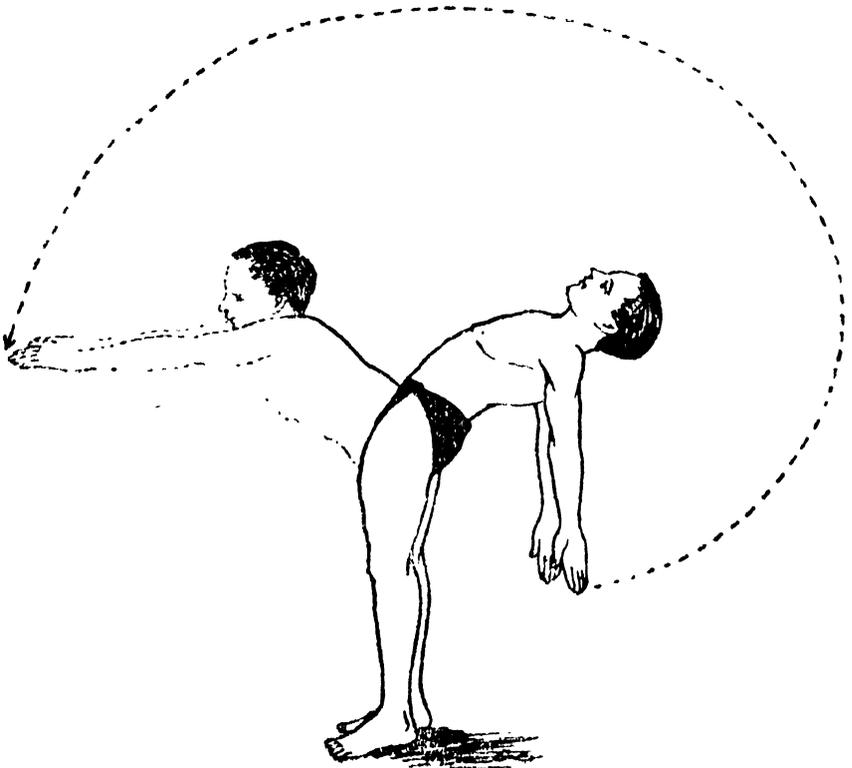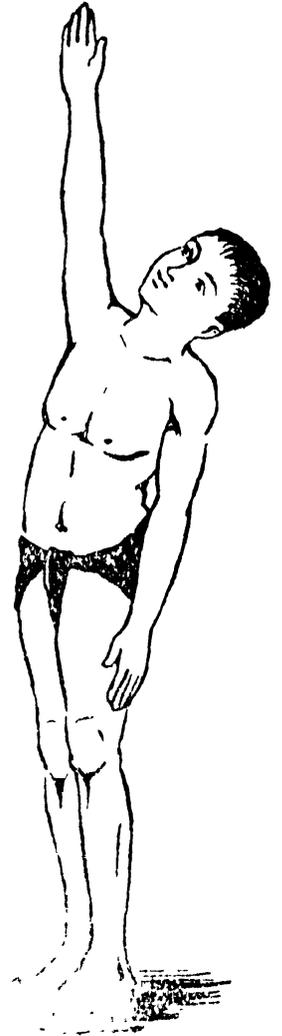
इससे रीढ़, सीना, कमर और पेड़ू की मांसपेशियां मज़बूत होती हैं।

इतनी कसरतों से शरीर के अन्दर के कल-पुर्जे ठीक रहेंगे और शरीर भी सुडौल रहेगा। लेकिन अगर तीन कसरतें और भी कर ली जांय तो अच्छा है। वे नीचे दी जाती हैं:—

(९) आराम से सीधे खड़े हो जाइए। पहले दाहिने हाथ की मुट्ठी बांध कर उसको सख्त करते जाइए और साथ ही कोहनी को मोड़ते हुए मुट्ठी को बहुत धीरे-धीरे कंधे की तरफ़ लाइए। फिर मुट्ठी को सख्त करते जाइए और वापस ले जाकर हाथ को बिल्कुल सीधा कर लीजिए। शुरू शुरू में एक-दो बार दाहिने हाथ से इस तरह कर फिर उतनी ही बार बांयें हाथ की मुट्ठी बांध कर बहुत धीरे धीरे बांयें कंधे को छूइए। इसमें जैसे-जैसे हाथ ऊपर जाय या नीचे आवे वैसे ही वैसे मुट्ठी को सख्त औ उससे भी ज्यादा सख्त करन की कोशिश कीजिए और हाथ को बहुत धीरे-धीरे ऊपर या नीचे लाइए। हाथ कँपते हुए ऊपर या नीचे जायँगे। पहले एक या दो बार से शुरू कर दस-बारह बार तक ले जाना चाहिए। इस कसरत से हाथ मज़बूत होंगे और बांह की मांसपेशियां बनेंगी। भीतर से ताक़त बढ़ेगी।
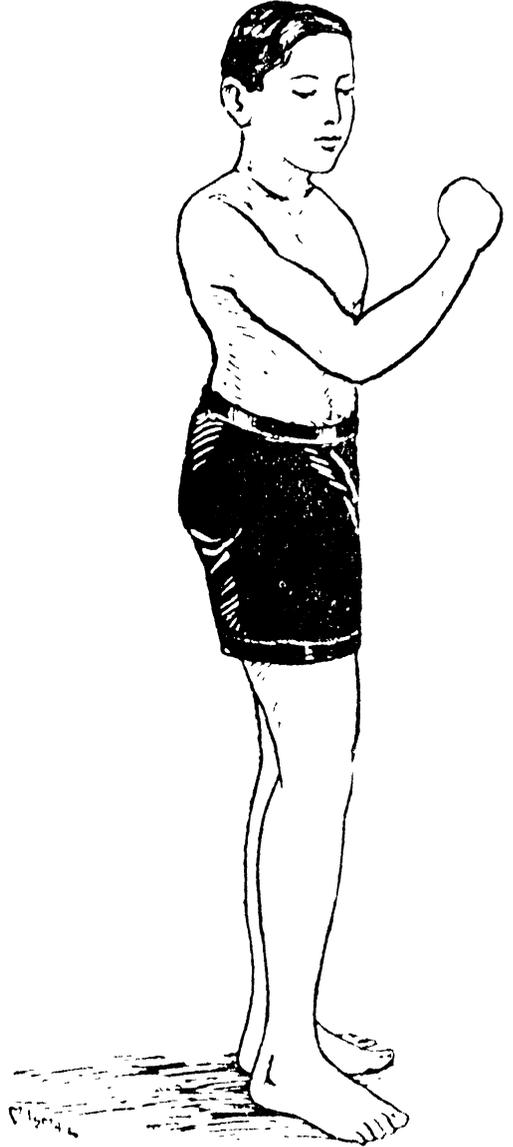
(१०) इसी तरह एक और कसरत से पैरों को भी मज़बूत किया जा सकता है, लेकिन उम्मेद की जाती है कि कसरत के साथ-साथ टहलना भी जारी रहेगा और टहलने से पैर मज़बूत होंगे ही। फिर भी अगर इच्छा हो तो

पैरों की कसरत इस तरह कीजिए। खड़े होकर आराम से हाथों को कमर पर रखिए। फिर बायें पैर पर खड़े होकर दाहिने पैर को सीधा सामने ले
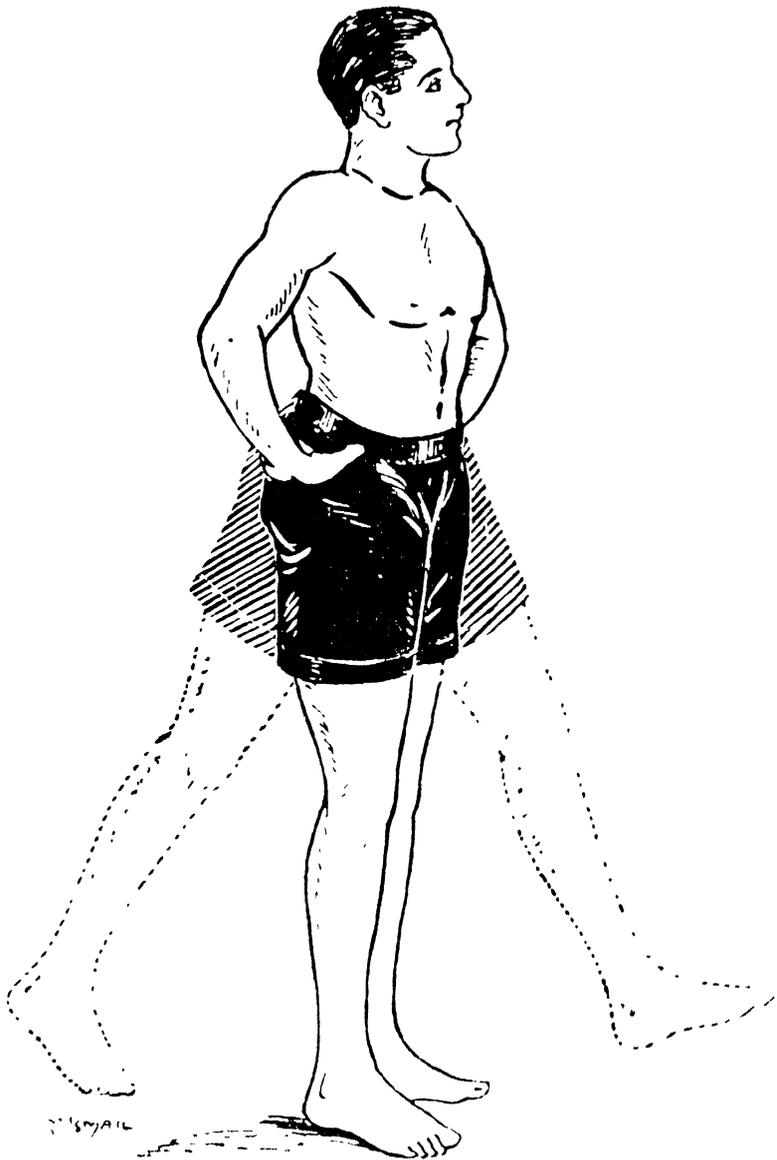
जाइए और सामने से वापस लाकर जहां तक हो सके सीधा पीछे ले जाइए। ६-७ बार इस तरह कर के दाहिने पैर पर खड़े हो जाइए और बायें पैर को उतनी ही बार आगे-पीछे ले जाइए। धीरे-धीरे कसरतों की संख्या बढ़ाइए।

(११) गर्दन की कसरत भी जरूरी है, क्योंकि गर्दन से होकर बहुत सी जरूरी नाड़ियां सिर से आती और वापस जाती हैं।

तस्वीर में बताए गए की तरह सिर को (अ) ऊपर नीचे और (ब) दायें-बायें ले जाइए। शुरू-शुरू में दस-दस बार, या इससे भी कम, हरकतें काफ़ी हैं; फिर धीरे-धीरे बढ़ा कर चालीस-चालीस बार तक हर एक को कर सकते हैं।

क़ब्ज़ दूर करने की ख़ास कसरतें--

अगर जोरदार क़ब्ज़ की शिकायत रहती हो तो आंख खुलते ही तीन छटांक पानी धीरे-धीरे पीकर बिस्तर पर लेटे-लेटे ये कसरतें कीजिए।

(१) किसी भी हाथ की तलहथी को नाभी पर रख कर नाभी और पेड़ू के आस-पास के हिस्से को तलहथी से दबाते हुए तलहथी से ही गोल चक्कर लगाइए। तलहथी एक ही जगह पर रहे पर घुमाई जाय। एक मिनट इस तरह कर के बंधी मुट्ठी को बड़ी आंत के रास्ते पर दाहिनी तरफ़ से ऊपर, फिर दाहिनी तरफ़ से बायीं तरफ़ को और अन्त में बायीं तरफ़ से नीचे लाइए। पहले बड़ी आंत के रास्ते को ठीक ठीक समझ लीजिए (भोजन-प्रणाली वाली तस्वीर देखिए।) उसी रास्ते पर मुट्ठी को गड़ाते हुए उसे घुमा-घुमा कर इधर से उधर ले जाइए। इस तरह एक मिनट कर के दोनों तलहथियों के भीतरी किनारों से सारे पेड़ू को हलके-हलके लेकिन तेजी से (कटार की मार की तरह) पीटिए। यह भी एक ही मिनट के लिए होगा। अब फिर एक बार तीन छटांक पानी धीरे-धीरे पीकर ऊपर वाले क्रम को दुहरा जाइए और तब नीचे दी कसरत कीजिए। जिसे अपेन्डिसाइटिस की तरह पेट-पेड़ू का कठिन रोग है उसे कसरत नं० १ न करनी चाहिए।

(२) शरीर को सिर्फ़ सिर, कंधे और पैरों के सहारे बिस्तर पर रखते हुए कमर के ऊपर-नीचे के हिस्सों को काफ़ी ऊपर उठा कर पहले दाहिनी और

फिर बाईं तरफ़ लगातार १०-१० बार ले जाइए। इसके बाद टट्टी जाइए। दस दिन के अन्दर-अन्दर बहुत लाभ मालूम होगा।

(३) एक और कसरत बहुत अच्छी है। पहले एक प्याला सहने लायक़ गरम पानी पीजिए। फिर खड़े होकर कमर के पास से सामने ज़रा झुक जाइए। अब दोनों हाथों को पीछे ले जाकर घुटने के पीछे के गड्ढे के ऊपर तलहथियों को जोड़ लीजिए और इस तरह कसी-कसाई हालत में अपने को ऊपर खींचकर सीधा करने की कोशिश कीजिए। बिल्कुल सीधा तो न हो सकेंगे पर पेड़ू और पेट पर ज़ोर पड़ेगा। इस तरह खींच कर तुरन्त ढील दीजिए और इसी तरह तीन-चार बार करके १-२ मिनट रुक कर फिर गरम पानी पीजिए और यही कसरत कीजिए। फिर १-२ मिनट रुक कर गरम पानी पीजिए और कसरतों को दुहराइए। आश्चर्यजनक लाभ होगा।

ऊपर बताया गया है कि इन कसरतों को थोड़े-थोड़े से ही शुरू करना चाहिए। जो कमज़ोर हैं उन्हें चाहिए कि वे दो दिनों में इन कसरतों को पूरा करें, यानी ५-६ कसरतें आज करें और दूसरी ५-६ कसरतें कल।

इन कसरतों में दो आसन भी बताये गये हैं। ये दोनों ही बहुत फ़ायदेमंद हैं, लेकिन इनको धीरे-धीरे सीखना चाहिए। जब ये आ जांय या अगर पहले से ही आते हों तो और सब कसरतों को करके १५ मिनट का अन्तर देकर इन आसनों को अलग से ही करना चाहिए। सुबह या शाम को इन दो आसनों को टहलने के बाद करना चाहिए और दूसरे समय और सब कसरतें करनी चाहिए।

याद रखिए—गहरी सांस, भोजन-सुधार और कसरत, बस यही तीन चीज़ें शरीर को अच्छी हालत में रख सकती हैं।

औरतों के लिए कसरतें—

ऊपर बताई कसरतें औरतें भी कर सकती हैं, लेकिन उनके लिए और कसरतें आगे बताई जायँगी।

आराम

शरीर को ठीक रखने के लिए आराम भी बहुत ज़रूरी है। आराम का मतलब काहिल बनकर लेटे रहना नहीं है बल्कि आराम का मतलब काम

और मेहनत के खिचाव के बाद शरीर को बिल्कुल ढीला करना और छुट्टी देना है। खिचाव की हालत में बने रहने से शरीर जल्दी ही घिस जायगा। आराम सब के लिए जरूरी है, लेकिन पुराने रोग के रोगियों के लिए यह एक खास दवा है।

सच्चा आराम सोने के ही समय मिलता है। उसी समय शरीर का खिंचाव बिल्कुल ढीला हो जाता है और दिन भर के काम से टूटे-फूटे कल-पुर्जों की मरम्मत होती है। सोने के समय में ही जीवन-शक्ति अपने दैवी भंडार से उतर कर शरीर में प्रवेश करती है। लेकिन हम लोग सोना नहीं जानते। हममें से बहुत से सोते नहीं, ग़ाफ़िल और बे-होश होकर पड़े रहते हैं। सोने की हालत में भी हम लोग खिचे और तने रहते हैं। हम लोगों में कुछ ऐसी अस्वाभाविकता आ गई है कि हमारे बहुत से अंग ऐंठे और कड़े रहते हैं, जिससे पूरा-पूरा आराम नहीं मिल पाता। जरा बच्चों का सोना देखिए। उनके अंग अंग ढीले होकर 'लोआ-पोआ' से हो जाते हैं और उनके बदन की छाप बिस्तर पर पड़ जाती है। हम लोगों को भी इसी तरह सोना चाहिए, और अगर हम उसे भूल गये हैं तो फिर से सीखना चाहिए।

सोने के सम्बन्ध में कुछ बातों को याद रखना चाहिए।

(१) खाने के तुरन्त बाद ही सोना ठीक नहीं। कम से कम दो घंटे का अन्तर देना जरूरी है।

(२) सोने से पहले पेशाब कर लेना, थोड़ा पानी पी लेना और चेहरा अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

(३) बिस्तर न बहुत कड़ा हो और न बहुत मुलायम।

(४) खाट तनी हो। अगर तख़्त (चौकी) हो तो अच्छा है। तख़्त पर रीढ़ अच्छी हालत में रहती है।

(५) बिस्तर साफ़ हो और बदन पर धोती या जांघिया के अलावा या तो कुछ कपड़े न हों, या अगर हों तो बहुत ढीले और साफ़ हों।

(६) जाड़ों में रजाई और कम्बल साफ़ हों। मुंह ढका न हो।

(७) बाईं करवट लेटकर सोना चाहिए। बाईं करवट लेटकर दाहिनी टांग को बाईं टांग के पार आगे को रखिए और बायें हाथ को

दाहिने कन्धे पर रखिए, फिर आराम से बदन को ढीला करके सोइए। बदन इतना ढीला हो जाय कि उसके किसी अंग में तनाव या सख्ती न रहे।

सारी रात बाईं करवट न सोना चाहिए, क्योंकि उससे पेट के अन्दर की थैली और दिल, जो दोनों बाईं तरफ़ रहते हैं, दबे रहते हैं। चित्त तो सोना ही न चाहिए।

(८) सोते समय किसी तरह की चिंता मन में न रहे। परमात्मा का ध्यान करते हुए या किसी अच्छे विषय को सोचते हुए सो जाइए।

(९) छः से आठ घंटे सोना ज़रूरी है, लेकिन किसी-किसी को इससे कम समय में ही पूरा आराम मिल जाता है।

(१०) जितना सबेरे हो सके सो जाइए और जितना सबेरे हो सके उठ जाइए और पाखाना जाने, मुंह-हाथ धोने, कसरत करने और नहाने इत्यादि के काम में लग जाइए। १२ बजे रात के पहले एक घंटे की नींद १२ बजे के बाद दो घंटे की नींद के बराबर है।

खिंचे-तने न रहिए--

सिर्फ सोने में ही नहीं, हम लोग और बातों में भी बेकार खिंचे-तने रहते हैं। लिखते समय हम लोग हाथों से ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर लगाते हैं और सिर्फ़ हाथों को ही नहीं तनते--मुंह, नाक भी बनाये और खींचे रहते हैं और दूसरे अंगों को भी टेढ़ा-मेढ़ा किये रहते हैं। कुर्सी पर बैठते समय हम लोग इस तरह बैठते हैं मानो कुर्सी को ज़ोर से पकड़े हुए हों। कहने की ज़रूरत नहीं कि ये सभी हरकतें ख़राब और हानिकर (नुक़सानदेह) हैं, क्योंकि इनमें बेकार ताक़त खर्च होती है। इसी तरह बैठ कर पैरों को हिलाते रहना, सिर को बेकार इधर से उधर करना इत्यादि ख़राब हरकतें हैं। काम के समय जितना ज़ोर ज़रूरी हो लगाइए, लेकिन जब काम न हो तो बेकार ताक़त और उसके साथ जीवन-शक्ति का ह्रास न कीजिए।

इस बीसवीं सदी में हम लोग बराबर ही--चलते-फिरते, खाते-पीते उठते-बैठते, लिखते-पढ़ते, बोलते-सुनते, सोते-जागते, बराबर ही--तनाव की हालत में रहते हैं। कहीं जाना होता है या रेलगाड़ी पर चढ़ना होता है या और कोई काम करना होता है तो दो घंटे पहले से ही हम तनाव की हालत में हो जाते हैं। इस हालत में यह ज़रूरी है कि शरीर को जब कभी ढीला

स्टेनली लीफ़

इन दिनों इंगलैंड के एक प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सक

करके आराम दे दिया जाय। चालीस साल की उम्र पार करने के बाद यह आराम जरूरी हो जाता है।

पूरे आराम के लिए शरीर को शिथिल करना जानना चाहिए और इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता है। अभ्यास यह है-।

दिन में कसरत करने या टहलने या भोजन से पहले और रात में सोने से पहले भी आराम से पीठ के बल तख्त या सीतलपाटी पर लेट जाइए। तकिया न हो, अगर हो तो बहुत ऊँचा नहीं। फिर तलवे से लेकर चोटी तक अंग-अंग को ढीला कर दीजिए और आंखों को बन्द करके शान्त हो जाइए। नियम यह है कि जिस अंग को सोचिएगा वही ढीला हो जायगा। इसलिए पैर की उँगलियों से शुरू कीजिए और सोचिए कि वे ढीले हो गये। पहले बायें पैर की उँगलियां, फिर तलवा, फिर एँड़ी, फिर टखना, फिर निचली टांग, फिर घुटना, फिर जांघ, फिर कमर। इसी तरह दाहिने पैर के बारे में भी सोचिए। फिर कमर और पेड़ू के बारे में सोचिए। सोचिए कि वे ढीले और शिथिल हो रहे हैं। वे वैसे ही होते जायँगे। अब सांस भी गहरी हो जायगी। अब एक-एक करके दोनों हाथों के विविध भागों को सोचिए। वे ढीले हो जायँगे। इसके बाद पेट, सीना, पीठ, रीढ़ और कंधों को सोचिए। पीठ और रीढ़ को बिलकुल शिथिल और ढीला कर देना चाहिए। अब गर्दन, चेहरा और सिर को सोचिए और उन्हें ढीला कर दीजिए। मुंह में जीभ भी ढीली रहे। इस अभ्यास से ज्यादा से ज्यादा ३-४ मिनट लगेंगे। इससे अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा। (कुछ दिनों के बाद लेटते ही सारा शरीर शिथिल और ढीला हो जाया करेगा) इस सुख और शान्ति की अवस्था में ३-४ मिनट रहिए। फिर एक टांग को दूसरी टांग पर (टखनों के पास) चढ़ा दीजिए और दोनों हाथों को पेट के गड्ढे के पास (जहां पसली की हड्डियां अलग होती हैं) उँगलियों को उँगलियों में फँसाकर जोड़ लीजिए। ऐसा करने से शरीर से बाहर निकलने वाली विद्युत् (बिजली की) शक्ति शरीर के अन्दर ही रह जायगी। टांगों को एक-दूसरे पर चढ़ाये रहने और हाथों को जोड़े रहने के समय टांग और हाथ तनने न पावें। उस समय भी सारा शरीर शिथिल रहे, इसका ध्यान रखना चाहिए। इस अवस्था में भी ५ मिनट रहकर शान्ति और शक्ति का संचय कीजिए। इसके बाद उसी हालत में सिर से लेकर पैर की उँगलियों तक एक के बाद दूसरे अंग को सोचिए। सोचिए कि वे शिथिल हैं और उनमें रक्त-संचार अच्छी तरह हो रहा है। इस बार तो

बाहरी अंग और भीतरी अवयव (दिमाग़, सुषुम्ना, दांतों की जड़, फेफड़े, दिल, आमाशय, आंतें, यकृत, प्लीहा, मूत्राशय) दोनों ही के बारे में सोचिए। इस अन्तिम अभ्यास में भी पहले ३-४ मिनट लगेंगे, और पांच-सात दिनों के अभ्यास में तीनों क्रियाएं ठीक-ठीक होने लगेंगी। शुरू-शुरू में पूरे अभ्यास में १५ मिनट लग सकते हैं। लेकिन एक ही महीने में आश्चर्य-जनक लाभ होगा। पहले-पहल पहली ही क्रिया में नींद आ जाती है, पर कोशिश करके तीनों क्रियाओं को पूरा करके ही सोना चाहिए। इस अभ्यास के लिए सबसे अच्छा समय है दोपहर में भोजन के और रात में सोने से पहले, लेकिन किसी भी समय इसे कर सकते हैं। यह अभ्यास चित लेटकर किया जाता है, पर अगर सोने से पहले किया जाय तो इसे समाप्त कर बाईं करवट हो जाना चाहिए। करवट बदलने पर भी शरीर शिथिल ही रहे।

यह अभ्यास जीर्ण रोग वालों के लिए बहुत आवश्यक है। जो स्वयं नहीं सोच सकते वे सिर्फ़ लेट जांय और दूसरा कोई अंगों का नाम लेता जाय और कहे कि 'यह अंग शिथिल हो रहा है, तुम शान्ति-पूर्वक आराम कर रहे हो, तुम अच्छी तरह गहरी सांस ले रहे हो, इत्यादि।'

आराम पर पूरा ध्यान देना चाहिए, तभी कसरत और मेहनत बन सकेंगी। साथ ही यह भी सच है कि जो कसरत और मेहनत करता है उसे काफ़ी आराम भी चाहिए।

मन को ठीक रखना

मन को ठीक रखना

आदमी शरीर नहीं है--

मालूम नहीं कि कितने आदमी इस बात को समझते होंगे कि वे अपने शरीर ही नहीं हैं। मगर हम किसी को देखते हैं तो समझते हैं कि उसका ऊपरी शरीर, जिसे हम देख सकते हैं, वही आदमी है। लेकिन सच्ची बात यह है कि शरीर आदमी की सिर्फ़ ऊपरी, बाहरी, पोशाक है। आदमी तो परमात्मा का अंश 'जीवात्मा' है, वह 'चेतन, अ-मल, सहज सुख-राशी' है, और उसके काम के लिए एक ही पोशाक नहीं, सिर्फ़ मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश तत्व का बना हुआ यह स्थूल शरीर ही नहीं, बल्कि और भी पोशाक, और भी शरीर हैं, जिन्हें हम इन आंखों से नहीं देख सकते। इन पोशाकों--शरीरों--में दो शरीर ऐसे हैं, जो आदमी के बड़े काम के हैं। इनमें से एक भाव का शरीर है और दूसरा विचार का। भाव प्रेम, घृणा (नफ़रत), ईर्ष्या (डाह), क्रोध (गुस्सा) इत्यादि को कहते हैं। विचार वह है, जिसके सहारे हम सोचते हैं, अच्छी या बुरी बातों के लिए उपाय रचते हैं और गहरी से गहरी (लेकिन सांसारिक ही) ज्ञान और विज्ञान की बातों का पता लगाते हैं। ('परा' ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान, के लिए तो बुद्धि ही ही अलग होती है, जो समय और सुपात्र में स्वयं ही जाग्रत होती है।) भाव विचार से अलग है। भाव किसी चीज़ के लिए इच्छा पैदा करता है। और विचार उस चीज़ के पाने की तरकीब (उपाय) ढूंढ़ निकालता है। भाव के कारण दूसरों की मदद करने की इच्छा होती है और तब विचार के सहारे धर्मशाले, अनाथालय, विद्यालय इत्यादि बनते हैं। फिर भाव के ही कारण दूसरों की सम्पत्ति छीन लेने की इच्छा होती है और तब उसकी पूर्ति के लिए विचार के सहारे मामूली लड़ाई से लेकर घोर से घोर युद्ध शुरू होते हैं, जिनमें लाखों-करोड़ों जानें जाती हैं। इस तरह इस संसार में रहने और काम करने के लिए असल आदमी--जीवात्मा--के पास मामूली तौर से तीन शरीर हैं--(१) स्थूल (भू-लौकिक) शरीर, (२) भाव (भुवर्लौकिक) शरीर और (३) विचार (स्वर्ग लौकिक) शरीर। इसके अलावा और पोशाकें--शरीर--भी हैं, पर उनसे यहां कुछ मतलब नहीं।

आदमी मालिक है और यह तीनों शरीर उसके नौकर हैं। अगर नौकर मालिक के हुक्म में रहें तब ठीक है, लेकिन अगर मालिक ही नौकरों के हुक्म और बहकाने में रहे तो बड़ी गड़बड़ी पैदा हो। हम में से बहुत से इन नौकरों के बहकाने में रहते हैं और इसी से दुख भोगते हैं। इसकी एक मोटी मिसाल यह है कि हम अपनी इच्छाओं को करने के लिए सभी तरह की चीजें खा बैठते हैं और बहुत तरह प्रकृति के नियमों को तोड़ते हैं, जिसका नतीजा यह होता हैं कि तरह-तरह की बीमारियों के, तरह-तरह की आधि-व्याधि और यातनाओं के, शिकार बनते हैं। इसलिए इन नौकरों को वश में रखना चाहिए।

इन तीनों शरीरों के बारे में बहुत सी जानने की बातें हैं, पर यहां सिर्फ़ इतना ही जानना जरूरी है कि भाव प्रेरित करता है, विचार उपाय बताता है और इन दोनों के फेर में पड़कर स्थूल शरीर अनुचित काम करता है, जिससे बिचारा सच्चा मालिक—जीवात्मा, आदमी—बंधन में पड़ जाता है। अगर आदमी अपने को जाने और याद रखे कि मैं जीवात्मा हूँ और इन तीनों का मालिक हूँ तो वह धोखे में नहीं पड़ सकता। अब जो बातें यहां बताई जायँगी उनमें तीनों शरीर के अलग अलग नाम न लिये जाकर सिर्फ़ शरीर, जिसका मतलब स्थूल शरीर है, और मन जिसका आशय भाव और विचार दोनों से रहेगा, कहे जायँगे।

रोग का सच्चा कारण—

इस किताब में बताया गया है कि रोग का कारण विकार है, लेकिन अगर सच पूछिए तो रोग का सच्चा कारण शरीर का विकार नहीं मन का विकार है। मन के विकार से ही ऐसी ऐसी बातें होती हैं कि शरीर में विकार आ जाता है। इसलिए अगर कोई बीमारी से छुटकारा पाकर तनदुरुस्त होना चाहता है तो उसे अपने मन को ठीक करना चाहिए।

सच्चा चिकित्सक—

इस किताब में यह भी बताया गया है कि रोग को, खासकर पुराने रोगों (chronic diseases) को, दूर करने के लिए सिर्फ़ रोग के लक्षण या रोग की जगह का ही इलाज नहीं बल्कि सारे शरीर का इलाज करना चाहिए। अब बताया जाता है कि रोग को दूर करने के लिए सिर्फ़ शरीर का ही नहीं बल्कि शरीर और मन दोनों का इलाज करना चाहिए। सच्चा चिकित्सक वही है, जो सिर्फ़ लक्षणों को नहीं, सिर्फ़ खास-खास अंगों

को नहीं, सिर्फ़ सारे शरीर को ही नहीं, बल्कि शरीर और मन, दोनों को देख कर अर्थात् पूरे मनुष्य को जानकर, अपनी चिकित्सा-विधि ठीक करता है । पुराने रोगों में, जिनमें रोगी सभी तरह कमजोर पड़ जाता है, इसकी ख़ास ज़रूरत पड़ती है ।

शरीर और मन--

शरीर का मन से गहरा सम्बन्ध है । शरीर मन की ही प्रेरणा में रहता है । मन के विकारों का असर उसी समय शरीर पर पड़ता है । जानने वाले बताते हैं कि 'डर' का असर ख़ून के दौरान (रक्त-संचार) पर वैसा ही पड़ता है, जैसा कि पानी पर बहुत ज़्यादा ठंढ का। जिस तरह बहुत ठंढ से पानी जम जाता है उसी तरह डर से ख़ून जम जाता है और शरीर के अन्दर उसका आना-जाना ठी-ठीक नहीं होता । इसी तरह क्रोध से शरीर में ऐसी गर्मी (दाह) पैदा होती है कि शरीर उससे अन्दर ही अन्दर जल-झुलस सा जाता है । क्रोध के कारण दिल की धड़कन बन्द हो सकती है और आदमी मर भी सकता है । बात यह है कि मन और शरीर एक ही ढांचे के दो हिस्से हैं और दोनों का असर एक दूसरे पर पड़ता है । ज़्यादातर पहले मन के ही असर से शरीर में खराबी आती है और फिर शरीर की ख़राबी से मन की ख़राबी पैदा होती है और फिर मन की ख़राबी से शरीर ख़राब होता है । इस तरह यह अटूट चक्कर भी बना रहता है । एक जानने वाले ने बताया है कि मन की ख़राबी के कारण नीचे लिखी बीमारियां होती हैं :--

(१) दिल की बीमारियां

(२) सांस की बीमारियां

(३) हाज़मे (पाचन) से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियां ।

कुछ मन के विकार--

मन के विकारों की सूची देने की ज़रूरत नहीं । काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मात्सर्य के अन्दर सभी तरह के विकार आ जाते हैं और हम लोग इनको अच्छी तरह जानते भी हैं । डर और क्रोध के बारे में ऊपर बताया जा चुका है कि उनसे कैसी ख़राबी होती है । यहां पर सिर्फ़ दो-चार तरह के विकारों का और ज़िक्र किया जायगा ।

एक विकार है अपने आप पर तरस खाना--अपनी हालत को बहुत ही गया-बीता समझना । ऐसा समझना कि हम बहुत सताये गये हैं, दुखी हैं, या ख़राब हैं । यह विकार मन का क्षयी रोग, (यक्ष्मा--Phthisis) है, और इसका शरीर पर बुरा असर पड़ता है ।

बराबर चिन्ता करते रहना दूसरा विकार है । चिन्ता का मतलब किसी उपाय को सोच निकालना नहीं है । चिन्ता का मतलब यों ही उधेड़-बुन में पड़े रहना और बिना किसी निश्चय (पक्की बात) पर पहुँचे हुए दिमाग़ खखोरना है । यह मन का घुन है । चिन्ता करने वाले का मन खोखला सा बना रहता है ।

मन का सब से ख़राब विकार है अपनी निश्चित (तय की हुई) बात पर अमल न करना--जैसे, मैंने ठीक किया कि मैं हर रोज़ कसरत करूँगा पर मैं कसरत नहीं करता । अपने सिद्धान्तों को अपने जीवन का अंग नहीं बनाना मानसिक अपच (mental dyspepsia) या ज्ञान का अजीर्ण है । जो आदमी अपनी तय की हुई बात पर अमल नहीं करता उसे शारीरिक अपच भी जरूर रहेगा ।

इसी तरह सभी विकारों के बारे में कुछ न कुछ कहा जा सकता है और सब का बुरा प्रभाव शरीर पर पड़ता है । जो प्रगतिशील नहीं है वह गठिया रोग का शिकार हो सकता है । जो दूसरों की बहुत बुराई सोचता है उसे ख़ून की बीमारियां हो सकती हैं, इत्यादि, इत्यादि । देखा गया है कि जो क़ब्ज़ से ग्रस्त है वह दूसरों का बकाया भी जल्दी नहीं चुकाता और जो बेढंगे तौर से रुपये-पैसे फेंकता है वह ब्रह्मचर्य भंग करने में नहीं हिचकता; सचमुच मन और शरीर का बहुत घना संबंध है।

मन को कैसे ठीक किया जाय--

ठीक उसी तरह जिस तरह शरीर को ठीक किया जाता है। अचूक चिकित्सा की विधि के अनुसार हम रोगों को दूर करने के लिए रोगों से नहीं लड़ते बल्कि शरीर को शुद्ध और सबल करते हैं, जिससे रोग खुद ही अलग हो जाता है। मन को ठीक करने के लिए भी हमें विकारों से लड़ना न चाहिए, बल्कि अपनी असलियत और बड़प्पन को याद करना और याद रखना चाहिए, जिससे मन स्वयं ही काबू में रहने लगे। जब हम यह भूल जाते हैं कि हम जीवात्मा हैं, महान हैं, और शरीर और मन न होते हुए दोनों मालिक

हैं, तभी मन की बदमाशी से शरीर बिगड़ता है। (असल में मन बड़ा नौकर है और शरीर छोटा। छोटा बड़े के बहकावे में रहता है।) अगर अपनी सचाई और यह कि 'हम कौन हैं' बराबर याद रहे तो शरीर और मन दोनों ही हुक्म मानने वाले नौकर की तरह अपना-अपना काम करेंगे। लेकिन यह याद रखना वैसा आसान नहीं है, जैसा कि अभी मालूम हो रहा होगा। पुरानी आदत के कारण हम अपने को मन का नौकर ही बनाये रखना पसंद करते हैं। पुराना संस्कार भी हमारे रास्ते में अड़चनें खड़ा करता है। फिर भी अपने को बार-बार याद दिलाने से--मन से लड़कर नहीं--हम अपनी असलियत को ठीक-ठीक जान लेंगे, जिससे गड़बड़ी न होगी। इसके वास्ते हर रोज़ सुबह उठने के तुरन्त बाद ही पर लेटे ही लेटे, रात में सोने से पहिले लेटे लेटे (ख़ास कर पिछले अध्याय में बताये गये शरीर को शिथिल करने के अभ्यास की अन्तिम क्रिया के अन्त में) और फिर बीच-बीच में दिन में भी जभी बन सके तभी मन में कहना और समझना चाहिए कि मैं 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशी' हूँ। इस आशय का एक बहुत सुंदर श्लोक यों है--

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानंदरूपोऽहं नित्यमुक्तस्स्वभाववान्॥

अर्थात्

मैं दिव्य हूँ, दूसरा कुछ नहीं हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, दुख-शोक का भुगतनेवाला नहीं हूँ! मैं सच्चिदानंद का रूप हूँ, और स्वभाव से ही मुक्त हूँ!

इस तरह अपने को बार-बार याद दिलाना जरूरी है। बहुत दिनों तक मन गड़बड़ी करता रह जायगा, लेकिन अगर आदमी तत्परता से अपनी असलियत की याद अपने आपको दिलाता रहेगा तो थोड़े ही दिनों में उसकी जीत जरूर होगी। इस याद के साथ कोशिश करनी चाहिए कि अपने दिन के कामों में अपनी तै की हुई बातों पर अमल भी किया जाय।

यह तो हुई आदमी की अपनी कोशिश। लेकिन बीमारी की हालत में रोगी अपनी मदद आप करने के लायक़ नहीं रहता और तब चिकित्सक और सम्बन्धियों का काम है कि वे बीच-बीच में रोगी को समझावें और जिस मन के विकार से उसका रोग सम्बन्ध रखता हो उसकी ओर से रोगी का ध्यान होशियारी से खींचते हुए उसके दिल में उत्साह और ताक़त भरें। सच्ची समझ से ही मन का विकार दूर हो सकता है।

जो सच्ची तनदुरुस्ती हासिल करना चाहता है उसे अपने मन को ठीक रखना ही पड़ेगा।

पुराने रोग वालों के लिए--

पुराने रोग वालों के लिए यह बहुत फ़ायदेमंद होगा कि वे रात और सुबह में अपने आप को अपनी असलियत की याद दिलाते हुए भी यह सोचें कि 'अब मैं हर रोज़ धीरे-धीरे अच्छा होता जा रहा हूँ, सभी तरह तरक्की कर रहा हूँ, जल्दी ही तनदुरुस्त और तगड़ा हो जाऊँगा।' सोचते हुए बहुत दिमागी ताक़त न लगानी चाहिए, लेकिन फिर भी ऐसा सोचना चाहिए कि वह दिमाग़ में पैवस्त हो जाय। सोचते-सोचते सो जाना चाहिए और आंख खुलने के बाद ही सोचने लग जाना चाहिए। और नियमों के पालन के साथ इसका असर जादू सा होगा। याद रहे कि जो रोगी हताश और निरुत्साह रहते हैं वे जल्दी अच्छे नहीं होते।

बच्चों का पालन-पोषण*

मां-बाप का कर्तव्य; पैदाइश के बाद बच्चे की देख-रेख; बढ़ते-बच्चों का भोजन; हवा शरीर की सफ़ाई और कपड़े; बच्चों के लिए कसरत; बाल-रोगों की चिकित्सा

---

* यह खंड लेखक की पुत्री श्रीमती सुभद्रा भटनागर के लेखों के आधार पर तैयार किया गया है।

माँ-बाप का कर्तव्य

बच्चों की तनदुरुस्ती बनाना या बिगाड़ना माता-पिता के ही हाथ में है। माता-पिता यदि चाहें तो बच्चे को निरोग और तगड़ा बना सकते हैं या उसके जन्म भर रोगी और कमज़ोर बने रहने का भी उपाय कर सकते हैं।

यह सच है कि कोई माता-पिता नहीं चाहता कि उसका बच्चा किसी तरह का कष्ट भोगे या निर्जीव सा होकर संसार में रहे, लेकिन नहीं चाहते हुए भी वे अपने ही हाथों सिर्फ़ अज्ञान के कारण अपने बच्चों को कमज़ोर और निकम्मा बना देते हैं। गर्भाधान से पहले माता-पिता की मानसिक और शारीरिक अवस्था कैसी थी और जब बच्चा गर्भ में था तब मां किस तरह रहती, खाती-पीती थी, यह तो एक अलग महत्वपूर्ण विषय है, लेकिन जन्म के बाद भी बच्चे के लालन-पालन में रोज़ ही बहुत सी ऐसी बातें होती हैं, जो उसके लिए अच्छी नहीं हैं और जिनसे बच्चे की तनदुरुस्ती हर रोज़ ख़राब होती जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिता के अज्ञान का फल बिचारा बच्चा जन्म भर भोगता है।

आजकल के अँगरेजी ख़याल वाले और रुपये पैसे वाले लोग अपने बच्चों के लिए बहुत ख़र्च करते हैं और अपनी समझ से उसके पालन-पोषण का बहुत अच्छा प्रबन्ध करते हैं। लेकिन वे बहुत तरह की अप्राकृतिक खाने या पीने की चीजें अंगरेजी दुकानों से ख़रीद लाते हैं। साथ ही कोई न कोई दवा, जिसे वे बच्चे के लिये हितकर और पुष्टिकारक समझते हैं, पिलाया करते हैं। उसके दूध पिलाने का समय भी अपनी समझ में बहुत अच्छा निश्चित कर लेते हैं--दिन में घंटे-घंटे या दो-दो घंटे और रात में भी तीन-तीन या चार-चार घंटे पर। इसके अलावा कुछ घरों में किसी न किसी तरह की शराब भी सदा मौजूद रहती है। बच्चे को जहां जरा सी सर्दी-जुकाम हुआ कि उसे चम्मच भर बरान्डी पिला दी जाती है। इससे काम नहीं चला तो फौरन ही परिवार के डाक्टर (family doctor) बुलाये जाते हैं। शीशी भर के दवा आती है और उस बिचारे नन्हे बच्चे को उसका मुंह दबा कर भर भर चम्मच कड़वा कड़वा हलाहल विष

पिलाया जाता है। यह सब बातें वे लोग साधारण लोगों के बच्चों से अपने बच्चे को अधिक स्वस्थ बनाने के ख़याल से करते हैं। लेकिन यह बातें उस बच्चे के लिए बिल्कुल उलटा परिणाम वाली होती हैं। इस तरह अगर साधारण लोग रुपये पैसे की कमी और अपने अज्ञान के कारण बच्चों के पालन-पोषण में ग़लतियां करते हैं तो बड़े लोग अपने बच्चों को ज़रा अधिक स्वस्थ और सुन्दर बनाने की कोशिश में ही भूलें करते हैं। यही कारण है कि इन दिनों सैकड़े पीछे पांच बच्चे भी मुश्किल से ऐसे देखने में आते हैं, जिनके शरीर में किसी प्रकार का रोग न हो और जो पूर्ण रूप से स्वस्थ हों। जिन छोटे-छोटे बच्चों का चेहरा खिले फूल की तरह सुन्दर दीखना चाहिए वे अपने ही माता-पिता के अज्ञान के कारण मुरझाया हुआ और श्री-हीन चेहरा लिये फिरते हैं।

प्रत्येक माता-पिता को याद रखना चाहिए कि मनुष्य के स्वस्थ या अस्वस्थ जीवन की नींव बचपन में ही पड़ जाती है। इसलिये जैसा वे अपने बच्चे को छुटपन में बना देंगे अपने भविष्य जीवन में भी वह वैसा ही रहेगा। अगर बचपन में बच्चा रोगी रहा तो बड़े होने पर उसकी तनदुरुस्ती का सुधरना कठिन होगा, और अगर वह बचपन से ही स्वस्थ रहा तो आगे चलकर उसका स्वास्थ्य और भी बन जायगा और रोग होने की सम्भावना बहुत ही कम रहेगी, क्योंकि एक तो उसका शरीर ही स्वस्थ बन जायगा, दूसरे खान-पान तथा रहन-सहन की उसकी ऐसी आदतें रहेंगी कि फिर वह ग़लत तरीके पर जायगा ही नहीं।

बच्चों के पालन-पोषण में ख़ास कर दो बहुत ही भारी भूलें की जाती हैं, जिनसे कि उनका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है। पहली भूल उनके खिलाने-पिलाने में और दूसरी उनकी बीमारियों के इलाज में होती है। ग़लत तरीक़े से खिला-पिलाकर बच्चे के अन्दर रोग पैदा करना माता का ही काम है और उस रोग को हटाने की कोशिश में आज कल के प्रचलित दोष-पूर्ण इलाजों द्वारा बच्चे के जीवन को और भी दुखमय बनाना पिता या माता या दोनों का काम रहता है। बच्चों के पालने में सब से अधिक उनके खाने-पीने पर ध्यान देना चाहिए। सभी प्रकार के रोगों से बचाव का उपाय केवल खान-पान का ठीक रखना ही है। अगर इस बात पर ध्यान दिया जाए तो बच्चों को कभी रोग होवे ही नहीं, और यदि

बच्चे किसी कारण थोड़ा अस्वस्थ हो भी जायँ--जैसे सर्दी-जुकाम हो जाय या फोड़े-फुन्सी निकल आवें--तो उसे औषधियों से अलग ही रखना चाहिए, क्योंकि जैसा बताया जा चुका है, औषधियां, खास कर जो जहरों से बनी होती हैं, रोग को दूर नहीं करतीं बल्कि उसे बच्चे के छोटे से कोमल शरीर के एक कोने में दबाकर छोड़ देती हैं। यह दबा हुआ रोग आगे चलकर किसी न किसी रूप में 'फिर उभड़ पड़ता है। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि प्राकृतिक जीवन और चिकित्सा-विधि के होते हुए भी लोग उससे लाभ नहीं उठाते। अक्सर ऐसा देखने में आता है कि लोग सालों से प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में सुनते आते हैं, उसके गुणों को भी समय समय पर देखते हैं, लेकिन फिर भी उस पर विश्वास नहीं करते। जब रोगी बच्चा या जो कोई भी बीमार होकर किसी दवा से अच्छा नहीं होता, जब रोग असाध्य सा होता जाता है और रोगी की जीवन-शक्ति प्रायः नष्ट हो जाती है तब लोग प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में आते हैं। नतीजा यह होता है कि जिसकी जीवन-शक्ति नष्ट हो चुकी है वह तो अपने कष्टमय शरीर से छुटकारा पा जाता है, लेकिन जिसमें कुछ दम है वह अच्छा हो जाता है, बहुत समय के बाद।

इस खंड में यही बतलाने की चेष्टा की जायगी कि बच्चों के खिलाने-पिलाने का हिसाब किस प्रकार रखा जाय कि वे निरोग रहें। साथ ही साथ यह भी बताया जायगा कि बच्चों की साधारण (common) अस्वस्थता को प्राकृतिक जीवन द्वारा किस तरह निर्मूल किया जा सकता है।

पैदाइश के बाद बच्चे की देख-रेख

जन्म से ही बच्चे के साथ माता-पिता अन्याय करना शुरू करते हैं। सबसे बड़ा अन्याय उसके साथ उसको जल्द जल्द दूध पिलाकर ही किया जाता है। लोगों में यह एक गलत विश्वास प्रचलित है कि छोटा बच्चा एक बार में बहुत थोड़ा दूध पीता है, इसलिए उसे जल्द भूख लग जाती है और जल्द जल्द दूध देने की आवश्यकता रहती है। इस तरह बच्चे को पुष्ट बनाने का एक मात्र उपाय जल्द जल्द दूध पिलाना ही समझा जाता है। पचने का ख्याल बिना किये ही एक-एक घंटे, या बहुत हुआ तो दो-दो घंटे, के बाद दूध पिलाने का समय निश्चित कर लिया जाता है और उसी के अनुसार बच्चे की भूख की बिना परवाह किये ही दूध पिलाया जाता है। यह एक बड़ी भारी गलती है, जो प्रायः सभी घरों में होती है। इस प्रकार दूध पी-पी कर बच्चे का पेट खराब हो जाता है और उसकी नींद में भी बाधा पड़ती है। महीने डेढ़ महीने तक के बच्चे की स्वाभाविक नींद २४ घंटे में २०-२१ घंटे होनी चाहिए। वह दूध पीने के लिए घंटे-घंटे या दो-दो घंटे के बाद स्वयं जाग नहीं सकता, लेकिन निश्चित समय पर दूध पिलाना आवश्यक समझ कर उसे गहरी नींद से जगाया जाता है और आवश्यकता नहीं होते हुए भी उसके पेट में दूध भर दिया जाता है।

यह ध्यान देने की बात है कि बच्चा चाहे छोटा हो या बड़ा, अपनी आवश्यकता भर पी लेता है और फिर दूध के पचने के लिए कम से कम दो-ढाई घंटे का समय जरूरी है। इसके अलावा पेट को कुछ देर तक आराम देने की भी आवश्यकता होती है। इसलिये तीन-साढ़े-तीन घंटे से पहले दूध कभी देना ही न चाहिए। अच्छा हो अगर चार-चार घंटे पर दूध दिया जाय। इसकी आदत शुरू से ही डालनी चाहिए। सोते हुए बच्चे को जगाकर दूध न देना चाहिए। अगर उसके दूध पिलाने का समय तीन-तीन घंटे पर निश्चित कर लिया जायगा और उसकी आदत डाली जायगी तो बच्चा स्वयं ही समय पर जग जाया करेगा, क्योंकि उसी समय उसे सच्ची भूख लगेगी। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाय उसके दूध पिलाने का समय भी बढ़ाते जाना चाहिए और छः महीने के बाद चार-चार घंटे

का अन्तर ज़रूर कर देना चाहिए। ऐसे बच्चे का भोजन अच्छी तरह पचने के लिए और उसकी सच्ची भूख जगने के लिए कम से कम चार घंटे का समय देना बहुत ही आवश्यक है। वह भी अगर बच्चा बिल्कुल स्वस्थ हुआ तो, पर अगर बच्चे का स्वास्थ्य ज़रा भी ख़राब है तो उसके दूध पिलाने का समय चार घंटे से भी अधिक देर के बाद रखना चाहिए। निश्चित समय के बीच में बच्चे को पानी के सिवा और कुछ नहीं देना चाहिए।

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि जहां बच्चा ज़रा सा रोया कि उसे दूध दे दिया जाता है। इसका कारण यह है कि एक तो माताएँ समझ नहीं पातीं कि बच्चा क्यों रो रहा है। वे समझती हैं कि भूख से ही रो रहा है। दूसरे यदि बच्चे के रोने का कारण मालूम हो भी जाय तो उसके चुप कराने का सब से आसान उपाय दूध पिलाना ही समझा जाता है। बच्चे की भी ऐसी आदत पड़ जाती है कि चाहे किसी भी कारण से वह रोया हो लेकिन बिना दूध पिये वह चुप नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि बच्चों को रात में दूध कभी न देना चाहिए। यदि दिन में उचित ढंग से दूध पिलाया जाय तो रात में पिलाने की आवश्यकता न पड़ेगी। उसे आदत लगानी चाहिए कि रात में मां के सोने से पहले (ज़्यादा से ज़्यादा १० बजे तक) दूध पी ले और फिर सुबह तक सोता रहे। इसमें मां और बच्चा दोनों ही के लिए अच्छाई है। मां को भी रात भर सोना मिलेगा और बच्चा भी ज़रूरत से ज़्यादा दूध न पी सकेगा। इसके लिए अच्छा है कि बच्चे को आरम्भ से ही अलग सुलाया जाय। अलग सुलाने से एक और लाभ होगा कि बच्चा खूब हाथ पैर फैलाकर सो सकेगा और मां के शरीर के विकारों से भी दूर रहेगा। रात में यदि बच्चे की नींद खुल जाती है और वह रोता है तो लोग समझते हैं कि उसे भूख लगी है। लेकिन यह ग़लत ख़याल है। बच्चा अगर रात में रोता या हाथ पैर छटपटाता है तो भूख से नहीं, हाज़मे की ख़राबी से। ऐसी हालत में ऊपर से दूध दे देना उसकी दशा को और ख़राब करना है, यद्यपि ऐसा करने से बच्चा थोड़ी देर के लिए शान्त हो जाता है।

बच्चों को निरोग रहने के लिए उन्हें अपनी स्वाभाविक भूख की पहचान होना बहुत ही आवश्यक है। आरम्भ से ही जल्द जल्द या अधिक मात्रा में खिलाने का नतीजा यह होता है कि उन्हें सच्ची भूख की पहचान

ही नहीं होती, बल्कि यह कहना चाहिए कि उन्हें सच्ची भूख कभी लगती ही नहीं। केवल अपनी आदत के अनुसार या खाने-पीने की चीज़ें देखने के ही कारण वे खाना मांगते हैं। लेकिन अगर जन्म-काल से ही उनके खाने-पीने का तरीक़ा ठीक रखा जाय तो बिना सच्ची भूख के वे कभी भी खाने की इच्छा प्रकट न करेंगे। ऐसी अवस्था में बच्चे की इच्छानुसार ही उसे भोजन देने की आदत डालना सबसे हितकर होगा।

इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि बच्चों को कितनी मात्रा में दूध दिया जाय। मात्रा निश्चित करना कठिन है, क्योंकि सभी बच्चों का स्वास्थ्य एक समान नहीं होता, इसलिए सभी की आवश्यकता भी एक समान नहीं होती। यहां पर इतना ही कहा जा सकता है कि कमज़ोर तथा चुप-चाप पड़े रहने वाले बच्चे की अपेक्षा उस बच्चे को अधिक मात्रा में दूध देना चाहिए जो पूर्ण रूप से स्वस्थ और जो खूब हाथ-पैर पटकता है।

बच्चों का प्राकृतिक भोजन--

छोटे बच्चों का प्राकृतिक भोजन मां का दूध है। प्रकृति देवी का दिया हुआ बच्चों के लिए इस बढ़िया भोजन की समता दूसरा कोई भी भोजन नहीं कर सकता। प्रत्येक बच्चे के शरीर के पुष्ट बनाने के लिए जिन जिन चीज़ों की आवश्यकता है वे सभी उसको मां के दूध से ही मिलती हैं। प्रत्येक मां को इस योग्य होना चाहिए कि वह स्वयं ही अपने बच्चे को तब तक दूध पिला सके जब तक कि बच्चा फल के रस इत्यादि ऊपर की चीज़ें खाने-पीने के लायक़ न हो जाय।

बच्चे के जन्म के बाद लोग उसे दो एक दिन तक, जब तक कि मां का दूध नहीं आता, किसी दूसरी स्त्री का या गाय-बकरी का दूध पिलाते हैं। ऐसा करना अनुचित है। प्रकृति ने किसी मतलब से ही ऐसा प्रबन्ध किया है कि बच्चे के जन्म के दो-तीन दिनों के बाद मां का दूध आता है। जन्म के बाद बच्चे को तुरन्त ही भूख नहीं लगती। उसका पेट काफ़ी गन्दा रहता है और उसके साफ़ होने में कम से कम दो-तीन दिन लगते हैं। इस बीच में बच्चे को पानी के सिवा कुछ भी न देना चाहिए। यदि आवश्यकता ही जान पड़े तो ज़रा सा शहद चटाया जा सकता है। बच्चे के पेट में पहले-पहल माता का दूध पड़ना चाहिए, क्योंकि माता का प्रथम दूध बच्चे के लिए जुलाब का काम देता है, जिससे उसके पेट के साफ़ होने

में बहुत सहायता मिलती है। लेकिन यह बातें तभी सम्भव हैं जब कि मां स्वयं बिलकुल स्वस्थ है। अस्वस्थ मां का दूध बच्चे को पुष्ट बनाने के बदले उसको अधिक हानि ही पहुँचाता है। ऐसी हालत में मां के दूध की अपेक्षा बाहर का दूध देना ही अच्छा है। इन दिनों बेचारे अबोध बच्चों के सारे कष्टों का ८० फ़ी सदी कारण है मां के दूध का विकार।

अब यह देखना है कि बच्चे को किस अन्दाज़ से दूध देना उचित होगा, जिसमें बच्चे के पेट में अधिक न हो जाय। इसके लिए भी प्रकृति ने प्रबन्ध किया है। जन्म से ही बच्चे को अपने पेट का अन्दाज़ रहता है वह पेट भर जाने के बाद ज़रा भी अधिक पीना नहीं चाहता। लेकिन अगर माता की ग़लती से बच्चा आवश्यकता से ज़रा भी अधिक दूध पी जाता है तो उसे वह तुरन्त ही फेंक देता है। जब बच्चा दो-चार दिन लगातार दूध फेंकता है तो लोग चिन्तित हो जाते हैं और समझते हैं कि ठंड लग गई या किसी की नज़र लग गई या इसी प्रकार के कुछ और कारणों से ऐसा हो रहा है। यह बात उनके ध्यान में नहीं आती कि उसको आवश्यकता से अधिक दूध पिलाया गया है और उसी को वह फेंक रहा है। यह बात अवश्य है कि बीमार होने पर भी बच्चा दूध फेंकता है लेकिन उसकी भी पहचान है—बीमार बच्चे की उल्टी में बदबू रहती है, लेकिन बच्चा जब अधिक पीया हुआ दूध फेंकता है तो उसमें किसी प्रकार की बू नहीं होती और उल्टी होते हुए भी बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा ही मालूम पड़ता है। यह प्रकृति का ही प्रबन्ध है कि बिना किसी तकलीफ़ के या बिना किसी प्रकार के बुरा असर पड़े अधिक पीया हुआ दूध बच्चा अपने आप बाहर निकाल देता है। इस हालत में चिन्तित होने की बिलकुल आवश्यकता नहीं और न किसी प्रकार की दवा की आवश्यकता है। इसका इलाज है केवल दूध पिलाने के समय को थोड़ा कम कर देना, अर्थात् जितनी देर तक पहले दूध पिलाया जाता था, उससे थोड़ा कम समय तक पिलाना, जिससे एक बार में बच्चा कम दूध पी सके। इस बात का अंदाज़ बच्चे की मां को ही अच्छी तरह हो सकता है।

माँ के दूध को विकार-रहित बनाना—

मां के दूध का अच्छा या ख़राब होना उसकी शारीरिक अवस्था पर ही निर्भर है, और चूंकि शारीरिक अवस्था खान-पान के ऊपर ही निर्भर है, माता के भोजन की ओर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है। भोजन-सम्बन्धी विषय पर दूसरे अध्याय में काफ़ी विचार किया गया है। यहां पर केवल इतना ही कहा

जाता है कि भय, क्रोध जैसे वेगवान मनोभावों (strong emotions) का भी असर दूध पर पड़ता है, इसलिए ऐसे मनोविकारों से मां को बचना चाहिए। अगर इत्तिफ़ाक से ऐसा हो जाय तो उस समय बच्चे को दूध न पिलाना चाहिए। ऐसे मौकों पर दूध में एक प्रकार का जहर फैल जाता है, जो बच्चे के लिए बहुत ही हानिकारक है। ऐसे समय पर बहुत ही अच्छा हो यदि वह जहरीला दूध पम्प से या किसी तरह निचोड़ कर निकाल दिया जाय और उस समय के लिए बच्चे को ऊपर का ही दूध पिलाया जाय।

यह बात बहुत ही आवश्यक है कि दूध पिलाने वाली मां को सदा ही प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। माता की मानसिक दशा का प्रभाव बच्चे के केवल स्वास्थ्य पर ही नहीं स्वभाव पर भी पड़ता है। यहां तक कि बड़े बड़े वैज्ञानिकों का कहना है कि बच्चों का दूध पिलाने के लिए अगर किसी गाय को ठीक करना हो तो उसके स्वास्थ्य के साथ ही साथ स्वभाव की भी जांच कर लेनी चाहिए। जो गाय मारने वाली या मुश्किल से दूध देने वाली हो उसका दूध बच्चे के लिए हानिकारक है। सदा सीधी तथा शान्त स्वभाव की गाय को ही बच्चों के दूध के लिए ठीक करना चाहिए।

माता अगर अपने भोजन में फलों और कच्ची सब्जियों को, छिलकेदार दाल को और चोकरदार आटे को स्थान दे और मसाले, खटाई और पकवान-मिठाइयों से बचे तो उसका दूध बहुत अच्छा रहेगा। माता को अपने बच्चे के हित के लिए नियमित भोजन करना चाहिए। कब्ज होते ही एनीमा लेना चाहिए।

कम से कम नौ महीने तक बच्चे को मां के दूध पर ही रखना चाहिए। उसके बाद गाय या बकरी का दूध और फलों का रस देना चाहिए और मां का दूध कम कर देना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे मां का दूध छुड़ा देना चाहिए।

बच्चों के लिए ऊपरी भोजन—

अक्सर पढ़े-लिखे तथा सभ्य लोगों में ही यह देखा जाता है कि कुछ माताएं अपने बच्चे को बिलकुल ही दूध नहीं पिला सकतीं। गँवार या देहाती लोगों में और जानवरों में यह बात बिलकुल ही नहीं पाई जाती। इससे पता चलता है कि मनुष्य ज्यों ज्यों सभ्यता की ओर बढ़ता जा रहा है वह प्रकृति

से उतना ही दूर होता जा रहा है। खैर, इस विषय को यहीं पर छोड़कर हमें यह देखना है कि अगर किसी कारण-वश मां का दूध न मिल सके तो बच्चे को क्या भोजन देना चाहिए। मां के दूध से सबसे अधिक मिलता-जुलता बकरी का दूध है और उसके बाद गाय का दूध। लेकिन बकरी के दूध का मिलना आसान ओर कठिन भी है, इसलिए हम गाय के दूध पर ही विचार करेंगे। जो बच्चा कुछ कमजोर है और गाय का दूध हज़म नहीं कर सकता हो उसके लिए तो बकरी के दूध का प्रबन्ध करना ही पड़ेगा, लेकिन जो बच्चा पचा सकता है उसे गाय का ही दूध देना चाहिए।

गाय का दूध किस प्रकार बच्चे को देना चाहिए—

बाज़ारू दूध बच्चे को कभी न देना चाहिए। अपने घर की गाय हो तो कहना ही क्या है, पर अगर घर की गाय न हो तो किसी ग्वाले को ठीक कर लेना चाहिए, जो स्वस्थ तथा धूप और हवा में घूम-घूम कर घास चरने वाली गाय का दूध सामने दुह जाया करे। दूध साफ़ जगह में, अपने घर के साफ़ बर्तन में, ग्वाले का हाथ धुलवाकर, .खूब सफ़ाई से दुहवाना चाहिए। गाय का थन भी हर तीसरे चौथे दिन गुनगुने पानी से धुलवा देना आवश्यक है।

बच्चे को तुरन्त का दुहा हुआ ताज़ा ही दूध पिलाना चाहिए। गरम करने से दूध के बहुत से गुण नष्ट हो जाते हैं। साधारणतः लोगों का ख़याल है कि कच्चे दूध में कीड़े (जर्म्स—germs) रहते हैं, जिनको मारने के लिए दूध को गरम करना आवश्यक है। लेकिन ताजा और सफ़ाई से दुहे हुए दूध में वैसे कीड़े रहते ही नहीं। जो कुछ रहते भी हैं वे प्राकृतिक होते हैं और उनका रहना ही आवश्यक है। इसके अलावा गरम करने से दूध की जीवन-शक्ति (vitamin) नष्ट हो जाती है, दूध भारी हो जाता है और पचने में कठिनाई होती है। उबाला हुआ दूध छोटे बच्चे को कभी न देना चाहिए। सुबह-शाम तो ताज़ा दूध आसानी से मिल ही सकता है, दोपहर में देने के लिए भी दूध उबाल कर न रखना चाहिए। यदि उसी कच्चे दूध को एक बोतल में भर कर बोतल को ठंडे पानी से भरे बर्तन में रख दिया जायगा तो दूध ज्यों का त्यों ताज़ा बना रहेगा। बोतल को हर रोज़ अच्छी तरह गरम पानी से साफ़ कर लेना चाहिए। अगर दूध गरम करना ही हो तो सिर्फ़ गरम कर लेना चाहिए।, उसमें उबाल न आवे।

मां के दूध से गायके दूध में तिगुना अधिक प्रोटीन (Protein—मांसवर्द्धक पदार्थ) रहता है, इस कारण बच्चे उसको पचा नहीं सकते। उसका भारीपन दूर करने के लिए और उसको मां के दूध के समान बनाने के लिए उसमें पानी मिलाना आवश्यक है। पानी का अन्दाज़ बच्चे की अवस्था और उसके स्वास्थ्य के अनुसार ही होना चाहिए। साधारणतः आरम्भ में एक हिस्सा दूध और दो हिस्सा पानी, फिर धीरे धीरे पानी की मात्रा कम करते जाना चाहिए और दूध की मात्रा को बढ़ाते जाना चाहिए। एक वर्ष के बच्चों के लिए पानी मिलाने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं रह जाती। दूध में मिलाने के लिए उबाला हुआ पानी (जो छानकर ठंडा कर लिया गया हो) ही इस्तेमाल करना चाहिए। बच्चों को दूध में चीनी मिलाकर कभी न देना चाहिए। यदि आवश्यकता ही पड़े तो थोड़ा सा शहद या दूध का सत्त (sugar of milk, जो अंगरेज़ी दवाखानों में मिलता है) दूध में मिला सकते हैं।

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि छोटे बच्चों को जब गाय का दूध दिया जाने लगता है तो उनके पेट में कुछ न कुछ गड़बड़ी हो जाती है। यह कोई चिन्ता की बात नहीं है। गाय का दूध चाहे वह किसी तरह भी हल्का किया जाय, बच्चे का प्राकृतिक भोजन नहीं हो सकता, इसलिए उसके पचाने का अभ्यास होने में समय लगता ही है। यह भी न हो कि बच्चे को बहुत दिनों तक अपच की शिकायत रहे और अपच को प्राकृतिक समझ कर उस पर ध्यान न दिया जाय। लेकिन जल्दी भी नहीं करनी चाहिए। कुछ दिन देखकर तब या तो पानी की मात्रा कुछ और अधिक या कम करके देखना चाहिए या अगर इससे भी लाभ न हो तो गाय का दूध छुड़ाकर बकरी का दूध देना चाहिए।

बच्चों के भोजन में दूध के अलावा फलों के रस—

हमारे हिन्दुस्तानी घरों में ५-६ महीने के बच्चे का अन्नप्राशन कर दिया जाता है, और उसके बाद से थोड़ा थोड़ा अन्न खिलाना शुरू करते हैं। यह बहुत ही बुरा है। नौ महीने से कम के बच्चों को दूध और फल के रस के सिवा और कुछ भी न देना चाहिए। इस उम्र के बच्चे न तो कुछ चबा ही सकते हैं और न उनका पेट ही इस योग्य होता है कि वे अन्न पचा सकें। इस कारण इस समय का अन्न उनके लिए ज़हर के समान होता है। इससे उनकी तनदुरुस्ती ख़राब होने लगती है। हां, नौ-दस महीने के बाद

बच्चे को सेव, नाशपाती जैसे सख़्त फलों का टुकड़ा हाथ में दे सकते हैं, लेकिन वह भी खाने के लिए नहीं, सिर्फ़ चबाना सीखने के लिए। बिना अच्छी तरह चबाये ऐसे फलों के टुकड़े निगले नहीं जा सकते। बच्चा उसे खा नहीं सकेगा, केवल कुचलता रहेगा और साथ ही साथ चबाना भी सीखेगा। जब बच्चे के दांत निकलने लगते हैं तो ऐसा करना जरूरी होता है, क्योंकि सख़्त चीज़ों के चबाने से दांत की जगहों में एक तरह की कसरत होती है।

फलों के रस में सबसे अच्छा मीठे संतरे का रस है, लेकिन अंगूर और अनार के रस भी बच्चों को दिए जा सकते हैं। इन फलों के रस से बच्चों को कोई हानि न होगी। पके हुए लाल टमाटर का रस भी बच्चों के लिए लाभदायक होगा।

बच्चों को खाने-पीने के लिए कभी मजबूर मत करो—

हमने कई ऐसी अजीब औरतों को देखा है, जो अपने बच्चों को उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें जबरदस्ती दूध दिया करती हैं और इस तरह उन पर अत्याचार करके अपना अनोखा प्रेम दर्शाती हैं।

हरेक माता को याद रखना चाहिए कि बच्चों को खिलाने-पिलाने के लिए वह कभी जोर न दे। यदि बच्चे ने भोजन के लिए अनिच्छा प्रकट की तो यह न समझना चाहिए कि दूध में मिठास कम है या इसी तरह के और कारणों से बच्चे को दूध अच्छा नहीं लग रहा है। असल बात यह है कि उसे उस समय जरूरत न रहने के कारण दूध अच्छा नहीं लग रहा है। वह नासमझ बच्चा अनिच्छा प्रकट करता है, क्योंकि अभी वह प्रकृति से दूर नहीं हुआ है। इसलिए बच्चे की अनिच्छा इस बात का साफ़ सबूत है कि उसके शरीर को भोजन की आवश्यकता नहीं। जानवरों में भी हम यह बात पाते हैं कि अगर वे ज़रा भी बीमार होते हैं तो खाना-पीना बिल्कुल बंद कर देते हैं और जब तक अच्छे नहीं हो जाते कुछ भी नहीं खाते। अगर बच्चा दिन भर भोजन न करे तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं। ऐसी हालत में पानी के सिवा कुछ भी न देना चाहिए, जब तक कि वह खुद खाने-पीने की इच्छा प्रकट न करे। लेकिन ऐसी अनिच्छा एक-दो दिनों से अधिक नहीं चलनी चाहिए। यदि दो दिनों के बाद भी भूख न जगे तो समझना चाहिए कि उसका पेट कुछ ज़्यादा ख़राब है और उसका उचित इलाज करना चाहिए।

फलों का रस--

तीन महीने के बाद से किसी एक मीठे फल का रस बहुत थोड़ी-थोड़ी मात्रा में--छोटे चम्मच से एक चम्मच या शुरू में आधा ही चम्मच दूध पिलाने के तुरन्त बाद दिया जा सकता है। संतरे का रस पाचन के लिए अच्छा है और अनार का रस ताक़त के लिए। धीरे-धीरे रस की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

बढ़ते बच्चों का भोजन

एक साल से १८ महीने तक के बच्चों का भोजन--

बहुत से घरों में जब बच्चा करीब वर्ष भर का हो जाता है और किसी किसी घरों में अन्नप्राशन के बाद से ही उसे रोटी पूरी, चावल, दाल इत्यादि बड़े लोगों के खाने की सभी चीजें दी जाने लगती हैं। लोग समझते हैं कि बच्चा इन चीज़ों के खाने लायक़ हो गया और यदि अभी से न खायेगा तो उसका पेट कमज़ोर रह जायगा और बड़े होकर भी इन चीज़ों को न पचा सकेगा। लेकिन इस अवस्था के बच्चों को इस प्रकार का भोजन देना सच्ची बात न जानने की निशानी है, और यह बच्चों को केवल उसी समय ख़राबी नहीं पहुँचाता बल्कि बड़ी अवस्था में ख़राब स्वास्थ्य के मुख्य कारणों में से एक हो जाता है। दांत निकलते समय बीमार होना, आंख उठना और इसी तरह की दूसरी बीमारियां, जो अक्सर सभी बच्चों को हुआ करती हैं, उनके लिए स्वाभाविक समझी जाती हैं। लेकिन सचमुच यह बीमारियां एक तो बच्चे के जन्म से ही कमजोर रहने के कारण और दूसरे उसी उम्र में अनाज खिलाने से होती हैं। उस बच्चे को, जिसे उचित ढंग से खिलाया-पिलाया जाता है, इन आवश्यक कहलाने वाली बीमारियों में से एक भी छू तक नहीं सकती। अगर किसी बच्चे को कोई रोग हो जाय तो उसे स्वाभाविक नहीं बल्कि उसके मां-बाप की ग़लतियों का फल समझना चाहिए। बच्चे को स्वस्थ और सुखी रखना मां-बाप के हाथों में है, और यह तभी हो सकता है जब कि उसके खाने-पीने पर उचित ध्यान दिया जाय।

इसलिए एक वर्ष तक के बच्चे का प्राकृतिक भोजन सिर्फ़ दूध और फलों के रस ही हैं। एक वर्ष तक के बच्चों के खिलाने का क्रम इस प्रकार रखा जा सकता है:--

सुबह, ६-३० बजे के क़रीब--दूध

सुबह, १०-३० बजे--दूध और अनार का रस

दिन, २-३० बजे--दूध और सन्तरे का रस

शाम, ६-३० बजे--दूध

रात, १०-३० बजे--दूध

एक वर्ष के बाद सिर्फ़ इतना बढ़ा सकते हैं कि फल के रस की जगह फल, तरकारियों के सूप और कभी कभी बिना मिर्च-मसाले की पकी हुई हरी तरकारियां (लौकी, तरोई इत्यादि) भी दे सकते हैं। सवा वर्ष तक अन्न किसी भी हालत में न देना चाहिए। ऐसे बच्चों के दांत तो निकल आते हैं, लेकिन फिर भी चबाना अच्छी तरह नहीं आता। जो कुछ भी उन्हें दिया जायगा सिर्फ़ टुकड़े टुकड़े करके पेट में रख लेंगे, जो उनके लिए बहुत ही हानिकारक होगा। अक्सर लोग इस उम्र के बच्चों को हलवा, खीर जलेबी, मोतीचूर के लड्डू रसगुल्ले जैसी कुछ मुलायम कुछ कड़ी चीज़ या दूध में रोटी-चावल ही मल कर दे देते हैं। ये चीजें तो बड़ों के लिए हानिकारक हैं, बच्चों का तो कहना ही क्या। इसलिए इन चीजों से उन्हें अलग ही रखना चाहिए। ऊपर लिखे अनुसार बच्चों का भोजन दिन में चार बार और रात में एक बार से अधिक न होना चाहिए। बीच बीच में अगर बच्चा प्यासा मालूम पड़े या खाने-पीने की इच्छा प्रकट करे तो केवल पानी ही देना चाहिए।

डेढ़ वर्ष के बाद बच्चों का भोजन--

डेढ़ वर्ष के बाद बच्चों को रोटी और बिना मसाले की तरकारी भी देनी चाहिए। दो वर्ष के बच्चे को इस प्रकार भोजन दे सकते हैं :--

७-३० बजे सवेरे--फल और दूध।

१०-३० बजे रोटी, यदि हो सके तो थोड़ा मक्खन और तरकारी, जिसमें मिर्च-मसाले बिल्कुल न हों। तरकारियां अधिकतर हरी होनी चाहिए, जैसे, लौकी, तरोई, नेनुआ, भिन्डी इत्यादि। आलू, अरवी, कद्दू (कोंहड़ा) जैसी चीजें कम देनी चाहिए। आलू कोई ख़ास हानिकारक नहीं है, लेकिन रोटी या चावल के साथ हानिकारक हो सकता है। रोटी, चावल और आलू तीनों में एक ही पदार्थ (श्वेतसार) का आधिक्य है। इसकी ज़्यादती से खून में खटाई बढ़ती है। इस भोजन के साथ थोड़ी सी कच्ची सब्ज़ी (सलाद) भी जरूर हो। टमाटर, पतली मूली, गाजर, मूली की पत्ती, करमकल्ले की पत्ती, लेटिस की पत्ती, धनिया की पत्ती, पुदीने की पत्ती, खीरा, ककड़ी, चुक़न्दर इत्यादि में से दो तीन चीजें मिलाकर या एक ही देनी चाहिए।

तीसरे पहर ३-३० बजे के क़रीब--फल या दूध या दोनों।

७-३० बजे शाम को--केवल तरकारी और कुछ मुनक्के या अंजीर या फल और दूध। कुछ बच्चे मीठा अधिक पसन्द करते हैं और कुछ कुछ नमकीन। उनकी इच्छानुसार ही फल के रस, दूध या तरकारी का सूप देना चाहिए।

तीन से पाँच वर्ष के बच्चों का भोजन--

तीन वर्ष के बाद बच्चों को दोनों समय रोटी दे सकते हैं। फिर भी यह ध्यान रहे कि शाम को हल्के भोजन की ही आवश्यकता रहती है, इसलिए उस समय के भोजन में फल, और सब्जियों की ही प्रधानता रखनी चाहिए, या कुछ फल अवश्य हों और यदि इच्छा हो तो एक-आध रोटी देनी चाहिए। इस उम्र के बच्चों के खिलाने का क्रम इस प्रकार रख सकते हैं:--

सबेरे ७-८ के बीच में कुछ हल्का नाश्ता। नाश्ते में फल और दूध या मेवा और दूध या गरमी का मौसम हो तो मट्ठा देना चाहिए।

११ बजे दिन में--सलाद, रोटी, दाल, तरकारी, दही इत्यादि।

तीसरे पहर--कुछ फल, दूध (गरमियों में मट्ठा फलों के रस के शरबत, ठंढाई इत्यादि)।

रात में फल-दूध या रोटी, सादी तरकारी और कुछ मुनक्के या अंजीर या पिनखजूर। फल दूध ही ज़्यादा अच्छा होगा।

बच्चों के भोजन में फलों को प्रधानता दी गई है, इसलिए पूछा जा सकता है कि कौन से फल बच्चों के खाने योग्य हैं। फलों में नारंगी, संतरा सेव, नाशपाती, आम, अमरूद, अंगूर, केला, पपीता, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज आदि मौसम के सभी प्रकार के फल तनदुरुस्त लड़के को दे सकते हैं। कोई भी फल ख़राबी नहीं करता। ख़राबी केवल तभी करता है, जब भरे हुए पेट पर या सड़ा-गला कच्चा खाया जाय। हां, बीमारी की हालत में फल भी नहीं देते। सिर्फ़ रसदार फलों के रस देते हैं।

बढ़ते हुए बच्चे के लिए अच्छी तरह का पका केला (ख़ास कर हरी छाल का) बहुत अच्छा है। दिन के भोजन में एक रोटी या थोड़े चावल कम कर एक केला देना चाहिए या तीसरे पहर केला-दूध देना चाहिए।

बच्चों को मिठाई, पकवान आदि से दूर रखना चाहिए। अक्सर माताएँ ऐसा करती हैं कि मठरी, लड्डू, शकरपारे आदि बहुत तरह के पकवान बना

के इसलिए रखती हैं कि जिस समय बच्चे की इच्छा हो खा ले। यह हुई साधारण घरों की बात। बड़े घरों में तो घर की बनी हुई ये चीजें भी पसन्द नहीं की जातीं, उन्हें तो रसगुल्ले, बर्फ़ी, समोसे आदि बाज़ार की चीजें सफ़ेद डबल रोटी, केक जैसी होटल की चीजें ही अच्छी लगती हैं। लेकिन यह जितनी अच्छी लगती हैं उतनी ही हानिकारक भी हैं। उनके बनाने में मैदा, चीनी और खराब घी जो इस्तेमाल किये जाते हैं वे और भी ख़राब हैं। इसके अलावे चार-पांच साल की ही उम्र की अवस्था में बच्चों और खोंचे वालों में दोस्ती का समय होता है। बच्चों को प्यार के कारण पैसे दो पैसे रोज़ दिये ही जाते हैं। बच्चे पैसा पाते ही दरवाज़े की ओर खोंचे वाले की खोज में दौड़ते हैं और पैसे देकर उससे मिठाई, चाट और दही-बड़े के रूप में अपने लिए रोग मोल लेते हैं। ये चीजें, अगर वे घर की बनी और अच्छी हों, जब कभी खाई जा सकती हैं, लेकिन छुटपन ही से ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को इन सब चीज़ों की आदत न पड़े। हां, यदि घर की बनी हुई अच्छी चीजें हैं और तनदुरुस्ती अच्छी है तो कभी-कभी थोड़ी मात्रा में दे सकते हैं, लेकिन नाश्ते के समय नहीं, खाने के ही समय।

बच्चों को भोजन चबाकर खाने की आदत लगाना भी बहु ही आवश्यक है। कहा जा सकता है कि सभी चबा के खाते हैं, कोई राक्षस थोड़े ही है जो बिना चबाये निगल जायगा। लेकिन सचमुच हम लोग खाने को चबाते नहीं। हम चबाना ही नहीं जानते। छुटपन से आदत ही ऐसी पड़ी रहती है कि चबाने को आवश्यकता नहीं समझते और ग्रास को दो-तीन बार चलाकर, बहुत हुआ तो टुकड़े टुकड़े करके, निगल जाते हैं। इससे ज़्यादा देर तक चबाते रहने का धीरज नहीं होता, लेकिन इस तरह खाया हुआ भोजन महीन या बारीक नहीं होता। इसका नतीजा यह होता है कि जो काम दांत का है वह पेट को ही करना पड़ता है, पर उसे वह कर ही नहीं सकता। इससे मेदा कमज़ोर होने लगता है। अन्त में एक दिन ऐसा आता है कि पचाने की शक्ति बहुत ही कम हो जाती है। इसलिए पाचन-शक्ति को ठीक रखने के लिए भोजन को खूब चबा कर खाना बहुत ही आवश्यक है। प्रारम्भ से ही, जब से बच्चे को फल और अन्न जैसे सख्त चीजें दी जाने लगती हैं, उसे चबा कर खाना भी सिखाना चाहिए। उसे आदत लगानी चाहिए कि रोटी सूखी ही चबाए, दाल या दूध में भिगो

कर नहीं, जैसा कि अक्सर किया जाता है। इस तरह दाल या दूध में मलकर देने से बच्चे को चबाने का मौका नहीं मिलता। भोजन खूब चबाकर खाने से एक यह लाभ भी होता है कि जरूरत से ज़्यादा नहीं खाया जाता।

बच्चों से भोजन करने के लिए कभी आग्रह न करो। वह खुद ही अपने वक्त पर खाने की इच्छा प्रकट करेगा। यदि एक वक्त बच्चे ने भोजन की ओर जरा भी अनिच्छा प्रकट की तो दुबारा उससे खाने को न पूछना चाहिए। यदि दूसरे वक्त भी उसने अनिच्छा दिखलाई तो भी चुप लगा जाना चाहिए। उसे भोजन की ओर ध्यान ही न दिलाना चाहिए, जब तक कि उसे खूब भूख न लग आवे और वह खुद ही खाना न मांगे। इस तरह की आदत पड़ जाने पर बच्चे को अपनी सच्ची भूख की पहचान हो जायगी और भूख न रहने पर वह अच्छी से अच्छी चीज भी न खायेगा। अक्सर ऐसा भी देखा जाता है कि मां अपने अन्दाज से बच्चे को खाना देती है और उसे सारा खाना खिला देना चाहती है। यदि बच्चे का पेट भर जाता है और बची हुई चीजें खाने से वह इन्कार भी कर देता है तो भी अन्न ख़राब होने के डर से मां उसे फुसला कर खिला देने की कोशिश करती है। यह बहुत ही बुरा है। इस तरह से बच्चा भूख से अधिक खा जाता है, जो कि हाजमे के लिए बहुत ही ख़राब है। धीरे धीरे उसकी आदत पड़ जाती है और वह रोज ही भूख से ज़्यादा खाने लगता है। छोटे बच्चों के बुखार, खांसी, जुकाम, अनपच, दस्तों का आना आदि सभी बीमारियों का कारण भूख से अधिक खाया हुआ भोजन ही होता है। इसलिए बच्चे को कभी भी इच्छा से अधिक खाने के लिए आग्रह न करना चाहिए। ज्यों ही उसने भोजन की ओर से अरुचि दिखलाई कि उसे खिलाना बन्द कर देना चाहिए और फिर एक ग्रास भी न देना चाहिए। उसके स्वास्थ्य के लिए इससे बढ़कर और क्या हितकर हो सकता है कि उसे स्वयं अपनी सच्ची भूख की पहचान और पेट का अन्दाज हो जाय। जिस बच्चे में ऐसी आदत पड़ जाती है उसे फिर बीमार होने का मौका ही कम आवेगा।

बच्चों को खाते समय पानी न देना चाहिए। इसकी भी शुरू से ही आदत लगानी चाहिए, नहीं तो फिर बाद में बच्चे मानते नहीं। इससे एक तो बच्चे खाई चीज को मन लगाकर नहीं चबाते, दूसरे पचाने वाले रस कमजोर पड़ जाते हैं। कम से कम दो घंटे बाद पानी देना चाहिए।

यदि बच्चे का खाना ऊपर लिखे अनुसार सादा और बिना मिर्च-मसाले का रहेगा तो बच्चा स्वयं पानी न मांगेगा।

बच्चों के सामने माता-पिता को अपना उदाहरण रखना आवश्यक है--

भोजन-संबंधी ऊपर लिखी हुई आदतों को बच्चों में डालने के लिए यह आवश्यक है कि माता-पिता स्वयं भी उन बातों को करें और उन्हीं नियमों का पालन करें। उपदेश से उदाहरण लाख गुना अच्छा है। जिस समय से बच्चा कुछ कुछ समझने लायक़ होता है तभी से वह अपने से बड़ों की सभी बातों की नक़ल करने की कोशिश करता है। उसके सामने भला या बुरा जैसा भी उदाहरण रहेगा उसी की नक़ल वह करेगा और धीरे धीरे वैसा ही बन जायगा। यदि घर के अन्य लोग दिन भर कुछ न कुछ खाते पीते रहें और बच्चे को सिखलावें कि तुम तीन या चार बार से अधिक मत खाओ तो बच्चा कभी न सीखेगा। यदि वे खुद ही मिर्च-मसालेदार चटपटी चीजें खायँगे और बच्चे को सादे भोजन का उपदेश देंगे तो उनका उपदेश व्यर्थ ही जायगा। सम्भव है कि बच्चा अपने पिता के सामने चुप लगा जाय, पर बाद में वह रो-धो कर, छीन-झपट कर, चुरा-छिपा कर उन चीज़ों को अवश्य ही खायगा। धीरे-धीरे उसे भी उन चीज़ों का स्वाद लग जायगा, फिर बड़े होने पर उसकी आदत जल्द नहीं सुधरेगी। यदि वे स्वयं काम की जल्दी में जल्दी-जल्दी भोजन कर के उठ जायँगे और बच्चे से कहेंगे कि खूब चबाते रहो तो भला उसे क्या गरज पड़ी है कि वह चबाता रहे। वह तो उनसे भी जल्दी खाकर उठ जायगा। इसी प्रकार यदि स्वयं भोजन के समय पानी पियेंगे और बच्चे से दो घंटे बाद पीने को कहेंगे तो भला बच्चा क्यों मानने लगा। वह रोवेगा, चिल्लायेगा और अन्त में पानी पीकर रहेगा। इसी तरह और भी सभी बातें हैं, जिन्हें खुद न करके यदि केवल बच्चों को सिखलाया जायगा तो उसके ऊपर कुछ भी असर न पड़ेगा। इसलिए जिन नियमों पर बच्चे को चलाना है उन पर अगर माता-पिता और घर के अन्य लोग भी चलेंगे तो बच्चा अपने आप ही सीख जायगा।

चीनी और मैदे की ख़राबियाँ--

खाने-पीने के सिलसिले में यह भी कह देना आवश्यक है कि कौन कौन चीजें बिलकुल छोड़ देने योग्य हैं। वैसे तो नित्य प्रति बहुत सी ऐसी चीजें हम खाते हैं और बच्चों को खिलाते हैं, जिनसे पैसे और तनदुरुस्ती दोनों की बर-

होती है; लेकिन उनमें मुख्य हैं चीनी और मैदा, और साथ ही घी या तेल के बने पकवान। अगर ये उत्सव-त्योहारों में कभी-कभी खाये जायँ तो भी बहुत हर्ज न हो, पर हर रोज खाना अपनी आयु कम करना और रोग मोल लेना है।

चीनी इन दिनों बहुत ढंगों से इस्तेमाल की जा रही है। चाय में, दूध में, शरबत में, पकवान में, मिठाई में, खीर में--न मालूम कितनी तरह लोग चीनी खाते हैं। विशेष कर बच्चों को मीठा बहुत ही प्रिय होता है, इसलिए वे उसे खाते भी अधिक हैं। लेकिन यह उनके लिए बहुत नुक़सान की चीज है। इससे बच्चों के कई रोग हो जाते हैं, जिनमें सारे शरीर का दुबला और कमजोर होना मुख्य है। सफ़ेद चीनी हड्डी के अन्दर के चूने (calcium) की दुश्मन है। छुटपन में चीनी खाने से हड्डी कमजोर पड़ जाती है, जिससे बच्चों के शारीरिक विकास पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों को अपने शरीर में गरमी और फुर्ती लाने के लिए जितनी चीनी की आवश्यकता होती है उतनी उन्हें मीठे फल (केला, मुनक्का, छुहारा इत्यादि) और दूध से मिल जाती है। यदि ये चीजें उन्हें उचित रीति से और पर्याप्त मात्रा में दी जायँ तो फिर ऊपर से चीनी की आवश्यकता न रहे। लेकिन यदि देना ही पड़े तो गुड़ या भूरी शकर इस्तेमाल कर सकते हैं। शुद्ध शहद, अगर मिल सके तो बहुत ही अच्छा हो।

इसी प्रकार मैदा भी हमारे देश में बहुत खाया जाता है। प्रति दिन नाश्ते तथा खाने में मैदा किसी न किसी रूप में इस्तेमाल किया जाता है। मिठाइयां, पकवान, डबल रोटी, सभी चीजें मैदे की बनाई जाती हैं। मिठाई और पकवान को तो लोग भारी चीज समझ कर कुछ कम भी कर देते हैं, पर डबल रोटी को बहुत हल्का समझते हैं और बहुत मात्रा में इस्तेमाल करते हैं। बच्चे भी उसे दूध में भिगो कर या यों ही खाना बहुत पसन्द करते हैं। लेकिन मैदे की बनी होने के कारण यह बहुत बुरी है। इसलिए डबल रोटी त्याज्य वस्तु है। मैदे का किसी भी रूप में इस्तेमाल न करना चाहिए। एक तो गेहूँ के असली तत्व, जो ऊपर के हिस्से में होते हैं, इसमें नहीं रह जाते, दूसरे यह इतना महीन और चिकना होता है कि आंतों में चिपक जाता है। सदा मोटा आटा ही इस्तेमाल करना चाहिए और यदि हाथ का पिसा हो तो और अच्छा है।

हवा, शरीर की सफ़ाई, कपड़े

बच्चों के खान-पान के बारे में कहा गया। अब हमें उनकी और बातों की ओर विचार करना है।

बच्चों को ताज़ी हवा की आवश्यकता—

बच्चों का शारीरिक विकास उचित खान-पान के साथ साथ ताज़ी खुली हवा पर भी निर्भर है। यदि हम केवल उनके भोजन की ओर ध्यान देंगे और उनके लिए ताज़ी खुली हवा का प्रबन्ध न करेंगे तो उनकी वही दशा होगी जो एक ऐसे पौधे की, जिसे पानी मिट्टी देकर एक कमरे में बन्द कर दिया जाय, होती है।

हमारे हिन्दुस्तानी घरों में ऐसे घर कम हैं, जो खूब हवादार हों। दीवारें बहुत ऊँची-ऊँची होती हैं, आंगन बहुत ही छोटा होता है, कमरे छोटे-छोटे या बहुत बड़े बड़े बेडौल होते हैं, जिनमें खिड़कियां भी ढंग की नहीं बनी होतीं। ऐसे मकानों में रहने वालों का स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रहता। विशेष कर बच्चों पर तो इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। बड़े बच्चे तो घर के आस-पास निकल कर खेल-कूद भी लेते हैं, जिससे उन्हें कुछ खुली हवा मिल जाती है, लेकिन छोटे बच्चे, जिन्हें सब से ज्यादा खुली और शुद्ध हवा की जरूरत रहती है, वैसे ही बन्द कमरों में पड़े रहते हैं, यदि कोई कमरा ऐसा हुआ भी, जिसमें थोड़ी बहुत हवा आती हो, तो बच्चे उसमें ठंढ खाने के डर से नहीं रखे जाते। गर्मियों में चाहे रख भी लें पर जाड़ों में बन्द कमरा ही चुना जाता है और उसी में बच्चों को रखा जाता है। नतीजा यह होता है कि वे पीले, सुस्त और रोगी हो जाते हैं।

इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों के लिए ऐसा कमरा चुना जाय, जिसमें दरवाज़े और खिड़कियां काफ़ी हों और जिसमें खूब हवा आती हो। इसके अलावा बच्चों को प्रतिदिन शाम-सुबह घर से बाहर, बस्ती से अलग, किसी मैदान या बाग़-बगीचे की ओर घूमने भेजना बहुत ही आवश्यक है। जाड़ों में लोग बच्चों को इसलिए बाहर भेजते हुए डरते हैं कि कहीं सर्दी-ज़ुकाम न हो जाय, पर यह केवल भ्रम है। सर्दी-ज़ुकाम हवा लगने से नहीं पेट की ख़राबी से होता है। हवा लगने से तो सर्दी-ज़ुकाम अच्छा हो जाता है। जाड़ों में भी अच्छी तरह कपड़े पहना कर गाड़ी में बिठा कर बच्चों को सुबह-शाम दोनों वक्त घंटे दो घंटे के लिए घूमने भेजना चाहिए। घर में भी, जहां तक हो सके,
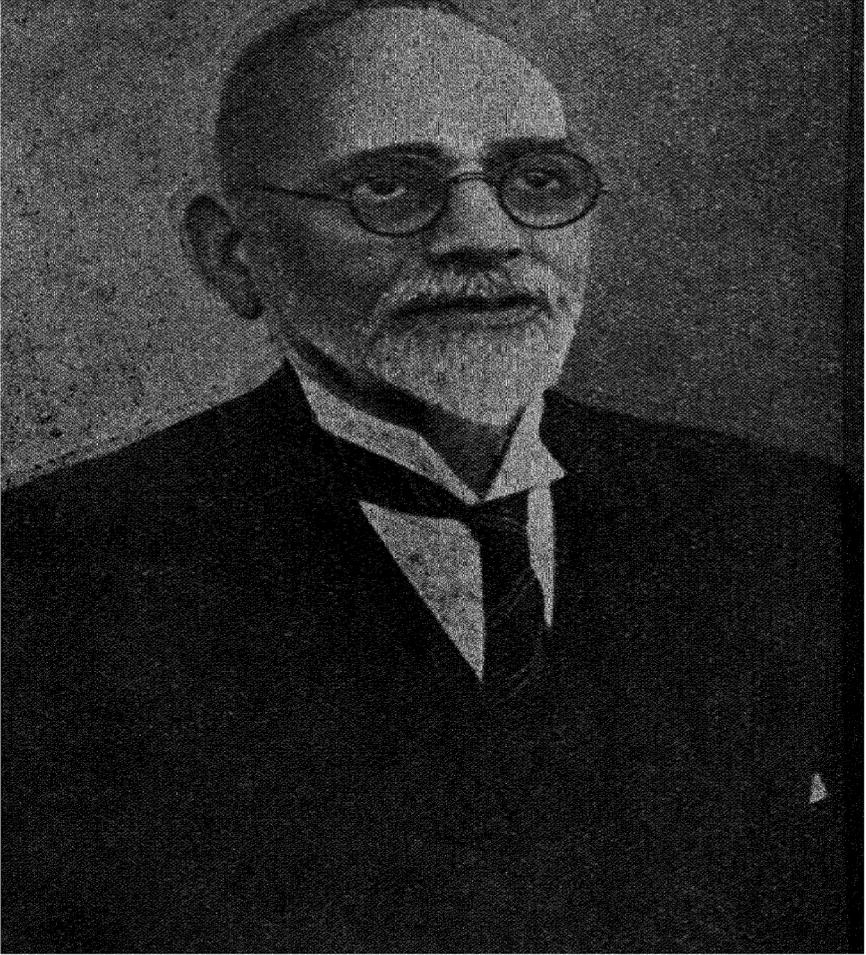
स्वर्गीय राय बहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधरी

रिटायर्ड (पेन्शनयाफ्ता) सिविल सर्जन, जबलपुर । यह अपने देश के एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हुए हैं

बच्चे को कमरे से बाहर खुली जगह में ही रखना चाहिए। जो बच्चा नियमित रूप से ताजी स्वच्छ हवा में घूमने जाता है और घर में भी हवादार जगहों में सुलाया-लिटाया जाता है वह खिला हुआ, तनदुरुस्त और फुर्तीला रहता है।

बच्चों के पेट और शरीर की सफ़ाई--

अकसर छोटे बच्चे दो-दो तीन-तीन दिन पर पाखाना किया करते हैं और इसको माताएँ अच्छा समझती हैं। अगर बच्चा इससे जल्द टट्टी करता है तो वे समझती हैं कि उसका पेट ख़राब हो गया और उसे बन्द करने की कोशिश करती हैं। लेकिन सचमुच पेट ख़राब होने का लक्षण रोज रोज टट्टी होना नहीं बल्कि तीन चार दिन के बाद होना है। बच्चों को दिन में दो बार अवश्य ही टट्टी करनी चाहिए। इसके लिए भी उन्हें शुरू से आदत डालनी चाहिए, जिससे कि वे प्रायः बँधे समय पर टट्टी करें। ऐसा करने से नित्य नियमित रूप से उनका पेट साफ़ हो जाया करेगा और कपड़े भी ख़राब न होंगे। जो बच्चा तीन चार दिन पर टट्टी करता है उसकी मां को आराम तो अवश्य रहता है, और पहले बच्चे के लिए भी कोई ख़राबी नहीं मालूम पड़ती, लेकिन स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव बुरा पड़ता है। इसलिए यदि कभी ऐसा हो कि बच्चा दो तीन दिन पर टट्टी करता हो तो उसका इलाज करना चाहिए।

बच्चे के शरीर की सफ़ाई पर भी ध्यान देना आवश्यक है। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि माताएं बच्चों को पानी से अलग ही रखती हैं। वे समझती हैं कि नहलाने से ठंड लग जायगी। जाड़ों में तो कभी नहलाती ही नहीं। गर्मियों में नहलाती भी हैं तो दिन में एक बार, जब धूप खूब तेज हो जाती है, और वह भी गरम पानी से! ऊपर से तेल खूब चपोड़े रहती हैं। ये बातें तनदुरुस्ती के लिए तो ख़राब हैं ही, बच्चों के शरीर से बू आया करती है और शरीर गंदा दीखता है। बच्चों को नहलाने में कभी नागा न करना चाहिए। गर्मियों में शाम-सबेरे दो बार ठंढे पानी से और जाड़ों में भी कम से कम एक बार मामूली गुनगुने (गर्म नहीं) पानी से अवश्य नहलाना चाहिए। ख़ूब अच्छी तरह नहलाने से बच्चे की तबीयत हल्की रहेगी और उसे अच्छी नींद भी आवेगी। इसके अलावा देखने में वह साफ़-सुथरा और भला लगेगा, जिससे सभी को प्यारा मालूम होगा। बच्चों को मालिश की आवश्यकता रहती है जरूर, पर नहलाने के पहले ही कर देना चाहिए। बहुत घरों में माताएँ बच्चों के चेहरे पर पाउडर आदि मल देती हैं, जिससे कि चमड़ा चिकना और साफ़ रहे, लेकिन इससे लाभ के बदले हानि ही होती है।

आगे चल कर चमड़े पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और दाने आदि निकल आते हैं। पाउडर बिलकुल बेकार है। यदि बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा है, वह नहला-धुला कर साफ़-सुथरा रखा जाता है तो उसका चेहरा यों ही चमकता हुआ, मुलायम और सुन्दर रहेगा।

बच्चों के कपड़े--

बच्चों के कपड़ों के सम्बन्ध में सब से पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके कपड़े ढीले-ढाले हों, जिससे रक्त-संचार (खून के दौरान) में बाधा न पहुँचे। उनके लिए चिकना और मुलायम कपड़ा बनवाना चाहिए। बच्चों को बहुत से कपड़े नहीं पहनाने चाहिए। गर्मी के मौसम में पतला सूती और जाड़ों में सूती के ऊपर से एक अच्छा ऊनी--बस। इससे अधिक कपड़े पहनाने की आदत न डालनी चाहिए। उनके कपड़े खूब साफ़ होने चाहिए। छोटे बच्चों को पेटी न पहनानी चाहिए। उनके जूते भी बहुत कसे न हों। ऊनी कपड़ा या फलालेन ठीक चमड़े पर न हो। पहले सूती कपड़ा पहना कर तब इन चीजों को पहनाना चाहिए। जाड़ों में क़रीब क़रीब सभी घरों में बच्चों को हवा से बचाने के लिए कनटोप पहनाते हैं यह बहुत ही हानिकारक है। बच्चों के कान किसी भी हालत में बंद नहीं करने चाहिए। इससे सिर्फ़ तनदुरुस्ती ही ख़राब नहीं होती, दिमाग़ भी ख़राब होता है। ठंडक ही लगने का डर हो तो कान नहीं बल्कि सीने और गले को ढँक कर रखना चाहिए। अगर कनटोप ही पहनाना हो तो ढीला और सूती और वह भी जब वे मैदान में हों।

कोई कोई बच्चे लार टपकाया करते हैं, जिससे उनका पहना हुआ कपड़ा गीला हो जाता है और सूखने के बाद कड़ा हो कर बहुत बुरा मालूम होता है। इसके लिए पतली सी गद्दी सीकर उनके गले में पहना देनी चाहिए और उसके गीला हो जाने पर उसे बदल देना चाहिए। साथ ही उपाय करना चाहिए कि लार टपकना बंद हो। छोटे बच्चे की कमर में एक हल्का रूमाल हमेशा बांधे रखना चाहिए, नहीं तो टट्टी करके वे कपड़े और अपना हाथ-पैर ख़राब कर लेते हैं। उनके लिए मोमजामा रखना भी आवश्यक है। मोमजामा नहीं रहने से जब वे पेशाब करते हैं तो वह बिस्तर में सूख जाता है और फिर बिस्तर से बदबू आया करती है। गोद में लेते समय भी मोमजामा या कपड़ा रखना चाहिए, जिससे यदि बच्चा गोद में ही पेशाब कर दे तो अपना

कपड़ा बचा रहे। बच्चों के सूती कपड़े रोज धुलने चाहिएं। बच्चों के ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को रोज धूप दिखाना चाहिए।

सोना और आराम—

बच्चों को गोद में बहुत नहीं लिये रहना चाहिए। उन्हें केवल नहलाने धुलाने और दूध आदि पिलाने के समय ही उठाना चाहिए, या कभी-कभी खेलाने के लिए। गोद में अधिक रखने से बच्चे की आदत बिगड़ जाती है, और फिर वह चारपाई पर लेटना पसन्द नहीं करता। इससे उसकी तनदुरुस्ती में हानि पहुँचती है। चारपाई पर लेटे रह कर वह खूब हाथ पैर फैला कर खेल सकता है, इधर-उधर उलट सकता है, लेकिन गोद में यह सब नहीं कर सकता। इसके अलावे इस आदत से वह अपनी मां को भी बहुत दुख देता है। मां कभी स्वतंत्र नहीं रह पाती इसलिए बच्चे को जन्मकाल से ही चारपाई पर लेटे रहने की आदत लगानी चाहिए। लाड़-प्यार में अपने सिर कठिनाई न मोल लेनी चाहिए।

बच्चों को माताएँ अपने पास ही सुलाया करती हैं। अपने देश में बहुत कम घर ऐसे देखने में आते हैं, जहां छुटपने से बच्चे अलग सुलाये जाते हों। जन्म से लेकर कम से कम चार-पांच वर्ष तक या और ज्यादा दिनों तक बच्चा मां या बाप के पास ही सोता है। लेकिन कई बातों का खयाल करते हुए यह आवश्यक है कि बच्चे अलग सुलाये जायँ। आरम्भ से ही उनके लिए चारपाई अलग रखनी चाहिए। इससे एक तो बच्चा खूब फैल कर आराम से सो सकेगा; दूसरे, रात में दूध पीने की आदत नहीं लगेगी, तीसरे, वह मां के शरीर के विकारों से दूर रहेगा, और साथ ही साथ मां को भी निश्चिंत होकर रात भर सोने को मिलेगा।

बच्चों का बिस्तर ख़ूब गद्देदार और मुलायम होना चाहिए। चारपाई खूब तनी हुई रहनी चाहिए, उसमें ज़रा भी झोल न हो। ओढ़ने के कपड़े ऋतु के अनुसार होने चाहिए, पर बहुत गरम कपड़ों की आदत नहीं डालनी चाहिए। गर्मियों में कपड़े ओढ़ने की बिल्कुल जरूरत नहीं। मक्खी और मच्छरों से बचाने के लिए जाली से ढँक रखना चाहिए या मसहरी लगा देनी चाहिए। बिस्तर, ओढ़ने के कपड़े और मसहरी आदि ख़ूब साफ़ हों और इन्हें हर रोज धूप में रखा जाय। जाड़े और वर्षा के दिनों में रोज़ बिस्तर आदि को सुखाना जरूरी है, पर गर्मियों में भी हर दूसरे तीसरे दिन सुखा लेना चाहिए।

बच्चों के सोने की जगह खूब साफ़-सुथरी हो। यदि कमरे में बच्चा सोता है तो कमरे में सामान बहुत कम हो, कोने, छत और दीवारों में जाला-मकड़ा न हो, कोई खाने-पीने की चीज या दूध आदि के बर्तन न हों, नहीं तो मक्खियां भिनकेंगी। कमरे के दरवाज़े और खिड़कियां खुली हों, लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि बहुत तेज़ रोशनी या बहुत झोंके की हवा न आती हो। जाड़ों में भी दरवाज़े और खिड़कियां खोल कर बच्चों को सुलाना चाहिए। यदि बरामदे में सुलाये जायँ तो बहुत ही अच्छा हो। खुली हवा में सुलाने या रखने से ठंड कभी नहीं लगती, जैसा कि लोगों का भ्रम है। गर्मियों में रात के समय बिलकुल खुले में सुलाना चाहिए।

इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि बच्चे चाहे वे छोटे हों या बड़े, उन्हें सोने से पहले रुलाना न चाहिए, खुशी की हालत में उन्हें चारपाई पर भेजना चाहिए। जिस दिन बच्चा सोने के पहले रो लेता है उस दिन उसका बुरा असर रात भर रहता है, अच्छी गहरी नींद नहीं आती और वह सोते में सिसकियां भरा करता है। इसका असर उसके स्वास्थ्य पर बुरा पड़ता है। यदि रात में बच्चा छटपटाये या दांत बजावे तो समझना चाहिए कि उसका हाजमा ठीक नहीं। बच्चों के लिए गहरी नींद बहुत जरूरी है, क्योंकि नींद में ही उनका शरीर पुष्ट होता है। सुलाने के पहले यदि बच्चों का शरीर भीगे हुए तौलिए से पोंछ दिया जाय तो बहुत ही अच्छा हो। तौलिया भिगोने का पानी ऋतु के अनुसार होना चाहिए--गर्मी में ठंडा और जाड़ों में गुनगुना (बहुत थोड़ा गरम)।

बच्चा कितना सोए--

अब हमें देखना है कि किस उम्र के बच्चे को कितना सोना चाहिए। उन के सोने का हिसाब इस प्रकार हो--

एक महीने तक के बच्चे के लिए	२१-२२ घंटे
छः ,, ,, ,, ,,	१८ ,,
एक वर्ष ,, ,, ,,	१५ ,,
दो ,, ,, ,, ,,	१४ ,,
तीन ,, ,, ,, ,,	१३ ,,

इसके बाद ६-७ वर्ष की उम्र तक के बच्चों का काम १०-१२ घंटे सोने से ही चल सकता है।

बच्चों के लिए कसरत

छोटे बच्चों की कसरत--

जैसा पहले बताया गया है, कसरत जीवन के लिए जरूरी है। कसरत से बदन में हरकत होती है, खून तेजी से दौड़ता है, और शरीर के अंगों से विकार पसीना के रूप में निकलता है। लेकिन छोटे बच्चों के लिए कोई ख़ास कसरत की जरूरत नहीं होती। बहुत छोटे बच्चे अपने हाथ-पैर फेंक और उछाल कर, इधर-उधर उलट-पलट कर, स्वाभाविक कसरत कर लेते हैं। जब वे कुछ बड़े होते हैं तो उठने और खड़े होने की कोशिश में गिरते-पड़ते हुए काफ़ी कसरत कर लेते हैं।

जब बच्चा चलने लगे तो उसे उँगली पकड़ा कर थोड़ी दूर तक टहलाना चाहिए। जैसे-जैसे उसके शरीर में ताक़त बढ़े वैसे ही वैसे टहलाने की दूरी को बढ़ाना चाहिए। चलना सीखने के पहले भी बच्चे को छोटी गाड़ी (पेराम्बुलेटर-Perambulator) में बैठा कर हवा-खोरी के लिए बाहर ले जाना चाहिए या भेजना चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि यह गाड़ी कीमती ही हो। साधारण हैसियत के लोग या देहात के रहने वाले लकड़ी की सस्ती गाड़ी बनवा सकते हैं। गोद में बच्चे को दबाकर ले जाना ठीक नहीं है।

मालिश--

बच्चों के लिए तेल की मालिश भी एक जरूरी चीज़ है। मालिश से कसरत के बहुत से फ़ायदे हासिल हो जाते हैं। अगर यह कहा जाय कि मालिश लाचारों की, बच्चों, कमजोरों और बुड्ढों की, कसरत है तो ग़लत न होगा।

देहातों या पुराने ढंग के लोगों के यहां बच्चों की मालिश दिन में तीन-तीन बार होती है। ऐसा करना अच्छा है। पर मालिश के बाद ही बच्चे को या तो अच्छी तरह नहला देना चाहिए या उसका शरीर भीगे कपड़े से अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। साधारणतः सुबह शाम मालिश करना काफ़ी होगा। गर्मी के दिनों में ठंडे पानी का और जाड़ों में या कमजोर बच्चों के लिए गुनगुने (गरम नहीं) पानी का इस्तेमाल करना चाहिए।

मालिश की तरकीब यहां बताने की आवश्यकता नहीं। सभी घरों में औरतें इसे अच्छी तरह जानती हैं। यहां इतना ही कहना काफ़ी है कि सिर के लिए तिल या नारियल का तेल और बदन के लिए सरसों का (कड़ुवा) तेल काम में लाना चाहिए, और यह भी कि मालिश करते समय सारे शरीर, सभी जोड़ों और रीढ़ की अच्छी तरह, धीरे धीरे लेकिन देर तक, मालिश करनी चाहिए। जाड़ों में सुबह और तीसरे पहर की धूप में मालिश करने से शरीर और भी अच्छा तैयार होता है। जब बच्चा साल भर का हो जाय तो दिन में एक बार की मालिश काफ़ी होगी।

बड़े बच्चों की कसरत--

बड़े बच्चों की कसरत के लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। वे अनायास ही दौड़ते और उछलते हैं, जिससे उनकी पूरी कसरत हो जाती है। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों के दौड़ने, उछलने और खेलने पर अकारण ही नाराज़ न हुआ करें।

बाल-रोगों की चिकित्सा

रोग हो ही क्यों--

असल प्रश्न यही है कि रोग हो क्यों? जैसा कि पहले बताया गया है, रोग, प्रकृति के नियमों को तोड़ने से, माता-पिता के अज्ञान के कारण होता है। अगर बच्चे जन्म से ही नियम के अनुसार रखे और खिलाये-पिलाये जायँ तो उन्हें रोग जल्दी न हो। रोग होना स्वाभाविक नहीं है। यह शरीर इसलिए नहीं बनाया गया है कि इस में तरह तरह के रोग समय-समय पर उभड़ते रहें। अगर यह मामूली सी बात समझ में आ जायगी तो माता-पिता अपने बच्चों की ठीक-ठीक देख-भाल करेंगे और उनके बढ़ने में सच्चे सहायक साबित होंगे।

लेखक का अपना अनुभव भी है। पहले उसके परिवार में हर दूसरे-तीसरे महीने बच्चे बीमार होते थे, पर जब से भोजन और रहने के नियमों पर साधारण ध्यान दिया जाने लगा है, जल्दी बीमारी नहीं होती।

रोग को दबाना बुरा है--

अव्वल तो रोग हो ही नहीं, लेकिन, जैसा कि पहले बताया गया है, अगर हो जाय तो उसको जहरीली दवाएँ दे देकर और समय के पहले पथ्य देकर दबाना बुरा है। इसे बार-बार दुहराने में हिचक नहीं मालूम होती कि रोग के रूप में प्रकृति शरीर के अन्दर के विकारों को निकालने का असाधारण प्रबंध करती है। इस प्रबंध में दवा या बे-ज़रूरी पथ्य देकर अड़चन न डालनी चाहिए। इन अड़चनों से--दवाओं से--अक्सर ऊपरी लाभ मालूम होता है, लेकिन सचमुच वह लाभ नहीं है। विकार अन्दर ही दबे रहते हैं और कुछ ही दिनों में फिर प्रकृति उनको बाहर निकालने की कोशिश करती है, जिससे फिर रोग होता है। बार-बार इन विकारों को दबाने से शरीर के अन्दर बहुत गड़बड़ी होती है और आगे चल कर आंखों की ख़राबी दांतों की ख़राबी, दमा, बवासीर, गठिया, एक्ज़िमा, फालिज इत्यादि जीर्ण रोग शरीर को धर दबाते हैं।

किसी भी रोग में प्राकृतिक उपचारों से बहुत लाभ होता है। रोग के लक्षण जल्द दूर होते हैं, विकार शरीर के बाहर निकल जाते हैं और फिर शरीर नया और तरो-ताज़ा हो जाता है।

बच्चों का प्रायः वही इलाज है जो बड़ों का है। ख़याल इतना रहना चाहिए कि बच्चे की सहन शक्ति भर सभी बातें हों। बच्चों के कुछ ख़ास रोग हैं, जिनका इलाज यहां लिखा जायगा। और रोगों में वही सिलसिला चलाना चाहिए, जो बड़ों के लिए लिखा गया है। पहले के खंडों को पढ़िए।

पहले माता का इलाज--

दूध पीने वाले बच्चों की चिकित्सा के संबंध में यह ख़याल रखना चाहिए कि अगर बच्चे के इलाज के साथ-साथ दूध पिलाने वाली का इलाज भी होना चाहिए; नहीं तो उधर बच्चे के शरीर से विकार निकाला जायगा और इधर फिर पिये हुए दूध के साथ हर रोज़ नया विकार बच्चे के शरीर में प्रवेश करेगा। दूध पिलाने वाली को अगर बुख़ार आता हो या कोई संक्रामक रोग हो तो कुछ दिन माता का दूध छुड़वा कर किसी दूसरी स्वस्थ स्त्री या गाय-बकरी का दूध पिलवाने का प्रबन्ध करना चाहिए। साथ ही स्त्री का मुनासिब इलाज इस किताब में पहले बताये ढंग से करना चाहिए। अगर दूध पिलाने वाली के ऐसी कोई बीमारी न हो, सिर्फ़ साधारण क़ब्ज़ या पेट की गड़बड़ी या ख़ून की साधारण गर्मी हो तो उसको अपना इलाज खान-पान में हेर-फेर करके कर लेना चाहिए। ऐसी स्त्रियों के लिए नीचे दिया हुआ ढंग ठीक होगा--

(१) पहले तीन रोज़ सुबह, दोपहर, शाम--फलाहार। एक बार एक तरह का फल इच्छा भर खाना चाहिए। ऊपर से हर भोजन के साथ पावभर दूध या मठा (शुद्ध शहद या नमक के साथ) पिया जा सकता है। कुछ न हो तो किशमिश का प्रयोग किया जा सकता है। केले को छोड़कर सभी ताजे मीठे फल खाये जा सकते हैं। सुबह में पाख़ाना और मुंह-हाथ धोने से छुट्टी पाकर पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी, ३० मिनट के लिए, और उसके बाद सेर भर गुनगुने पानी का एनीमा लेकर पेट साफ़ करना चाहिए। फिर तीसरे पहर पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। भोजन और मिट्टी की पट्टी और एनीमा में कम से कम एक घंटे का अंतर रहना चाहिए।

(२) इन तीन दिनों के बाद एक हफ्ते के लिए सुबह में फल और दूध या मठा, दोपहर में रोटी या चावल और सादी साग-सब्जी की भाजी और रात में छिलकेदार साबुत मूंग या मसूर की गाढ़ी दाल, जरा सा घी और एक-दो तरह की वैसी ही भाजी खानी चाहिए। मसूर की साबुत दाल से दूध अच्छी मात्रा में और अच्छा बनता है। छिलकेदार दाल से डरने की जरूरत नहीं। इन दिनों रोटी-दाल भरसक एक साथ न खाई जाय।

एक समय मिट्टी की पट्टी और एनीमा पहले की तरह जारी रहेंगे।

(३) इस हफ्ते के बाद मिट्टी की पट्टी और एनीमा बंद कर देना चाहिए। भोजन की विधि वही रहे, लेकिन अगर इच्छा हो तो दोपहर में रोटी या चावल, थोड़ी सी साबुत मूंग या मसूर की दाल और भाजी और रात में सिर्फ़ रोटी भाजी और मुनक्के या अंजीर लेना चाहिए। सुबह का फल-दूध या सिर्फ़ फल या सिर्फ़ दूध या मठा जारी रहे। आगे चल कर दिन के भोजन में दही भी लिया जा सकता है।

इस उपचार से दूध पिलाने वाली का शरीर (अगर कोई सख्त बीमारी नहीं है तो) एक-डेढ़ हफ्ते में ही भला-चंगा हो जायगा और उसके दूध से बच्चे को कोई ख़राबी न होगी।

याद रहे कि जब तक बच्चा दूध पीता है मां को बहुत संयम से रहना चाहिए। मिर्च, खटाई, पकवान, पापड़ और चटपटी चीज़ों का खाना बिल्कुल वर्जित है।

बच्चों के कुछ ख़ास रोगों के इलाज—

जैसा ऊपर कहा गया है, बच्चों के कुछ ख़ास रोग होते हैं। उनका इलाज यहां बताया जाता है। अगर इनके अलावा और भी कोई रोग हो जाय तो आशा है कि जिन पाठकों ने इस किताब को अच्छी तरह पढ़ा है वे उसका भी उचित इलाज उपवास, रसाहार, फलाहार, मिट्टी इत्यादि के प्रयोग और एनीमा-प्रयोग से अच्छी तरह कर लेंगे। जैसा कि बार-बार कहा जा चुका है, सभी रोग जड़-मूल में एक हैं, और इसलिए उनके इलाज का तरीक़ा भी एक ही है। मामूली हेर-फेर से किसी भी रोग का इलाज किया जा सकता है।

सूखा रोग

यह रोग छोटे बच्चों में बहुत प्रचलित है। इसे मिठवा भी कहते हैं। इसमें बच्चा सूखा-साखा, कमजोर, दुबला, पीला और मिज़ाज का चिड़चिड़ा

हो जाता है। इसमें पहले हड्डियां कमजोर रहती हैं, पर आगे चलकर शरीर के सभी अंग कमजोर पड़ जाते हैं। रीढ़ की हड्डी भी झुक सी जाती है और टांगें टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं। कभी कभी बुखार रहता है और पतले फटे दस्त भी आते हैं। बहुत बच्चों की जान इस बीमारी से जाती है।

इसके कई तरह के इलाज भी निकले हैं। बच्चों की पीठें दागी जाती हैं और झाड़-फूंक भी होती है। किसी-किसी में अगर ऊपरी लाभ होता भी है तो बच्चा सदा के लिए कमजोर रह जाता है।

इस रोग का अचूक इलाज नीचे दिए उपायों से किया जा सकता है:—

(१) अच्छे दूध का इन्तज़ाम। बकरी का दूध बहुत गुणकारी होगा।

(२) दूध के साथ-साथ अनार या सन्तरे का थोड़ा सा रस देना। अगर बच्चा बड़ा है तो फल के टुकड़े भी दिए जा सकते हैं। जब कभी शहद के साथ नींबू का रस भी चटाना चाहिए।

(३) हर रोज़ पेड़ू पर एक समय या दोनों समय मिट्टी की हल्की पट्टी रखनी चाहिए। अगर क़ब्ज़ रहे तो एनीमा-प्रयोग।

(४) हर रोज हल्की धूप में बच्चे की मालिश की जाय। धूप से विटामीन 'डी' मिलता है, जो सूखा रोग को दूर करता है। ऋतु के अनुसार बच्चे को धूप में रखना चाहिए। गरमी में सबेरे ही धूप में रखना अच्छा होगा। सिर को बचाना चाहिए।

(५) कुछ घंटे बच्चे के नंगे शरीर में हवा और रोशनी हर रोज़ लगने दी जाय।

(६) अगर बन सके तो बच्चे को ३-४ मिनट या ज़्यादा देर के लिए कुछ दिनों तक हर रोज़ कमर-नहान देना चाहिए।

पसली चलना

अच्छे दूध का इन्तज़ाम, फलों के रस का प्रयोग, पेट और पसली की गरम सेंक और अगर क़ब्ज रहे तो एनीमा—बस, इन्हीं बातों से यह तकलीफ़ जाती रहती है। तकलीफ़ कम हो जाने पर कई दिन तक पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। पट्टी पर सूती कपड़ा रखकर पेड़ू को ऊनी कपड़े से लपेटना चाहिए।

हाथ-पैरों का खिंचना

इस बीमारी में बच्चों के हाथ-पैर सिकुड़ते हैं और कभी-कभी बेहोशी सी भी हो जाती है। यह बीमारी भी अक्सर घातक होती है, लेकिन शुरू से ही ठीक उपायों के किये जाने पर जरूर चली जाती है।

यह हाजमे की खराबी से ही होती है। दूध या फलों के रस का अच्छा प्रबंध रहना चाहिए। लेकिन अगर बीमारी का दौरा जोरदार या बार-बार हो तो बच्चे को सहने लायक़ (बहुत नहीं, लेकिन काफ़ी) गरम पानी में ५ से १० मिनट तक बैठाना चाहिए। गर्दन के नीचे का सारा शरीर पानी में रहे। पानी कितना गरम हो, इसे अच्छी तरह देख लो। दौरे के समय फल का रस भी न देना चाहिए। सिर्फ़ गुनगुना पानी दिया जा सकता है। एनीमा से पेट जरूर साफ़ करते रहना चाहिए। बीमारी के शुरू होते ही अगर बच्चे को एक-डेढ़ दिन सिर्फ़ गरम पानी पर रखा जाय, कुछ दिनों तक हर रोज गरम पानी में बैठाया जाय और एनीमा से पेट साफ़ कर दिया जाय तो यह बीमारी जाती रहती है।

गर्दन में सूजन

इसे अंगरेजी में 'मम्स' (mumps) कहते हैं। इसमें कौड़ियों की त्रिभुजाकार सूजन गर्दन में दोनों ओर होती है। सूजी हुई कौड़ी की ऊपरी नोक कान के सामने रहती है, दूसरी नोक कल्ले की तरफ़ और तीसरी कान के पीछे। कभी-कभी बुखार भी रहता है। मुंह में लार कम हो जाती है और ख़ुश्की (सूखापन) मालूम होती है।

रोगी को कम से कम दो दिन सिर्फ़ फल (हो सके तो सन्तरे) के रस पर रखना चाहिए और हर रोज एक या दो बार एनीमा देना चाहिए। जहां सूजन है वहां दिन में तीन-बार गरम और ठंडी सेंक देनी चाहिए—दो-तीन लगातार गरम और तब एक ठंडी। इस तरह एक बार की सेंक होगी। जब सूजन बिल्कुल जाती रहे और बच्चा भोजन निगल सके तो एक-दो दिन सिर्फ़ फल पर रखकर नियमित भोजन शुरू कराना चाहिए।

कुकुर खाँसी

यह एक बार देर तक चलने वाली और परेशान करने वाली खांसी है। अंगरेजी में इसका नाम 'हूपिंग कफ़' (whooping cough) है।

पहले रसाहार और एनीमा-प्रयोग, फिर फलाहार और तब नियमित आहार और साथ-साथ दिन में दो-तीन बार या जब-जब खांसी उठे गर्दन और सीने के चारों तरफ़ गीली पट्टियों (गरम कपड़े से ढंकी) से इस रोग का इलाज करना चाहिए। दूध तब तक न दिया जाय जब तक कि नियमित भोजन न शुरू हो।

डीप्थीरिया (DIPTHERIA)

यह एक भयानक रोग है, जिस से गलत इलाज के कारण बहुत से बच्चों की जानें जाती हैं। इसमें बुखार और गले में खराश रहती है, कमज़ोरी जल्द बढ़ती है, और गले की कौड़ियों पर टॉन्सिल (tonsil) की तरह सूजन आ जाती है। साथ ही इन कौड़ियों पर एक भूरी या बादामी रंग की झिल्ली, जिसके बाहरी किनारे पर सुर्खी रहती है, फैल जाती है। यह झिल्ली बढ़कर अक्सर गले के नीचे और ऊपर तालू की तरफ़ या नाक में आ जाती है। इसमें कमज़ोरी से बच्चों की जान निकल जाती है। इसके आराम होने में ४–५ दिन से लेकर तीन हफ्ते लग सकते हैं।

इसका इलाज भी और बीमारियों के इलाज की तरह है, लेकिन इसमें कुछ विशेष सावधान होना पड़ता है। जब तक बुख़ार रहे तब तक उपवास ज़रूरी है। अगर सन्तरा या ऐसे ही किसी फल का रस दिया जाय तो दिन में सिर्फ़ दो-तीन बार और थोड़ी मात्रा में। दूध बुख़ार की हालत में हरगिज़ न दिया जाय। उपवास या रसाहार के दिनों में दिन में दो बार हल्का एनीमा देना चाहिए। साथ ही दिन में एक बार सारे शरीर पर गीली पट्टी और तीन-तीन घंटे पर गर्दन पर गीली पट्टी भी देनी चाहिए। इस बीमारी में मुंह में लार के साथ विषैले पदार्थ निकलते हैं, जिनके घोटने से ख़राबी होती है, इसलिए रोगी को भरसक चित्त लेटने न देना चाहिए। वह दाहिनी या बाईं करवट लेटे और उसके मुंह में दांतों के आस-पास थोड़ी साफ़ रुई इस तरह रखनी चाहिए कि लार उसी में जज्ब होती (सूखती) जाय। रुई को दो-दो घंटे पर बदलते रहना चाहिए। बुख़ार जब दूर हो जाय तो कुछ दिन रोगी को फलाहार पर रखकर नियमित भोजन पर लाना चाहिए।

पेट में जोंक (केंचुए)

अक्सर बच्चों के पेट से केंचुए (जोंक) निकलते हैं। ये छोटे होते हैं, लेकिन कभी कभी बड़े केंचुए भी निकल पड़ते हैं। इसको दूर करने के लिए रोगी को सात-आठ दिन सिर्फ़ फलों पर रखकर फिर नियमित भोजन पर लाना चाहिए।

हलवा, पूरी इत्यादि कुछ दिनों तक न खाना चाहिए। भोजन में बहुत दिनों तक सावधानी चाहिए। नीबू का रस मिले पानी या नीम की पत्तियों के साथ उबले (छने) पानी का कुछ दिनों तक एनीमा बहुत लाभदायक होगा।

सोते में पेशाब करना

इसको दूर करने के लिए भी पहले सात-आठ दिन फलाहार और एनीमा का सहारा लेना चाहिए। साथ ही ३-४ मिनट का कमर-नहान या दो मिनट के लिए ठंढा बैठक-नहान हर रोज देना चाहिए।

दांत निकलना

छोटे बच्चों के दांत निकलने के समय अक्सर बहुत सी तकलीफ़ें होती हैं। लेकिन अगर माता अपने स्वास्थ्य का ख़याल रखे और बच्चों को अच्छी तरह रखे तो बहुत थोड़ी या कुछ नहीं तक़लीफ़ होती है। तकलीफ़ होने पर पेड़ू पर मिट्टी और हल्का एनीमा, साथ ही उचित पथ्य से काम लेना चाहिए।

स्त्रियों का स्वास्थ्य

स्त्री-रोगों के कारण ; स्त्री-रोगों के इलाज ; गर्भावस्था ;
स्त्रियों के लिए कसरतें ।

स्त्री-रोगों के कारण

इन दिनों औरतों की बीमारियां इस तरह फैल रही हैं और उनके कारण इतनी जानें जाती हैं कि उसे सोचकर चिन्ता हो जाती है। इसके बारे में एक दिलचस्प बात यह है कि यह बीमारियां ज्यादातर शहर की औरतों, अमीर घराने की औरतों और उन औरतों को होती हैं, जो कुछ भी काम नहीं करतीं और काहिली की जिन्दगी बिताती हैं। देहात की औरतों को इन बीमारियों से बहुत कम दुख भोगना पड़ता है और देहात की वे औरतें, जो खुद सभी काम-काज करती हैं और जिन्हें अपने धन्धों के लिए घर के बाहर निकलने का भी मौका मिलता है, स्त्री-रोगों से बिल्कुल बरी रहती हैं। इन औरतों को न तो स्त्री-रोग सताते हैं और न बच्चा जनने के समय उतनी तकलीफ़ होती है जितनी कि और औरतों को। शहर की औरतों को पढ़ी लिखी धाइयों और मशहूर लेडी डाक्टरों की देख-रेख में रहते हुए भी बच्चा जनने के बाद बहुत सी बीमारियां होती हैं और बहुतों के तो जान पर ही बीतती है; देहात की औरतें बच्चा जनने के बाद की तकलीफ से बहुत कम, नहीं के बराबर, मरती हैं। उनके लिए वही पुरानी देहाती चमाइनें रहती हैं, फिर भी वे खतरे से बची रहती हैं। इससे भी ज्यादा आश्चर्य की बात यह है कि जानवरों को बच्चा जनने के बाद का खतरा बिलकुल नहीं होता। इन दिल-चस्प बातों पर अच्छी तरह गौर करने से स्त्री-रोगों का सच्चा कारण मालूम हो जायगा।

स्त्री-रोगों के ख़ास कारण--

(१) औरतों की खराब और कमज़ोर तनदुरुस्ती, जो ग़लत रहन-सहन और आहार-विहार से होती है। कसरत की कमी या बिलकुल अभाव।

(२) बीमारियों में ग़लत इलाज--जहरीली दवाओं के इस्तेमाल से बीमारियों का अन्दर दबाया जाना, जिसका असर स्त्रियों के मासिक धर्म पर पड़ता है। फिर मासिक धर्म की बीमारियों के दिनों में भी दोष-पूर्ण चिकित्सा, जिसका असर और भी बुरा होता है। गर्भाशय में नश्तर या किसी प्रकार भी छुरी और खरोचने वाले यंत्रों का इस्तेमाल;

सच पूछिए तो स्त्री-रोगों के भी वही कारण हैं, जो और रोगों के हैं। अगर भोजन ठीक रहे, अगर काफ़ी कसरत की जाय, अगर काफ़ी साफ़ हवा फेफड़े में जाय और शरीर में लगे, अगर आराम के लिए काफ़ी समय मिले, अगर ठीक

पोशाक (बहुत कसी नहीं) पहनी जायं और अगर मन के भाव और विचार ठीक रहें तो स्त्री-रोग कदापि न हो।

हम जानते हैं कि हमारी औरतों की हालत कितनी गिरी हुई है, जिसका ख़ास कारण है कि हम मर्दों की मूर्खता, स्वार्थपरता, ज्यादती, अन्याय। हम न तो उन्हें पढ़ाते हैं और न संसार देखने और बातें समझने का मौक़ा देते हैं। हम खुद थोड़ा सा काम करते हुए सुख-चैन के दिन बिताते हैं पर उनसे बुरी तरह घर के सभी काम-धन्धे करवाते हैं और उन्हें काफ़ी आराम करने नहीं देते। हम मोह से मिला हुआ झूठा प्रेम दिखाते हैं पर उनकी सच्ची परवाह नहीं करते। इन दिनों बातें कुछ बदली जरूर हैं, फिर भी बहुत कुछ सुधार की गुंजाइश है। स्त्री-जाति को ऊँचा उठाकर देश, जाति का सच्चा कल्याण करने के लिए हमें बहुत कुछ करना होगा, और बिना उन्हें ऊँचा उठाये हमें न तो निजी पारिवारिक सुख मिलेगा और न आने वाली पुश्तें ही ठीक हो सकेंगी।

तीन बातें—

स्त्री-रोगों को समझने के लिए तीन बातों का समझना जरूरी है।

(१) औरतों की जननेन्द्रिय और उसके कल-पुर्जे बहुत नाजुक हैं। उनके साथ अनुचित छेड़-छाड़ या नश्तर के औजारों का व्यवहार बहुत हानिकारक है।

(२) यह कल-पुर्जे सारे शरीर के अंग, जरूरी हिस्से हैं, और अपने पास के चारों तरफ़ के कल-पुर्जे से बहुत सरोकार रखते हैं। अगर उन कल-पुर्जों में गड़-बड़ी होती है तो उसका बुरा असर जननेन्द्रिय के कल-पुर्जों पर पड़ता है। उदाहरण के लिए यह कल-पुर्जे ख़ास कर गर्भाशय, बड़ी आंत के नीचे और छोटी आंतों के सामने (आगे को) पड़ते हैं। अगर आंतों में वायु या गैस है या अगर क़ब्ज़ के कारण आंतों में मल भरा है तो ऐसी आंतों का दबाव गर्भाशय पर बराबर पड़ता है। इस दबाव से गर्भाशय कभी नीचे की ओर और कभी आगे की ओर झुकता है और इस तरह कुछ समय के बाद अपनी जगह से टल जाता है। इससे गर्भाशय का अपने स्थान से टल जाना और दूसरे बहुत से रोग होते हैं, पर उन रोगों को दूर करने के लिए इस सभ्यता और विज्ञान (साइन्स) के जमाने में विषैली दवाओं और छुरी का प्रयोग किया जाता है, जो और भी बुरा होता है।

(३) मासिक धर्म से स्त्रियों के शरीर का बहुत सा अन्दरूनी विकार हर महीने निकल जाता है। स्त्रियों के लिए यह एक बड़े फ़ायदे की बात है, लेकिन

खेद यह है कि शायद सैकड़ों पीछे ९० औरतों को ठीक ठीक मासिक धर्म नहीं होता।

जब हम इन बातों को अच्छी तरह समझेंगे और जब जननेन्द्रिय और उसके कल-पुर्जों को सारे शरीर का एक अंग, उससे अलग नहीं, समझेंगे, तभी हम अपनी औरतों को स्त्री-रोगों से बचाने में समर्थ हो सकेंगे।

स्त्री-रोगों का इलाज

पहले दी हुई बातों को समझना--

स्त्री-रोगों की चिकित्सा करने के लिए यह जरूरी है कि इस किताब में दी हुई पहले की सारी बातें अच्छी तरह समझी जायं, क्योंकि, जैसा कि बार-बार कहा गया है, अचूक-चिकित्सा-विधि से रोगों को जड़-मूल से दूर करने के लिए सारे शरीर को शुद्ध, पुष्ट और परिष्कृत करना होता है, और ऐसा कर सकने के लिए उपवास, रसाहार, फलाहार, ठीक-ठीक श्वास-क्रिया, मिट्टी, पानी और धूप के प्रयोग, कसरत और आराम से काम लेना होता है। इसलिए पाठक या पाठिकाएं इनसे संबंध रखने वाले नियमों को अच्छी तरह समझें, और तब वे खुद ही स्त्री-रोगों की उचित चिकित्सा कर सकेंगी। फिर भी स्त्री-रोगों की चिकित्सा के बारे में कुछ बताया जा रहा है।

मासिक धर्म--

जैसा कि बताया जा चुका है, मासिक धर्म से स्त्रियों के शरीर के विकार हर महीने निकल जाया करते हैं। गर्भावस्था को छोड़ कर इसका हर महीने ठीक-ठीक हो जाना बहुत जरूरी है। 'ठीक-ठीक' होने का मतलब है कि मासिक धर्म हर २८वें दिन शुरू हो जाय, उस समय कोई खास तकलीफ--कमर या पेट में दर्द या कोई और रोग--न हो, खून का रंग साधारण चमकीला लाल हो, उसकी मात्रा न बहुत कम न ज़्यादा हो और ३-४ रोज रहकर वह बंद हो जाय। ग़लत रहन-सहन और ग़लत आहार-विहार के कारण अक्सर ऐसा नहीं होता और तब और बहुत सी बीमारियां शरीर को धर दबाती हैं। इसलिए जीवन-संबंधी सभी बातों पर उचित ध्यान रखते हुए मासिक धर्म में कुछ भी गड़बड़ी न होने देना हर स्त्री और उसके पुरुष-अभिभावक का कर्त्तव्य है।

मासिक धर्म के समय कोई काम-काज भरसक न करना चाहिए। आराम करना या हल्के कामों में लगे रहना इस अवस्था में लाभदायक होता है। इसमें खाना भी हल्का और सात्विक खाना चाहिए--एक समय साधारण रोटी या चावल और भाजी और दूसरे समय फल और दूध। हां, अगर उन्हीं दिनों कोई नई तकलीफ़ खड़ी हो जाय तो फलों के रस या सिर्फ़ दूध पीकर ही रहना चाहिए। कब्ज़ दूर

करने के लिए सहने लायक़ गरम पानी का एनीमा लिया जा सकता है। मासिक धर्म के दिनों में नहाना न चाहिए न ठंडे जल का प्रयोग करना चाहिए। स्वस्थावस्था में गुनगुने पानी से बंद कमरे में बदन पोंछा जा सकता है।

स्त्रियों के बहुत से रोग मानसिक धर्म से ही संबंध रखते हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है:—

मासिक धर्म का बंद हो जाना—

इसे अंगरेज़ी में 'अमेनोरिया' (amenorrhoea) कहते हैं। गर्भावस्था में लगभग साल भर के लिए और फिर ४०–४५ की उम्र में बराबर के लिए मासिक धर्म का बन्द हो जाना स्वाभाविक है। लेकिन इन अवस्थाओं को छोड़कर अगर मासिक धर्म रुक जाय तो उसे रोग समझना चाहिए। इसके रुकने के इन नीचे दिये कारणों को दूर करना चाहिए:—

(१) शरीर की कमज़ोरी और खून की कमी।

(२) बहुत चिन्ता, शोक, डर और इसी तरह के दिल को चिन्तित और उद्विग्न करने वाले भाव।

(३) गर्भाशय की बनावट की ख़राबी और उसका अपनी जगह से टल जाना। इसका विवरण आगे मिलेगा।

(४) बहुत कसी पोशाक और साड़ी का पहनना, ख़ासकर जिससे कमर और उसके आस-पास के अंग कसे रहते हों।

इन बातों को दूर करने से ही यह रोग दूर हो जायगा. इलाज के लिए इन बातों पर ध्यान देना चाहिए:—

(१) अगर रोगी बहुत कमज़ोर न हो तो तीन दिन रसाहार और एक या दोनों समय एनीमा-प्रयोग. अगर रोगी कमज़ोर है तो नं० (२) से शुरू करो।

(२) फिर सात दिन फलाहार। दिन में तीन बार। इन दिनों भी एक समय एनीमा।

(३) इसके बाद सात (अगर फलाहार से शुरू किया है तो दस) दिन तक फल के साथ-साथ थोड़ा दूध या मठा भी पीना चाहिए। इन दिनों एनीमा की ज़रूरत न होनी चाहिए, पर अगर हो तो लिया जाय।

(४) फिर नियमित भोजन, जैसा कि इस किताब में पहले बताया गया है।

(५) शक्ति भर टहलना या कसरत या दोनों, और सुबह शाम गहरी सांस का लेना।

(६) सुबह को साधारण नहाना।

(७) फल और दूध शुरू करने के बाद सबेरे उपस्थ-स्नान और तीसरे पहर या रात में सहने लायक गरम पानी में कमर-नहान लिया जाय। इस नहान के लिए टब में ठंडे पानी के बदले काफ़ी गरम पानी भरना चाहिए पानी जितना ज्यादा गरम रहेगा लाभदायक होगा लेकिन इतना न हो कि बदन जल जाय। टब में पैरों को बाहर निकाल कर कमर-नहान की तरह बैठना चाहिए, पेड़ू मलने की जरूरत नहीं। बैठने का समय ५–७ मिनट से १५ तक शक्ति के अनुसार हो। पानी बराबर गरम रहे। इसके लिए थोड़ी थोड़ी देर के बाद टब में से २–३ लोटे पानी निकाल कर उतना ही गरम पानी डालते रहना होगा। टब से निकलने के बाद शरीर को अच्छी तरह पहले मामूली गोले (ठंडे पानी में भिगोये हुए) और तब सूखे तौलिए से पोंछ लेना चाहिए। अगर रात में सोने के पहले यह नहान लिया जाय तो और अच्छा हो, लेकिन भोजन और नहान में कम से कम दो घंटे का अंतर जरूर हो।

(८) जब-कभी धूप-नहान और पन्द्रह दिन में एक बार भाप-नहान। इन नहानों के नियमों को अच्छी तरह समझ लीजिए।

नोट—(१) अगर मासिक धर्म शुरू हो जाय तो सभी नहान बंद कर देना चाहिए। कब्ज़ को दूर करने के लिए एनीमा ले सकते हैं। मासिक धर्म की अवधि के बाद फिर उपस्थ-नहान लेने लग जाना चाहिए।

(२) अगर जरूरत हो तो दो-ढाई महीने बाद एक बार फिर ५–७ दिन के लिए सिर्फ़ फलाहार करके नियमित भोजन पर आ जाना चाहिए।

कष्ट के साथ मासिक

अंगरेजी में इसका नाम 'डिसमिनोरिया' (dysmenorrhoea) है। इस रोग में मासिक धर्म के पहले के या उन्हीं दिनों या बाद में या कुछ पहले से, कुछ बाद तक, कमर और जांघ में हलका या कष्टदायक दर्द रहता है।

अगर मासिक धर्म के २-३ दिन पहले दर्द शुरू हो तो समझना चाहिए कि नाड़ी-संस्थान की कुछ गड़बड़ी है या डिम्ब-संबंधी ख़राबी है।

अगर मासिक शुरू होने के ठीक पहले दर्द शुरू होता हो तो उसका कारण योनि-द्वार का तंग होना या उसके अंदर की कुछ रुकावट है। पहली हालत में अक्सर वैवाहिक जीवन बिताने के कुछ दिन बाद तकलीफ़ जाती रहती है, लेकिन अगर रुकावट है तो अनुभवी चिकित्सक से सलाह लेने की जरूरत पड़ती है।

अगर खून निकलने की अवस्था में ही या बाद भी दर्द हो तो उसका कारण योनि-द्वार की सूजन और ज्वरावस्था है।

अगर मासिक शुरू होने के पहले से बाद तक दर्द रहे तो समझना चाहिए कि नाड़ियों की गड़बड़ी के साथ-साथ योनि-द्वार की सूजन भी या जितने भी कारण ऊपर बताये गये हैं सभी थोड़ी-बहुत मात्रा में मौजूद हैं।

इस कष्ट को दूर करने के लिए पहले तो ऊपर वाले बताये उपायों से (जो मासिक धर्म के लिए बताये गये हैं) शरीर को तनदुरुस्त बनाने पर ध्यान देना चाहिए। उपवास, रसाहार, फलाहार, नियमित भोजन, कसरत इत्यादि से जब शरीर अच्छी हालत में हो जायगा तो तकलीफ़ का कारण बहुत कुछ दूर हो जायगा। इसमें गरम और ठंडे बैठक-नहान से बहुत लाभ होता है। अगर दर्द मासिक धर्म के पहले शुरू हुआ हो तो इस नहान के अलावा (अतिरिक्त) दर्दवाले स्थान पर दिन-रात में दो-तीन बार गरम और ठंडी सेंक भी देनी चाहिए। एक बार में दो गरम एक ठंडी, फिर दो गरम, एक ठंडी, यानी कुल छः सेंक काफ़ी होंगी। खून बंद होने के बाद भी अगर दर्द रहे तो ऐसा ही करना चाहिए, लेकिन खून निकलने के दिनों में दर्द को शान्त करने के लिए बैठक-नहान न लेकर सिर्फ़ इन सेंकों से ही काम लेना चाहिए। पेड़ू में दर्द रहने से मिट्टी की गरम पट्टी भी आराम पहुंचाती है। नियमित इलाज कई महीनों तक जारी रखना होगा।

एक तरकीब यह भी अच्छी है कि मासिक शुरू होने के पांच सात दिन पहले तीन दिन रसाहार और दो-तीन दिन फलाहार पर बिताये जायँ।

इस रोग में सारे शरीर के या स्थानीय (मुकामी) धूप या भाप-नहान से भी बहुत लाभ होता है। स्थानीय धूप-नहान के लिए दर्द वाले स्थान को केले के पत्ते से ढंक लेना चाहिए

इन सभी बातों के लिए एक कार्यक्रम बना लेना जरूरी है।

बहुत खून का आना

मासिक धर्म के समय बहुत ज़्यादा खून का शरीर से निकलना अँगरेजी में 'मेनोरेजिया' (menorrhagia) कहा जाता है। अपने शरीर की अवस्था के अनुसार किसी किसी के ज़्यादा खून आता ही है, लेकिन अगर उससे कमज़ोरी बढ़े या और कोई गड़बड़ी हो तो उसे रोग समझना चाहिए और उसका उचित इलाज करना चाहिए। खेद है कि इस रोग का इलाज जो इन दिनों प्रचलित है वह उचित नहीं है। उसमें सिर्फ़ खून के अधिक बहाव को रोकने की कोशिश की जाती है। यह समझने की बात है कि अपने अन्दर अधिक विकार रहने के कारण शरीर उस विकार को दूर करने के लिए ज़्यादा खून निकालता है। इसलिए इलाज खून की मात्रा को कम करने या रोकने के लिए नहीं बल्कि शरीर को शुद्ध और स्वस्थ करने के लिए होना चाहिए।

इस रोग के ठीक इलाज की विधि वही है जो 'मासिक धर्म के बंद होने' की अवस्था के लिए बताई गई है। इसमें भी उसी तरह उपवास, रसाहार, भोजन-सुधार और ताक़त भर कसरत के सहारे शरीर के खून को शुद्ध और उसके सब अंगों को रोगरहित और मज़बूत किया जाता है। सिर्फ़ गरम पानी के प्रयोग के बदले ठंडे पानी से ही इसमें काम लेना ठीक होता है। पाठक और पाठिकाओं को याद रखना चाहिए कि गरम पानी फैलाता है, सख्ती (कड़ापन) को दूर करता है। ठंडा पानी, सिकोड़ता है, पहले ठंड पैदा कर फिर गरमी लाता है, इसलिए जब खून के बंद होने, रुकने या कम होने की अवस्था हो तो गरम पानी का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि गरम पानी दर्द को भी दूर करता है, लेकिन गरम के बाद ठंडे पानी का भी प्रयोग ज़रूरी है, क्योंकि लगातार गरम पानी के प्रयोग से कमज़ोरी बढ़ती है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए इस रोग में उपस्थ-स्नान या ठंडे बैठक-नहान से काम लेना चाहिए। हां, अगर बीच बीच में कुछ दर्द या और कोई तकलीफ़ हो तो जैसा उचित हो वैसा करना चाहिए। इलाज कुछ महीनों तक एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार करना चाहिए।

अनियत मासिक

अक्सर ऐसा भी होता है कि कभी एक महीने पर, कभी पंद्रह दिन पर ही और कभी दो-ढाई महीने के बाद मासिक धर्म होता है। बताने की ज़रूरत नहीं कि इस गड़बड़ी को ठीक करने के लिए भी वही उपाय काम में लाने होंगे—रसाहार,

फलाहार, भोजन-सुधार, एनीमा-प्रयोग, कसरत, आराम और अवस्था देखकर गरम या ठंडे पानी का इस्तेमाल।

गर्भाशय का अपनी जगह से टल जाना

इसके नीचे दिये कारण हो सकते हैं :—

(१) आंतों में वायु-विकार और कब्ज, जो पहले बताया जा चुका है।

(२) सारे शरीर की कमज़ोरी।

(३) कसी पोशाक।

(४) अक्सर नीचे की तरफ़ झुकना। (किसी किसी काम-धंधे में बराबर झुक कर काम करने की जरूरत होती है।)

(५) कसरत के अभाव से पेड़ू की मांस-पेशियों की कमज़ोरी।

(६) कमज़ोरी में बहुत कसरत।

(७) बच्चा जनने के समय धाई की असावधानी और उसके बाद गलत रहन-सहन।

(८) स्त्री-रोगों में गलत इलाज।

इस रोग में कमज़ोरी और बहुत तरह की गड़बड़ी होती है। खेद है कि गर्भाशय को अपनी जगह पर लाने के लिए अक्सर नश्तर से काम लिया जाता है, जिससे आगे चलकर और भी गड़बड़ी बढ़ जाती है।

इस रोग के इलाज के लिए पहले उन्हीं साधारण नियमों से काम लेना चाहिए जो ऊपर बताये गये हैं। एक अच्छे कार्य क्रम के अनुसार (पहले कुछ दिन फलाहार और एनीमा से पेट साफ़ करके) भोजन-सुधार के साथ-साथ नियमित ठंडे बैठक-नहान से काम लेना चाहिए। कभी कभी गरम और ठंढे-बैठक नहान, दोनों, लिया जा सकता है। साथ ही कसरत भी बहुत जरूरी है। स्त्रियों के लिए कसरतें आगे बताई जायँगी। मर्दों के लिए जो कसरतें लेट या बैठकर करने की बताई गई हैं वे सब इसके लिए लाभदायक हैं। कसरत पहले अन्दाज से शुरू कर के धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए।

अक्सर गर्भाशय नीचे की ओर झुका होता है और कभी कभी अन्दर का भाग बाहर निकल कर लटक भी जाता है। ऐसी हालतों में लेटकर या बैठकर की जाने वाली कसरतों को ऐसे तख्त या पटरी पर करना चाहिए, जिसका पैताना कुछ ऊंचा उठा हो, जिससे सिर ज्यादा निचाई पर हो जाय। इस तरह करने से पेड़

की पेशियां तो मजबूत होंगी ही, साथ ही गर्भाशय धीरे-धीरे अपने ठीक स्थान पर आकर अटल हो जायगा। एक बात और है। जिसे यह रोग हो उसे कुछ महीनों तक ज़्यादा चलना-फिरना न चाहिए। चलने-फिरने में गर्भाशय का झुकाव नीचे की तरफ होता है जिससे रोग बढ़ेगा। साथ ही दिन में अक्सर लेटे रहना या टांगें फैलाकर बैठना, कभी-कभी टांगों को सिर की सतह से जरा ऊंचा करके भी लेटना या बैठना चाहिए। इन दिनों बोझ उठाने या कोई भी मेहनत का काम न करना चाहिए। बड़े-बड़े शहरों के बाजार में एक तरह की पेटी मिलती है, जिसे अंगरेजी में 'ट्रस' (truss) कहते हैं। ट्रस को चिकित्सा के दिनों में, जब तक पेड़ की मांसपेशियां मज़बूत न हो जायं, लगाना लाभदायक होता है।

अक्सर गर्भाशय टलकर पीछे या सामने झुका होता है। इन सब बातों के समझने के लिए अनुभव चाहिए या किसी अनुभवी डाक्टर की जांच से ये बातें जानी जा सकती हैं।

जब गर्भाशय पीछे झुका होता है तो कठिन कब्ज, पेट और पाखाने के रास्ते में भारीपन, पीठ में दर्द इत्यादि लक्षण होते हैं। मासिक के समय वे लक्षण और कष्टकर (तकलीफ देने वाले) हो जाते हैं और खून का बहाव भी बहुत कष्टकर और ज़्यादा मात्रा में होता है। ऐसी हालत में चिकित्सा के दिनों में और उपायों के साथ-साथ दिन में कभी कभी पेट के बल पट लेटना (जितनी देर तक आराम से लेटा जा सके) लाभ पहुंचाता है। ध्यान रहे कि खाने के तुरंत बाद इस तरह न लेटना चाहिए।

जब गर्भाशय आगे को झुका होता है तो उस समय के खास लक्षण हैं बहुत पेशाब करने की इच्छा लेकिन पेशाब अच्छी तरह न कर सकना, कष्टकर मासिक और कभी-कभी बंध्यापन (गर्भ का न रहना)। इस हालत के इलाज में पीठ के बल अधिक लेटना चाहिए और कसरतों का सिर जरा नीचे कर के उसी तरह करना चाहिए जिस तरह कि पहले बताया गया है।

बताने की जरूरत नहीं कि रोगों के जड़-मूल से जाने और तनदुरुस्ती बिलकुल अच्छी होने में समय लगेगा।

गर्भाशय में जलन

गर्भाशय में जलन या ज्वरावस्था (जब कि दर्द और सूजन रहती है) के कई कारण हो सकते हैं—(१) शारीरिक कमजोरी के साथ साथ बातगठिया या टी० बी० की शिकायत. (२) बच्चा जनने के बाद गर्भाशय में

जहरीले जख्म का हो जाना, (३) ठंड लगने या भय इत्यादि के आवेग से, (४) अनियमित विवाहित जीवन से, इत्यादि।

इलाज के लिए उन्हीं साधारण उपायों (अगर ज्यादा तकलीफ़ रहे तो उपवास या रसाहार से ही शुरू करो) के साथ-साथ पानी का उचित प्रयोग करना चाहिए। सहने लायक़ काफ़ी गरम पानी का एनीमा और गरम और ठंढा बैठक-नहान लाभदायक होते हैं। अगर रोगी की शक्ति अच्छी नहीं है तो गरम और ठंढे बैठक-नहान के बदले पेड़ू पर मिट्टी या कपड़े की काफ़ी मोटी ठंढी पट्टी ही देनी चाहिए। इस पट्टी को काफ़ी मोटे गरम (ऊनी) कपड़े से अच्छी तरह लपेट देना चाहिए। आशा है कि पाठक या पाठिकाएँ पट्टी इत्यादि देने के नियमों को भूली न होंगी।

ऐसी ऐसी हालतों में एक तरह का घर्षण बैठक-नहान बहुत लाभदायक होता है। उसका तरीक़ा यों है। ठंडे पानी से भरे एक टब में तिपाई रखनी चाहिए। पानी तिपाई तक टकराता रहे। उस तिपाई पर रोगी कपड़े उतारकर और पैरों को टब के दोनों ओर बाहर रखते हुए बैठ जाती (जाता, क्योंकि मर्दों को भी विशेष हालतों में यह स्नान दिया जा सकता है) है, और या तो खुद या कोई दूसरा व्यक्ति (दास दासी या कोई संबंधी) तेज़ी के साथ हाथों से पेट, पेड़ू, पीठ और छाती पर पानी उछाल उछाल कर उन हिस्सों को रगड़ रगड़ कर धोता है। इस स्नान को जल्दी ही, ज़्यादा से ज़्यादा ५ मिनट के समय में, खत्म करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि रगड़ से तकलीफ़ न हो। बंद कमरे में और अगर सर्दी हो तो जलते कोयलों की अंगीठी रखकर यह स्नान लेना चाहिए। साथ ही रोगी की शक्ति भी देख लेनी चाहिए। किसी भी जीर्ण रोग में, जब कि रोगी की हालत सुधरती जा रही है और शरीर में ताक़त बढ़ रही है, यह स्नान स्त्री या पुरुष रोगी को लाभ के साथ दिया जा सकता है।

* * * *

नोट—इन सब ऊपर दिये हुए रोगों में रीढ़ के अगल-बगल की और पेड़ू और कूल्हे की नियमित मालिश बहुत लाभदायक होती है। पेड़ू और कूल्हे की मालिश अनुभवी चमाइन या धाइयां कर सकती हैं।

गर्भाशय में फोड़े इत्यादि

अक्सर गर्भाशय में छोटी छोटी गोली की तरह गुमड़ियां और कभी-कभी फोड़े हो जाते हैं। इनको दूर करने के लिए गर्भाशय के भीतरी हिस्से को छुरी से खुरचने या फोड़ों में नश्तर देने के उपाय काम में लाये जाते हैं। ये रोग भीतरी

विकार से होते हैं और सिर्फ़ खुरचने या नश्तर देने से जड़ से नहीं जाते। इनसे सच्चा लाभ नहीं होता। सच्चा लाभ क्या (इन बातों से शुरू-शुरू में कुछ लाभ सा मालूम होता है) पर पीछे बेहद ख़राबियां होती हैं। ये रोग तभी जा सकते हैं जब कि शरीर के विकार दूर कर दिये जायँ और शरीर तनदुरुस्त हो जाय। इस मामूली बात को समझते हुए चिकित्सक ऊपर बताये नियमों का पालन कर इन गुमड़ियों या फोड़ों को दूर कर सकता है। इन हालतों में शक्ति के अनुसार पहले ३ से ५ या और ज़्यादा दिनों के लिए रसाहार, ७ दिनों के लिए फलाहार और तब १५–२० दिनों के लिए दूध के भोजन से बहुत जल्द लाभ होता है। रसाहार के दिनों में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और एनीमा प्रयोग और फलाहार के दिनों में उपस्थ-स्नान या ठंढा बैठक-नहान या गरम और ठंडा बैठक-नहान भी शुरू करना चाहिए। साथ ही श्वास-क्रिया, कसरत और उचित आराम के सहारे ये रोग जरूर ही दूर किये जा सकते हैं।

हफ्ते में दो-तीन बार जननेन्द्रिय का डूश (एनीमा) भी लिया जा सकता है। इसकी विधि वही है जो पाखाने के रास्ते से एनीमा लेने की। इसके लिए एनीमा-यंत्र के साथ साथ एक और उसका आगे का हिस्सा मिलता है, जिससे यह डूश लिया जा सकता है। रोगी पीठ के बल सिर्फ़ लेट जाय, सिर को नीचा करने की ज़रूरत नहीं है। पानी के बर्तन को तीन फ़ुट से ज्यादा ऊँचा न रखना चाहिए। गुनगुना पानी (ठंडा नहीं) बराबर काम में लाना चाहिए।

श्वेत-प्रदर

श्वेत-प्रदर या अँगरेजी भाषा में 'ल्युकोरिया' (lucorrhoea) कमज़ोर औरतों को और कभी-कभी स्त्री-रोगों में ग़लत इलाज के कारण होता है। इसको दूर करने के लिए ऊपर बताये साधारण उपायों से, जैसा कि अमेनोरिया (मासिक का बंद हो जाना) को दूर करने के लिए बताया गया है, शरीर को तनदुरुस्त बनाना चाहिए। फिर तो यह रोग खुद ही चला जायगा। शुरू-शुरू में दस-पन्द्रह दिन के फलाहार और तब नियमित आहार, साथ ही साथ एनीमा-प्रयोग से काम लेना चाहिए। अगर कमज़ोरी बहुत नहीं है तो फलाहार के पहले तीन दिन रसाहार बहुत अच्छा होगा। फलाहार और नियमित आहार के बीच कुछ दिन फल और दूध पर रहना भी अच्छा होगा। फल और दूध शुरू करने के समय से, या अगर ताक़त हो तो सिर्फ़ फल शुरू करने के दो-तीन दिन बाद से ही, गरम और ठंढा बैठक-नहान भी हफ्ते में

चार-पांच दिन लेना चाहिए। कुछ दिनों के बाद उपस्थ-नहान शुरू करना चाहिए। हफ़्ते में एक-दो दिन जननेन्द्रिय का डूश भी लेना चाहिए। इन सबों के साथ खुले में रहना, ताक़त भर टहलना और कसरत करना, गहरी सांस लेना, जब-कभी धूप-नहान इत्यादि बातों से न सिर्फ़ यह रोग दूर होगा बल्कि सारा शरीर नया और पहले से बहुत अच्छा हो जायगा।

* * * *

कुछ और भी स्त्री-रोग होते हैं, लेकिन समझदार पाठक और पाठिकाएँ ऊपर बताये सिद्धान्तों के सहारे सभी रोगों का उचित इलाज कर सकती हैं।

अवस्था बदलना

'अवस्था बदलने' से मतलब ४०-४५ वर्ष की उम्र वाली स्त्री की उस अवस्था से है, जब कि मासिक बराबर के लिए बन्द हो जाता है और गर्भ धारण करने की शक्ति जाती रहती है। तनदुरुस्त स्त्रियों को या उन स्त्रियों को, जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार रहती हैं, इस परिवर्तन (तबदीली) के मौके पर कुछ भी तकलीफ़ नहीं होती। उनके शरीर में विकार नहीं रहता, इसी से मासिक बन्द हो जाने से कोई गड़बड़ी नहीं होती। लेकिन जिन स्त्रियों के शरीर में विकार है और इधर मासिक के रूप में विकार निकलने का तरीक़ा भी बन्द हो गया हो तो उन्हें बहुत सी तकलीफ़ों का सामना करना पड़ता है। अक्सर ऐसी स्त्रियां गलत इलाज के कारण और भी तकलीफ़ भोगती हैं। इस हालत में भी उन्हीं उपायों से काम लेकर, जो अमेनोरिया और ल्यूकोरिया को दूर करने के लिए बताये गये हैं, शरीर शुद्ध और निरोग किया जा सकता है।

गर्भावस्था

मामूली बातें--

गर्भावस्था में स्त्रियों को कई तरह की तकलीफ़ें भुगतनी पड़ती हैं। बहुत से ग़लत विचार भी प्रचलित हैं, जिनसे उनकी निज की और होने वाले बच्चे की भी तकलीफ़ें बढ़ जाती हैं। इनमें से एक ग़लत विचार है--जो चाहो वही खाओ ओर दो (खुद अपने और बच्चे) के लिए खाओ। यह मामूली समझने की बात है कि अगर स्त्री का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, अगर उसके शरीर में शुद्ध खून रहेगा, तो उसका अच्छा असर (प्रभाव) बच्चा के बनते हुए शरीर पर भी पड़ेगा। इसलिए गर्भावस्था में भोजन और रहन-सहन पर बहुत ध्यान देना चाहिए। इस विषय में भी देहाती स्त्रियों से, जो मामूली भोजन खाती हैं और खुले में काम-काज करती हैं, और जानवरों से, जो बिल्कुल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, शिक्षा लेनी चाहिए। उन्हें न तो गर्भावस्था में ज़्यादा तकलीफ़ होती है और न बच्चा जनने के समय या बाद में; साथ ही उनका बच्चा भी पुष्ट होता है। गर्भावस्था के सम्बन्ध में एक दूसरा ग़लत विचार यह है कि गर्भवती स्त्री को किसी तरह का भी काम-काज या मिहनत न करनी चाहिए। यह ठोक है कि बहुत मेहनत या कसरत इस अवस्था में हानिकर हो सकती है, लेकिन अपनी शक्ति भर काम-धंधे में लगा रहना और कसरत करना ज़रूरी है।

अक्सर लोग समझते हैं कि जन्म के समय बच्चा जितना बड़ा और वज़नी (भारी) हो उतना ही वह तनदुरुस्त और अच्छा है। लेकिन ऐसा समझना भूल है। बड़ा और वज़नी बच्चा जन्म से ही अपने शरीर में बहुत सा विकार (अपनी माता के शरीर से) लेकर पैदा होता है और आगे चलकर बराबर रोगी बना रहता है। साथ ही उसके जन्म के समय माता को भी कष्ट होता है।

कुछ ज़रूरी बातें--

गर्भावस्था के लिए कुछ ज़रूरी बातें नीचे दी जाती हैं। अगर इन पर ध्यान दिया जायगा तो माता और बच्चे दोनों की भलाई होगी।

(१) तनदुरुस्त पुरुष और स्त्री के ही बच्चे तनदुरुस्त हो सकते हैं। इसलिए जरूरी है कि वैवाहिक जीवन शुरू करने के पहले दोनों ही अपनी तनदुरुस्ती को ठीक कर लें और आगे भी उस पर ख़याल रखें।

(२) गर्भावस्था में भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सबसे अच्छा भोजन-क्रम होगा--सुबह में ७-८ बजे मौसम के ताज़े फल और कच्चा दूध; दोपहर में लगभग १२ बजे कच्ची सब्ज़ियों का सलाद, रोटी या चावल, थोड़ी सी साबुत मूंग या मसूर की दाल, घी, और एक साधारण पकी भाजी--मुंह मीठा करने के लिए कुछ मुनक्के या कभी कभी घर की अच्छी बनी मिठाई; रात में सबेरे रोटी-भाजी और चार-छः अंजीर। और कुछ नहीं। बात यह है कि गर्भावस्था में भोजन के बारे में बहुत सावधान होना चाहिए।

इन दिनों (और बराबर ही) सफ़ेद चीनी से बचना चाहिए। उससे बच्चा के बनते हुए शरीर पर बहुत बुरा असर पड़ता है और सूखा रोग (मिठवा) होने का डर रहता है।

अच्छी तनदुरुस्त गाय का ताजा कच्चा दूध इस अवस्था में मां और बच्चे दोनों के लिए लाभदायक है। अगर सातवें महीने के बाद सुबह के नाश्ते और रात के खाने दोनों ही में फल और ताज़े कच्चे दूध का इस्तेमाल किया जाय तो बहुत अच्छा होगा। इस हालत में तीसरे पहर कुछ रसदार फल और लेना चाहिए।

(३) गर्भावस्था में क़ब्ज़ से बचना चाहिए। अगर भोजन ठीक है तो क़ब्ज़ न होगा। अगर कभी हो भी जाय तो मामूली गुनगुने (गरम नहीं) पानी के हल्के एनीमा से पेट साफ़ कर लेना चाहिए, लेकिन जल्दी-जल्दी एनीमा न लेना चाहिए।

(४) गर्भावस्था में हर रोज साधारण स्नान, शरीर को अच्छी तरह मलकर जैसा 'स्नान' वाले अध्याय में पहले बताया गया है, जरूरी है। स्नान ठंढे पानी से ही करना चाहिए, लेकिन अगर पानी बहुत ठंढा रहता हो तो या ज़्यादा सर्दी के दिनों में ठंढे पानी में थोड़ा गरम मिलाकर उसकी ठंढ मार देनी चाहिए--पानी गरम न हो। कमजोरी की हालत में सिर्फ़ बदन पोंछना चाहिए। स्नान बन्द कमरे में किया जाय।

अगर दिन में एक बार शुरू से ही उपस्थ-स्नान लिया जाय तो बहुत अच्छा हो।

(५) गर्भावस्था में शक्ति भर कसरत—टहलना, घर का काम-काज करना या और कोई हल्की कसरत—जरूरी है। साथ ही हल्की श्वास-क्रिया भी जारी रखना चाहिए। सातवें महीने के बीच से कसरत को धीरे-धीरे कम करके आठवें महीने के बीच या अंत तक बिलकुल बंद कर देना चाहिए। लेकिन टहलना जारी रखना चाहिए।

कुछ भी कसरत न करने से बच्चा जनने की क्रिया कठिन हो जाती है। लेकिन अगर गर्भपात की आशंका हो या अगर पहले एक बार गर्भपात हो चुका हो तो गर्भपात के ठीक बाद वाली गर्भ-धारण की अवस्था में सावधान रहना चाहिए।

(६) गर्भिणी स्त्री को बराबर ही प्रसन्न चित्त रहना चाहिए। घरवालों को भी देखना चाहिए कि उसे किसी तरह की उद्विग्नता या घबराहट न हो। उसे खुद भी आनेवाले आनंद के दिनों का सुख-स्वप्न देखना चाहिए।

(७) गर्भावस्था में अच्छी अच्छी पुस्तकों का, जिनमें वीरों, देश-भक्तों, ईश्वर-भक्तों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की कहानियां हों, पढ़ना और अच्छे अच्छे कामों में, जिनसे अपना और दूसरों का उपकार हो, लगना, होने वाले बच्चे के जीवन को प्रभावित करता है और इसलिए बहुत लाभदायक है।

(८) अक्सर गर्भावस्था के शुरू में जी मचलाता है और उबकाई सी आती है। अगर यह तकलीफ़ मामूली रहे तो कुछ हर्ज नहीं, लेकिन अगर ज्यादा हो तो एक दिन फल के रस पर (दिन में तीन-चार बार) रह कर दो दिन फलों पर ही रह जाना चाहिए और पहले ही दिन से एनीमा भी लेना चाहिए। हल्के-हल्के कमर-नहान लेना भी (पानी ठंढा लेकिन बहुत ठंढा न हो) लाभदायक होता है।

अगर इन ऊपर दिये नियमों का पालन किया जाय तो गर्भावस्था और बच्चा जनने की क्रिया दोनों ही निरापद होंगे, साथ ही बच्चा भी स्वस्थ होगा।

प्रसव के बाद—

बच्चा जनने के बाद भी सावधान रहने की जरूरत होती है। अठारह घंटे के अन्दर भरसक कुछ न खाना चाहिए। उसके बाद दो-तीन दिन गरम (उबला नहीं) दूध पर ही बिताना चाहिए। फिर दिन में एक बार रोटी या भात और तरकारी और दो बार फल-दूध। इस तरह धीरे धीरे

नियमित भोजन पर आ जाना चाहिए। बच्चा जनने के बाद पहले पहल दूध शुरू करने के पहले अक्सर थोड़े घी में हल्दी और गुड़ पतला पतला पका कर दिया जाता है। यह बुरा नहीं। फल का, ख़ासकर मीठे अनार का, रस भी दिया जा सकता है। क़ब्ज़ से बचना चाहिए। कब्ज़ होने पर गुनगुने पानी का एनीमा जरूरी है। बच्चा जनने के दूसरे या तीसरे दिन जननेन्द्रिय का डूश भी लेना चाहिए। डूश का पानी गुनगुने से कुछ ज़्यादा लेकिन सहने लायक़ गरम हो। ज़ब अन्न खाते दो-तीन दिन हो जायं तब थोड़ा-थोड़ा टहलना शुरू कर देना चाहिए और फिर एक डेढ़ हफ्ते के बाद हल्की कसरत भी शुरू करनी चाहिए।

गर्भपात और उसके कारण--

गर्भ का गिरना दो तरह का होता है। (१) जान-बूझकर गर्भ गिराना और (२) कुछ और कारणों से गर्भ का आप ही आप गिर जाना।

जानबूझकर गर्भ गिराना पश्चिम के देशों में बहुत प्रचलित है और अब अपने देश में भी धीरे धीरे प्रचलित हो रहा है। इस राक्षसी काम के कई कारण हो सकते हैं, जिनमें दो-तीन ख़ास (मुख्य) हैं--एक परिवार को बहुत बढ़ने देने से रोकने की इच्छा, दूसरे, संतान की ज़िम्मेदारी की अपने कंधों पर बिलकुल ही न उठाने की इच्छा, और तीसरे, विवाह-बंधन से न बँधे पुरुष और स्त्री के अनुचित संसर्ग के फल को प्रकट न होने देने की इच्छा। इसके चाहे जो भी कारण हों, मैं यह साफ़ साफ़ कहूँगा कि जान बूझकर गर्भ गिराना मनुष्य और प्रकृति (या यों कहिए कि मनुष्य और ईश्वर) दोनों के विरुद्ध (खिलाफ़) और इसलिए महापाप है।

जो समय के पहले खुद ही गर्भपात होता है उसके भी कई कारण हो सकते हैं:--

(१) मुख्य कारण है स्त्री-पुरुष की कमज़ोरी।

(२) कमज़ोरी की हालत में स्त्री का बहुत कसरत या मेहनत का काम करना।

(३) गर्भ के दिनों में बहुत खाना और गरम-गरम चीज़ों का खाना।

(४) अपच से पतले दस्तों का आना, ज़ोरदार जुलाब लेना।

(५) क़ब्ज़।

(६) चिंता, शोक इत्यादि।

सच पूछिए तो कमजोरी ही इसका मुख्य कारण है।

गर्भपात का समय--

गर्भपात या तो वैवाहिक जीवन के बाद ही शुरू-शुरू में या उम्र ढलने पर, जब कि मासिक के बिलकुल बंद हो जाने का समय नजदीक आता है, होता है। फिर गर्भ धारण करने के शुरू में ही--दूसरे या तीसरे महीने में--या सातवें महीने में गर्भ गिरने की ज़्यादा आशंका रहती है।

किसी-किसी के गर्भ गिरने की आदत सी हो जाती है। अक्सर सुनने में आता है कि अमुक स्त्री का गर्भ तीन या पांच बार गिरा, जिससे उसे बच्चा होता ही नहीं।

गर्भपात रोकने का उपाय--

जिन स्त्रियों के गर्भ अक्सर गिर जाता है उन्हें चाहिए कि एक बार गर्भ गिरने के बाद वे अपनी तनदुरुस्ती को पहले ठीक कर लें, और साथ ही उनके पतिदेव भी अपनी तनदुरुस्ती को ठीक करें, और तब वे दोनों वैवाहिक जीवन शुरू करें। यह मालूम होते ही कि गर्भ रह गया है स्त्री को बहुत सावधानी के साथ रहना चाहिए। भोजन-सुधार के साथ-साथ उपस्थ-स्नान या ठंडे बैठक-नहान से जरूर लाभ होगा।

गर्भपात के समय--

गर्भपात होने के पहले थकावट, भारीपन और सुस्ती मालूम होती है। कभी-कभी मूर्च्छा या बेहोशी सी भी हो सकती है। पेड़ू भारी-भारी सा मालूम होता है। पीठ, कमर और कमर के नीचे के हिस्सों में दर्द बना रहता है और फिर खून जारी हो जाता है। अगर खून ज़ोर से और ज़्यादा मात्रा में निकलता रहे और दर्द भी बढ़ता जाय तो गर्भपात का रुकना असंभव (ना-मुमकिन) ही है। लेकिन यह आशंका होते ही कि गर्भपात होनेवाला है अगर ठीक-ठीक उपाय किये जायँ तो वह रुक सकता है। उपाय ये हैं:--

(१) स्त्री को एक हवादार कमरे में आराम से लेटना चाहिए। आराम करना जरूरी है। बिस्तर मुलायम और खाट में झोल न हो। तख्त (चौकी) पर एक मामूली दरी और कुछ हलके कपड़े डालकर लेटना अच्छा है। सिर थोड़ा ही ऊँचा हो। बल्कि खाट के पायों के नीचे एक-एक ईंट रखकर

पैंतियाना ऊँचा कर देना चाहिए। ओढ़ने के कपड़े हल्के और ऐसे हों जिनसे बहुत गरमी न पैदा हो।

(२) भोजन सिवा फलों के रस या बार्ली के पानी के साथ थोड़ा दूध के और कुछ न हो। भाजियों का रस भी दिया जा सकता है, लेकिन कोई चीज़ खट्टी या गरम तासीरवाली न हो।

(३) पेड़ू पर कपड़े की गीली पट्टी (पेड़ू के चारों तरफ़) तीन-तीन घंटे बाद आध आध घंटे के लिए रखी जाय। इस पर गरम कपड़ा लपेटने की जरूरत नहीं है। खून बन्द होते ही पट्टी देने का समय बढ़ा देना चाहिए।

(४) पाखाने के लिए बेड-पैन (Bed pan) इस्तेमाल करना चाहिए। अगर स्त्री को दो-तीन दिन लेटे रहना पड़ा और पाखाना न हो तो मामूली ठंढे पानी का (जिसमें ठंड न हो पर गर्मी बिल्कुल ही न हो) हल्का एनीमा दिया जा सकता है।

(५) स्त्री को प्रसन्न रहना चाहिए। उसके परिवार वालों को चाहिए कि वे उसे चिन्तित न होने दें।

जब यह देखा जाय कि गर्भपात न रुकेगा तो पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी दिन में कई बार देनी चाहिए। कमज़ोरी से अगर सिर खाली मालूम हो या बेहोशी सी हो तो सिर और चेहरे को गीले कपड़े से बार बार पोंछना चाहिए। कमज़ोरी की हालत में पैरों के पास गरम पानी की बोतलों को रखना और गरम कपड़े ओढ़ाना चाहिए। ऐसा प्रबन्ध (इन्तज़ाम) करना चाहिए कि खून से कपड़ा भीगा न रहे या सहूलियत से कपड़े को बदल देना चाहिए। जब गर्भ बिल्कुल गिर जाय तो एक दिन के बाद हल्के गरम पानी से जननेन्द्रिय का डूश देना चाहिए। खून बन्द होने के बाद दो-तीन दिनों तक सिर्फ़ दूध पर—दिन में दो-तीन बार—और फिर चार-पांच दिनों तक फल और दूध पर स्त्री को रखना चाहिए। इस दशा में भी आराम की बहुत जरूरत है।

गर्भ का बिल्कुल न रहना—

यह तो कुछ दैवी बात भी है, लेकिन अगर स्त्री और पुरुष दोनों ही अपनी तनदुरुस्ती को बढ़ावें तो बहुतों के सन्तान-सुख जरूर हो सकता है। अक्सर लोग अपने पैसे और समय को बेकार की झाड़-फूंक में खर्च करते हैं।

अगर इसके बदले वे उपवास, रसाहार, फलाहार, उचित आहार, कमर-नहान उपस्थ-स्नान, कसरत और गहरी सांस से अपनी तनदुरुस्ती को ऊँचे दर्जे की हालत में ले आयें तो सैकड़ों पीछे नब्बे निस्संतानों के अवश्य संतान हों। चाहिए कि स्त्री-पुरुष दोनों ही कम से कम एक साल अपनी तनदुरुस्ती सुधारें और तब वैवाहिक जीवन आरंभ करें।

स्त्रियों के लिए कसरत

स्त्रियों के लिए कसरत*

क्या स्त्रियों और लड़कियों के लिए भी कसरतें हैं? कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें कसरत न करनी चाहिए, क्योंकि कसरत से उनके शरीर में अस्वाभाविक कठोरता आती है और कुछ जरूरी शारीरिक यंत्रों में खराबी आ जाती है।

स्त्रियों के लिए कसरतें जरूर हैं और उनके लिए भी कसरत उतनी ही जरूरी है जितनी कि पुरुषों के लिए, लेकिन पुरुषों की सभी कसरतें स्त्रियों के उपयुक्त नहीं हैं। चक्की पीसना, चावल छांटना, घर के और काम-काज करना कसरत होती हैं, पर जहां ऐसी स्वाभाविक कसरतों का अवसर प्राप्त न हो वहां ऊपरी कसरतें जरूरी हैं। यह धारणा बिलकुल ठीक नहीं है कि कसरत से स्त्रियों के शरीर की स्वाभाविक सुकुमारता जाती रहती है। फिर जीर्ण रोगों को दूर करने के लिए तो कसरतें बहुत जरूरी हैं।

यहां कुछ उपयुक्त कसरतें दी जाती हैं। इन कसरतों को पुरुष भी कर सकते हैं, पर स्त्रियां इनसे विशेष लाभ उठायेंगी। इन कसरतों से पूरा लाभ उठाने के लिए यह जरूरी है कि उनके साथ-साथ श्वास-क्रिया भी ठीक ठीक हो। नथने खोल कर धीरे धीरे सांस लेना और उन्हें धीरे धीरे बाहर निकालना, फिर कुछ दिन के बाद सांस रोकने का अभ्यास धीरे धीरे डालना—बस, 'श्वास-क्रिया' से यहां इतना ही अभिप्राय है।

अब कसरतों को चित्रों के सहारे समझिए—

(१) जमीन पर बैठो, हाथ पीछे जमीन पर रहेंगे, पैर दोनों सामने एक साथ रहेंगे। कमर और बीच की धड़ को, सिर पीछे की ओर करते हुए, पीछे के हाथों के सहारे उठाओ और सांस लेती जाओ। फिर पहली अवस्था में आ जाओ, सांस छोड़ते हुए। अब यह कसरत एक बार पूरी हुई। इस तरह ३-४ बार से धीरे-धीरे बढ़ा कर १२ बार करो।

---

*लेखक-द्वारा सम्पादित 'सेवा' पत्रिका में लेखक का यह लेख प्रकाशित हुआ है।

(२) जमीन पर चित लेट जाओ, एड़ियां मिली होंगी, हाथ बगल में होंगे। अब एक घुटने को ऊपर उठाओ और तब दूसरे को--इस तरह साइ-किल चलाने जैसा १० से २५ बार करो। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद घुटने घुमाने से पहले सांस लेकर रोक लो और घुमाना बन्द करने के बाद धीरे-धीरे सांस छोड़ दो।

(३) जमीन पर चित लेटो घुटने ऊपर उठे होंगे और पैर जमीन पर होंगे। बाजुओं को सीने पर एक दूसरे के ऊपर मोड़ लो। अब बीच की धड़ को ऊपर उठाओ और फिर वापस ले जाओ। इस तरह इस कसरत को ६-८ बार से १२ बार करो। कुछ अभ्यास के बाद धड़ को उठाते समय सांस लो और जमीन पर वापस ले जाते हुए सांस निकालो।

(४) जमीन पर कसरत नं० २ की तरह चित लेटो। फिर बारी-बारी से एक-एक पैर को धीरे-धीरे ऊपर उठाओ और नीचे रखो। कुछ अभ्यास के बाद हर पैर को ऊपर उठाते समय सांस लो और उसे नीचे लाते समय सांस निकालो इसे २ से ५ बार करो।

(५) कमर और पीठ के नीचे २ या ३ तकिया रखो और चित्र में बताए ढंग से लेट जाओ फिर घुटनों को ऊपर उठाकर उन्हें पेड़ू पर मोड़ो और वापस ले जाओ। इस तरह ५ से १२ बार करो। कुछ अभ्यास के बाद घुटनों को ऊपर ले जाते समय सांस लो और वापस लाते समय सांस निकालो।

इन कसरतों से पेट और पेड़ू के कल-पुर्जे ठीक होंगे, जिससे पाचन अच्छा होगा, यकृत अपना काम अच्छी तरह कर सकेगा--पाखाना, पेशाब की क्रियाएँ ठीक ठीक होंगी और साथ ही रीढ़ और दूसरे अवयव पुष्ट होंगे। इन सब का फल होगा--अच्छा स्वास्थ्य। स्त्री-रोग में यह व्यायाम भोजन-सुधार के साथ विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

किसी भी कसरत के लाभ उठाने के लिए यह जरूरी है कि उसे हर रोज किया जाय। यह कसरतें हल्की हैं। अगर लड़के या पुरुष इन्हें करते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे अपना खेल-कूद जारी रखें; औरतें भी अपने दूसरे परिश्रम के कामों को या टहलना बन्द न करें।
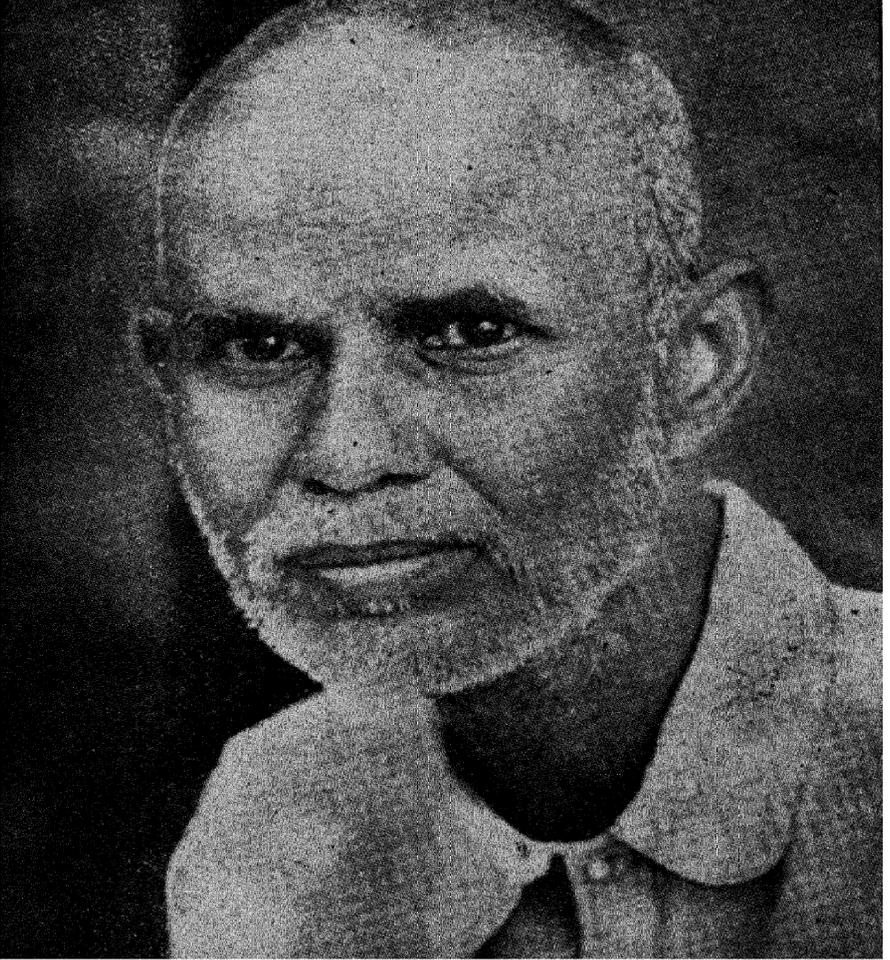
आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखते हुए प्राकृतिक चिकित्सा के लब्धप्रतिष्ठ
डाक्टर के० लक्ष्मण शर्मा

कुछ और बातें

चिकित्सकों के प्रति; सच्ची तन्दुरुस्ती; रोगियों की देख-भाल; प्राकृतिक चिकित्सा में औषधि का स्थान; प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास

चिकित्सकों के प्रति

जो अचूक चिकित्सा की विधियों को जानकर अपनी या दूसरों की चिकित्सा करना चाहते हैं उनसे कुछ कहना है। सभी जरूरी बातें इस किताब में बताई गई हैं, फिर भी बहुत कुछ बाकी रह गया है। वह है अपनी सूझ, अपनी समझदारी और अपना अनुभव। चिकित्सकों को सभी बात अच्छी तरह समझनी चाहिए। साथ ही वे अपना अनुभव अच्छी तरह नोट करें। अगर वे इस किताब को बार-बार अच्छी तरह पढ़ गये हैं तो उन्होंने जान लिया होगा कि इस चिकित्सा के सिद्धान्त बहुत मामूली हैं।

लेकिन अगर कोई बहुत ही अच्छा चिकित्सक बनना चाहता है तो उसे दो बातें और जाननी चाहिए--(१) शरीर की रचना और (२) नाड़ी की पहचान। इस किताब में ये दो बातें नहीं दी जा सकतीं। पाठकों को अँगरेजी और हिन्दी की किताबें इस विषय की पढ़नी चाहिए। 'शरीर-रचना'* पर डॉक्टर वर्मा की एक बड़ी और अच्छी किताब हिन्दी में है। नाड़ी की पहचान किताब के पढ़ने, अच्छे वैद्यों की संगति और अभ्यास से आती है। मुझे नाड़ी देखना मामूली तौर से आता है, जिससे चिकित्सा में बहुत मदद मिलती है।

तीसरी बात यह है कि चिकित्सकों को पहले मामूली रोगों में अनुभव हासिल करना चाहिए। बुखार इत्यादि मामूली नए रोग और ऐसे पुराने रोग, जिनमें रोगी बहुत कमजोर न हुआ हो या बहुत विषैली दवाएँ न खाई हों, आसानी से दूर किए जा सकते हैं। पहले इन्हीं में अनुभव प्राप्त करना चाहिए। कोई भी नया रोग, चाहे वह कैसा भी भयंकर मालूम होता हो, आसान है। अगर उसमें उपवास करा दिया जाय और एनीमा का प्रयोग किया जाय (जरूरत पर, जैसे हैजा में नहीं), साथ ही अंदाज से ठंडे या गरम पानी का प्रयोग किया जाय तो रोग जल्दी और जरूर जाता है। जिस पुराने रोग के रोगी ने बहुत वर्षों तक विषैली औषधियों का प्रयोग किया है उसकी चिकित्सा में सावधान होना पड़ता है। पहले कुछ महीनों तक भोजन-सुधार और बीच-बीच में फलाहार, उपवास और एनीमा-प्रयोग जारी रखकर तब

---

*लेखक की भी 'सरल शरीर-रचना' नाम की एक पुस्तक है—प्रकाशक, नेशनल प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

पानी का इस्तेमाल शुरू करना चाहिए। उपवास और पानी के इस्तेमाल के सम्बन्ध में शरीर की शक्ति और गर्मी को जरूर देख और समझ लेना चाहिए। बहुत ठंढ में न तो लम्बा उपवास ही ठीक होता है और न बहुत देर तक पानी में बैठना। फिर जिसका शरीर कमजोरी से ठंढा रहता हो उसे पानी में बैठाने के साथ-साथ पैरों को गरम पानी में रखना चाहिए।

मैं अपनी चिकित्सा में पानी का इस्तेमाल कम करता हूँ। सैकड़े पीछे चालीस रोगों में नहीं करता। बाक़ियों में आधे में सिर्फ़ पट्टियों से ही काम निकालता हूँ। हां, एनीमा-प्रयोग से जरूर सहारा लेता हूँ, वह भी रोगी का बल और शरीर की आवश्यकता देखकर। एनीमा से बढ़ कर और कोई भी उपाय शरीर के अन्दर के सूखे मल को बाहर निकालने और आंतों की नाड़ियों को जगाने का नहीं है।

मैं फिर कहूँगा कि चिकित्सक पहले इस किताब को आदि से अंत तक तीन-चार बार अच्छी तरह जरूर पढ़ लें।

अक्सर ऐसा अवसर आता है कि रोगी के हाथ-पैर ठंडे होने लगते हैं और मालूम होता है कि अब शरीरान्त हो जायगा। ऐसी हालत में घबराना न चाहिए बल्कि उचित उपचार करना चाहिए। गरम पानी की बोतलों को तौलिए में लपेट कर रोगी की कमर से कुछ ऊपर, दोनों टांगों के बीच में और दोनों पैरों के पास रखना चाहिए। गरम पानी की बोतलें रबर की मिलती हैं। उन्हें तीन-चौथाई ही भरना चाहिए और उनके मुंह अच्छी तरह बन्द होने चाहिए। रबर की जगह कांच की बोतलें भी काम में आती हैं। उन्हें पहले मामूली गरम पानी से धोकर तब उनमें गरम पानी भरना चाहिए, नहीं तो बोतलें टूट जाती हैं। इन बोतलों को भी अच्छी तरह बन्द करने और तौलिए से लपेटने के बाद काम में लाना चाहिए। बोतलों को शरीर के पास रख कर ऊपर से एक कंबल डाल देना चाहिए। अगर जरूरत हो तो बोतलों को बदलते रहना चाहिए, जिससे कि गर्मी बनी रहे। जब जरूरत न रह जाय तो बोतलों को हटा लेना चाहिए।

ऐसी हालत में काफ़ी (लेकिन सहने लायक़) गरम पानी का एनीमा भी बहुत चमत्कार दिखाता है। पर पानी के वापस आने और मल के निकलने के लिए बेड-पैन इस्तेमाल करना चाहिए। या उन्हें किसी मोटे कपड़े या मोमजामा पर आने देना चाहिए। रोगी को उठना न पड़े, यह देखना जरूरी

है। साथ ही उसका शरीर न भीगे न गंदा हो। इस तरह का एनीमा दुह-राया नहीं जाता।

दिल की जगह या सीने पर गरम पानी में कपड़ा निचोड़ कर उससे सेंक भी दी जा सकती है। दस मिनट की सेंक काफ़ी है।

अगर रोगी बेहोश न हो तो गरम पानी में थोड़ा शहद घोल कर पिलाना चाहिए।

इन सभी उपायों को एक साथ करने की जरूरत नहीं है। जो आसानी से हो सके उसे ही शुरू करना चाहिए और फिर और बातों का प्रबन्ध भी करना चाहिए।

चिकित्सक के लिए जरूरी है कि उसे विषय का ज्ञान हो और साथ ही उसमें प्रेम, सहानुभूति और उत्साहित करने की योग्यता हो। उसका जीवन ही ऐसा हो कि उसके रोगी के कमरे में जाते ही वहां का वातावरण हल्का और उत्साहप्रद हो जाय। उसे बहक कर यह जल्दी जल्दी दुहराने की जरूरत नहीं कि 'तुम बात की बात में अच्छे हो जाओगे,' पर उसकी सभी हरकत से उत्साह टपकना चाहिए और उसी से रोगी और उसके सम्बन्धी उत्साहित होंगे।

जो चिकित्सक परिस्थिति, रोगी की शक्ति इत्यादि देखकर उपचारों का प्रयोग करेंगे वे अवश्य ही सुयश के भाजन बनेंगे।

सच्ची तनदुरुस्ती

इस किताब में जो बातें और नियम बताए गए हैं उनका पालन करने से न सिर्फ़ रोग ही दूर होंगे बल्कि सच्ची तनदुरुस्ती हासिल होगी। हम में से बहुतों को तनदुरुस्ती का आनन्द नहीं मालूम है। जिन्हें मालूम है उनमें बहुतों को पूरी तनदुरुस्ती नहीं, उसके सिर्फ़ कुछ थोड़े से हिस्से का, आनन्द मालूम है। इसी थोड़े आनन्द से वे फूले नहीं समाते। अगर उन्हें पूरे आनन्द का स्वाद मिल जाय तो वे इस संसार को ही स्वर्ग समझने लगें। सचमुच नरक और स्वर्ग अपने ही अन्दर है, और यह हम पर निर्भर है कि हम नरक का दुख झेलेंगे या स्वर्ग का आनन्द लेंगे।

हम लोगों को, पूरी-पूरी तनदुरुस्ती न रहने के कारण, शरीर और मन की पूरी शक्ति हासिल नहीं हो पाती। अगर तनदुरुस्ती सभी तरह ठीक हो जाय तो हमारा शरीर मजबूत, हट्टा-कट्टा, और देखने में सुन्दर होगा और हमारा मन निर्मल, जगा हुआ, तेज और चौकन्ना रहेगा। इन दोनों से जो शक्ति अपने अन्दर आएगी उसका कहना ही क्या है। इस शक्ति को पा जाना हमारा आप का कर्त्तव्य है।

इस शक्ति को पाना असंभव (ना-मुमकिन) नहीं है। जो थोड़ी देर के सुख के लिए प्रकृति के नियमों को तोड़ने में ही अपनी मर्दानगी मानते हैं उन्हें यह शक्ति नहीं मिल सकती, लेकिन जो सभी बातों को समझते हैं समझदारी से काम करते हैं और बराबर ही प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं उन्हें यह शक्ति आसानी से मिल जायगी।

यह शरीर और मन की शक्ति कैसी है? इसका एक निश्चित चित्र खींचना कठिन है, लेकिन अगर सिंह का शारीरिक बल, किसी अच्छे वैज्ञानिक की तेज बुद्धि और किसी तत्वदर्शी दार्शनिक का दृष्टिकोण सभी एक साथ मिला दिए जायँ तो इस शक्ति का पता चल सकता है। यह शक्ति सभी को मिल सकती है, पर मिलती उन्हीं को है जो प्रकृति के साथ चलते हैं।

तनदुरुस्ती बनाए रखने के लिए हर रोज चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। जो चिन्ता करेंगे उनकी तनदुरुस्ती न बनेगी, क्योंकि चिन्ता तो स्वयं ही एक रोग है। अपने जीवन के लिए कुछ नियम बना लेना, उनका दृढ़ता के

साथ पालन करना और फिर तनदुरुस्ती बनाने की सारी बातों को भुला देना—बस, यही तनदुरुस्ती हासिल करने का सहज उपाय है। अगर आप अच्छी चीजें नियम के साथ खायेंगे, हर रोज कसरत करेंगे और जरूरी आराम लेंगे तो शरीर के अन्दर का खून जरूर अच्छा होगा, नाड़ी-बल ठीक रहेगा और शरीर के सभी कल-पुर्जे अच्छी तरह काम करेंगे। इसी से तनदुरुस्ती ठीक रहेगी। यही चाहिए, और इसमें हर रोज चिन्ता करने की कुछ जरूरत नहीं।

कुछ लोग कहेंगे कि इस किताब में खाने-पीने के जो कठिन नियम बताए गए हैं उनका पालन करने से जीवन शुष्क हो जायगा। अगर अचार, पकौड़ी, मिठाई, पकवान, चाय, बिस्कुट, डबल रोटी इत्यादि का इस्तेमाल न किया तो ऐसे जीने में मजा ही क्या। जो ऐसा कहते हैं उनकी कठिनाई समझी जा सकती है। इतने दिनों से इन चीजों का व्यवहार होता आ रहा है और अपने चारों तरफ़ इतने लोग इन चीजों को खाते-पीते हैं कि हमारी समझ में ही यह नहीं आता कि यह चीजें खराब हैं। फिर हमें बार-बार बीमार होने, दवा पीकर थोड़े दिनों के लिए बीमारियों को दबा देने और अगर दवाओं ने असर न किया और रोगी मर गया तो भाग्य को बुरा कहने की आदतें इस तरह पड़ गई हैं कि बीमार होना और कुसमय में ही मर जाना हमें अस्वाभाविक नहीं जँचता। लेकिन हमें तो यह देखना चाहिए कि क्या पशु-पक्षी भी उसी तरह बीमार होते और मरते हैं, जिस तरह आदमी। आदमी सब जीवधारियों में श्रेष्ठ है। उसे तो औरों से ज़्यादा अच्छा रहना चाहिए था, लेकिन इस बात में वह सब से ख़राब और कमजोर है।

नियमों के सम्बन्ध में यह जरूर है कि रोग दूर करने की अवधि में पूरे नियम के साथ रहना चाहिए। रोग के दूर हो जाने पर जब-कभी थोड़ा-बहुत असंयम निभ सकता है। पर आदर्श तो यही है—सदैव ही नियम-पूर्वक रहना। आशा है कि धीरे-धीरे मनुष्य अपने को सुधार लेगा और अपने जीवन को फिर से दिव्य और स्वर्गीय बनावेगा।

रोगियों को देख-भाल

कुछ ऐसी बातें हैं, जैसे, रोगी के कमरे की सफ़ाई, रोगी के कपड़े बदलना, रोगी को पानी पिलाना इत्यादि, जो घर वालों और चिकित्सक दोनों ही को जानना चाहिए। इस सम्बन्ध की मामूली बातें बताई जा रही हैं। तीव्र रोग के रोगियों की, जो ख़ुद अपना काम नहीं कर सकते, अच्छी सेवा कर सकने के लिए इन बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) रोगी का कमरा अच्छा, साफ़ और हवादार हो। उसमें न बहुत ज़्यादा गरमी मालूम हो और न बहुत ठंढ।

(२) रोगी का बिस्तर साफ़ और आराम देने वाला हो। बिस्तर के ऊपर की चादर हर रोज़ बदली जाय। बिस्तर बदलने के लिए कमज़ोर रोगियों को उठाना न चाहिए। चादर को लम्बाई से गोल लपेट कर खाट पर लम्बी-लम्बी रखिए और रोगी को खाट के दूसरे किनारे पर कर के लिपटी चादर को खोलिए और पुरानी चादर को सरकाइए। फिर धीरे से रोगी को इधर लाकर चादर को उस किनारे तक ले जाइए।

(३) जिस तरह चिकित्सक ने उपचार बताए हैं उसी तरह ठीक समय पर वे किए जायें।

(४) निश्चित समय पर तीव्र रोग के रोगी का शरीर स्पंज करके उसके कपड़े बदल दिए जांय और बालों में कंघा कर दिया जाय। रोगी के मुंह, दांत, नाक, आंख—सारे चेहरे—की सफ़ाई हर रोज़ करना ज़रूरी है। शरीर का स्पंज किया जाना भी बहुत रोगों में ज़रूरी होता है।

(५) रोगी को ठीक समय पर पथ्य दिया जाय।

(६) रोगी के सम्बन्ध में जिन बातों को चिकित्सक से कहना है उनको अच्छी तरह नोट कर लिया जाय और उन्हें ठीक-ठीक बताया जाय। उनके बारे में जैसा चिकित्सक कहे वैसा ही किया जाय।

(७) फैलने वाले या छूत के रोगों के बारे में विशेष ध्यान रक्खा जाय, जिससे कि और लोग बीमार न हों।

(८) कोई ऐसा काम न किया जाय, जिससे रोगी बिना कारण दुखी या बेचैन हो। जहां तक हो सके रोगी को ख़ुश रक्खा जाय।

(९) रोगी के कमरे में या पास ही हर समय एक स्त्री या पुरुष देखने-भालने के लिए तैयार रहे।

रोगी की अच्छी देख-भाल और सेवा के लिए, अगर हो सके, तो नीचे दी हुई चीजें हर एक घर में रहें :—

(१) अच्छा थर्मामीटर, जिससे बुख़ार देखा जा सके।

(२) एक नापने वाला गिलास, जिसमें नाप के निशान लगे हों। यह रस इत्यादि पिलाने के काम आता है।

(३) एक खिलाने वाला प्याला, जो कठिन रोगों के रोगियों के खिलाने-पिलाने के काम आता है। और प्याले, प्लेट और चम्मच, छुरी।

(४) दो तीन साफ़ तौलिए।

(५) रोगी के लिए पाख़ाने और पेशाब करने के बर्तन। ऐसे बर्तन भी जो मुंह-हाथ धोने के काम आयें।

(६) साबुन।

(७) टब।

(८) एनीमा का यंत्र।

(९) अच्छी मिट्टी।

(१०) सब तरह की पट्टियों के लिए अलग-अलग दो-तीन जोड़े कपड़ों के टुकड़े। साथ ही ऊपर लपेटने के लिए गरम कपड़ों के टुकड़े, कम्बल।

रोगी का कमरा—

रोगी को अच्छी हालत में रखने के लिए और रोग को जल्द से जल्द दूर कर सकने के लिए यह ज़रूरी है कि रोगी का कमरा, जहां तक हो सके, अच्छा से अच्छा हो। अच्छे घरों में रोगियों के रहने के लिए एक ख़ास कमरा बहुत सोच-विचार कर बनाया जाता है। रोगी के लिए अच्छे कमरे की पहचान यह है :—

(१) कमरा काफ़ी बड़ा हो। अगर हो सके तो उससे लगा हुआ एक छोटा कमरा हो, जिसमें दूध, फल, रोगी के पहनने के कपड़े इत्यादि रखे

जांय। एक ही कमरे में रोगी के चारों तरफ़ इन चीज़ों के रखने से कमरे की हवा ठीक नहीं रहती। अगर कमरा भरा-कसा है तो रोगी ख़ुश भी नहीं रहता।

(२) कमरा किसी गंदी गली या सड़क से बिलकुल लगा न हो और न नौकरों के कमरे के पास हो।

(३) कमरा बिलकुल सूखा हो और उसमें न तो सील हो और न सील की बू आती हो।

(४) कमरे में काफ़ी खिड़कियां हों, जिनसे हवा और रोशनी आ सके। लेकिन ऐसा भी न हो कि कमरे में सारे दिन धूप बनी रहे या अगर आंधी उठे तो हवा का झोंका रोका न जा सके।

(५) जहां तक हो सके और लोगों के रहने के घरों से रोगी के रहने का कमरा बिलकुल अलग हो।

(६) अगर कोई ऐसा कमरा चुना जाय कि जिसमें बहुत से लोग रहते हों या जिसमें कोई न रहता हो तो कमरे को बिलकुल साफ़ करके कुछ देर तक दरवाज़े और खिड़कियों को खोल रखना चाहिए, जिससे ताज़ी हवा आकर कमरे को रोगी के रहने लायक बना दे।

(७) कमरे में आग जलाने का प्रबन्ध रहे, जिससे बरसात या जाड़ों में इस तरह आग जलाई जा सके कि धुंआ बिलकुल बाहर निकल जाय।

(८) कमरे से पानी निकलने का रास्ता हो।

कमरे की सफ़ाई——

कमरे की सफ़ाई पर बहुत ध्यान देना चाहिए। रोगी के उसमें जाने से पहले उसकी छत, दीवारें और कोने-कोने को साफ़ कर लेना चाहिए। फ़र्श को धोकर सुखा लेना चाहिए। हर रोज़ यह ख़्याल रखना चाहिए कि कमरा अच्छी तरह साफ़ कर लिया गया है। उसमें जो भी चीज़ें रखी हों उनको हर रोज़ झाड़ना-पोंछना चाहिए। लेकिन इस तरह झाड़ना न चाहिए कि गर्द रोगी पर पड़े। रोगी के ओढ़ने, बिछाने और पहनने के कपड़ों को भी हर रोज़ बदलना और धोकर या योंही धूप में सुखाना चाहिए। बहुत अच्छा हो अगर रोगी की चारपाई के पास एक तिपाई या मेज़ पर एक गुलदस्ते में ख़ुशनुमा फूल रखे जायें।

कमरे का सामान—

ऊपर बताया गया है कि रोगी के कमरे में बहुत चीजों का रखना अच्छा नहीं है; रोगी की चारपाई, दो छोटी-छोटी मेजें, दो कुर्सियां या तिपाई, एक मेज़ पर सुराही या और बरतन में पीने का पानी और एक गिलास, एक किनारे बाल्टी में साफ़ पानी, जिसका मुंह बराबर ढका रहे, एक तौलिया और किसी जगह ठिकाने से रखा हुआ फूलों का एक गुलदस्ता—बस, इतनी चीजें काफ़ी हैं।

अक्सर लोग रोगी के कमरे में बहुत सी तसवीरें लगा रखते हैं। यह अच्छा नहीं है, क्योंकि उन पर धूल जम जाती है। अगर कोई तसवीर हो तो उसे हर रोज पोंछना चाहिए।

रोगी की चारपाई को कमरे के बीच में रखना अच्छा है। जरूरत पड़ने पर उसे उठाकर किसी और जगह रख सकते हैं, लेकिन कोशिश यह होनी चाहिए कि चारपाई को उठाने की जरूरत ही न पड़े। अगर हवा का तेज झोंका आता हो तो खिड़की या दरवाजा के सामने उतनी देर के लिए पर्दा डाल सकते हैं।

चारपाई अच्छी, कसी-तनी हो, और न बहुत ऊँची न नीची हो—इतनी चौड़ी भी न हो कि देखने-भालने वाला चारपाई के एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ न पहुँच सके। रोगी के लिए सब से अच्छी चारपाई लोहे की समझी जाती है, जो लगभग साढ़े तीन फ़ुट चौड़ी होती है और लोहे के तारों से बुनी होती है।

अगर रोगी बहुत कमजोर है तो उसके पाखाना-पेशाब के लिए बर्तन भी उसी कमरे में रखे जायं। जब-जब ये बर्तन काम में लाए जायें, इन्हें अच्छी तरह साफ़ करा लेना चाहिए। वैसे भी सुबह-शाम इनकी सफ़ाई जरूरी है। इसी तरह थूकने या बलगम फेंकने के बर्तन को भी साफ़ रखना चाहिए।

यह कहा जा चुका है कि कुछ जरूरी चीजों को रखने के लिए रोगी के कमरे से लगा हुआ एक दूसरा कमरा होना चाहिए। अगर दूसरा बिलकुल लगा हुआ न हो तो पास के किसी दूसरे कमरे को काम में ला सकते हैं।

रोगी जब अच्छा होने लगता है तो उसका भोजन कुछ और हो जाता है। इस अवस्था में सावधान रहना चाहिए। बहुत से रोगी कुपथ्य (बदपरहेजी) करते हैं, और जो न खाना चाहिए उसे भी खा बैठते हैं। ऐसा करने से रोग फिर हो जाता है। रोगी को कुपथ्य से बचाना चाहिए।

खिलाने के बर्तन की सफ़ाई पर भी ध्यान देना जरूरी है। खिलाने के पहले और बाद बर्तन को अच्छी तरह धो-मांज लेना चाहिए।

आराम—

मामूली रोग की हालत में भी रोगी को अच्छी तरह आराम मिलना चाहिए। आराम की हालत में ही शरीर की भीतरी मरम्मत होती है। रोगी का कमरा, देखने-भालने वालों का बर्त्ताव, सभी कुछ ऐसा हो कि रोगी को पूरा आराम मिले।

अगर रोगी सोना चाहे तो उसे सोने देना चाहिए। अगर रोगी सो रहा है और उपचार का समय हो गया हो तो उस के लिए भी रोगी को न जगाओ। सोने से जो आराम मिलता है वह बहुत अच्छा उपचार है।

रोगी के कमरे के पास या कमरे में शोरगुल न होना चाहिए। उससे भी रोगी के आराम में खलल पड़ता है। रोगी के कमरे में एक ही साथ बहुत लोगों को न रहना चाहिए। अक्सर लोग वहीं ताश या शतरंज खेलते हैं। यह बुरा है।

रोगी को देखने के लिए बहुत लोग आ जाते हैं, और जो आता है वह रोगी से ही उसका हाल पूछता है। कहने की जरूरत नहीं कि इससे रोगी बहुत थक जाता है। चाहिए तो यह कि रोगी के कमरे में बहुत कम लोगों को आने दिया जाय। अगर रोग ऐसा है जो छूत से फैलता है तो चिकित्सक और देखने-भालने वाले के सिवा किसी को भी कमरे में न आना चाहिए।

कुछ रोगी बहुत चिड़चिड़े हो जाते हैं। उनके साथ बहुत प्रेम से बर्त्ताव करने की जरूरत है।

* * * *

रोगियों की देख-भाल के सम्बन्ध में मामूली तौर पर सभी जरूरी बातें बता दी गईं। इतना और कहना है कि छूत वाले रोग में ज़्यादा सावधान होने की जरूरत रहती है। छूत के रोग फैलते हैं, और चिन्ता यह रहती है कि कहीं देखने-भालने वाला या और लोग भी बीमार न हो जायें।

रोगों से बचने का सब से बढ़िया उपाय यही है कि शरीर में गन्दगी हो ही नहीं। अगर शरीर की भीतरी या बाहरी हालत बिलकुल अच्छी है तो छूत के रोगों का भी असर नहीं या कम होता है, लेकिन यह बहुत कठिन है कि शरीर

बिलकुल अच्छी हालत में रहे। इसीलिए घर में जभी कोई छूत के रोग से बीमार हो तो औरों को सावधान हो जाना चाहिए। दो-तीन दिन के फलाहार और एनीमा-प्रयोग और फिर नियमित भोजन के साथ-साथ कमर-नहान से छूत की संभावना बहुत कम हो जाती है। कुछ न हो तो मामूली रोटी या चावल और भाजी या दूध पर रहकर पांच सात दिन एनीमा लेना चाहिए।

प्राकृतिक-चिकित्सा में औषधि का स्थान

बहुत समय तक मैं यही समझता था कि बिना औषधि-प्रयोग के रोग नहीं जा सकता। यही धारणा साधारण तौर पर प्रायः सभी के हृदय में है। मेरी अपनी आशंकाएं आरम्भ से ही चित्त को चंचल करने लगीं। पहले मैं समझता था कि आयुर्वेदिक चिकित्सा ही सर्वश्रेष्ठ है। उसके लिए मेरी श्रद्धा प्रबल थी। लेकिन कई बार मैंने देखा कि रोग के भगाने में अनुभवी और लब्ध-प्रतिष्ठ वैद्य सफल न हुए पर एलोपैथिक डाक्टर सफल हो गये। कुछ रोगों में यह अनुभव हुआ कि एलोपैथिक चिकित्सक सफल न हो सके पर होमियोपैथ महाशय सफल हो गये। कई बार यह भी देखा कि जहां और कोई सफल न हुआ हकीम साहब बाजी मार ले गये। मैं सचमुच बहुत उधेड़बुन में रहता था। अगर परिवार का कोई बीमार होता तो पहली समस्या चिकित्सा प्रणाली के चुनने के ही सम्बन्ध में खड़ी हो जाती।

अब मैं अच्छी तरह समझ सकता हूं कि उन दिनों मेरी कठिनाई कैसी रही होगी! एक तो रोग को दूर करने के लिए औषधि-प्रयोग को अनिवार्य रूप से आवश्यक समझना, दूसरे किसी के बीमार होने पर जल्दी से यह फैसला न कर सकना कि किस चिकित्सा-पद्धति को अपनाऊं। वास्तव में यह एक बड़ी उलझन की बात हो जाती थी। बहुतों के सामने ऐसी ही समस्या रहती है, पर बहुत से ऐसे भी हैं कि उनके सामने कोई समस्या नहीं रहती। वे लोग किसी एक पद्धति के अन्ध-भक्त बन जाते हैं या एक के बाद दूसरी पद्धति को आजमाते जाते हैं।

मैं बचपन से ही चिकित्सा करने का प्रेमी था। अपने पिता जी के साथ हैजा, प्लेग के अवसरों पर पेटेंट दवाइयां बांटता बांटता मैं वैद्यक ग्रंथ पढ़ने लगा। मैंने कुछ नुस्खे सीखे, दवाइयां कूटीं और कुछ रोगियों को अच्छा किया। मेरा उत्साह बढ़ा, कुछ दिनों के बाद मैं होमियोपैथी की तरफ खिंचा और अन्त में बायोकेमिक प्रणाली (शुस्लर साहब की १२ दवाइयों की प्रणाली) का अभ्यास—कुशल डाक्टर बन गया। मैंने बहुतों को कठिन रोगों से मुक्त किया और समझने लगा कि यही दवाइयां परमोपयोगी हैं।

कई साल पहले मैं एक कठिन रोग से पीड़ित हुआ। बारी-बारी से सभी प्रणालियां आजमाई गईं। कोई भी फलवती न हुई। मेरी बायोकेमिक भी असफल ही रही। अन्त में ६–७ महीने तक मेरे कठिन यातना भोगने के बाद प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ हुई। लगभग दो साल में मैं पूर्ण स्वस्थ हो सका। प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ करने वाले सज्जन तो दूसरे थे पर कोई तीन हफ्ते के बाद मैं कई कारणों से अपना चिकित्सक आप ही बना। एक-डेढ़ महीने में मैं चलने-फिरने और सभी काम करने लग गया, पर मेरा बांया हाथ बेकार ही रहा। दो साल के अन्दर मैंने प्राकृतिक चिकित्सा की कई पुस्तकें पढ़ डालीं, अपने और परिवार वालों के ऊपर प्रायः सभी प्रयोग किये और स्वयं पूर्ण स्वस्थ होने के पहले न केवल बुखार, अपच इत्यादि के कई रोगियों को अच्छा किया बल्कि कुछ जीर्ण रोगों के रोगियों को भी स्वास्थ्य-लाभ कराने में सहायक हुआ। मैं स्वयं बिना पूर्ण स्वस्थ हुए दूसरों की चिकित्सा न करना चाहता था, पर लोगों ने मुझे मार-मार कर हकीम बनाया। प्राकृतिक चिकित्सक की हैसियत में मुझे एक और रोचक अनुभव हुआ। पहले तो मैं यह समझता था कि रोग को दूर करने के लिए औषधि-प्रयोग नितान्त आवश्यक है; अब मैं यह जान गया और समझने लगा कि रोग को दूर करने के लिए औषधि न केवल अनावश्यक है बल्कि कभी-कभी हानिकारक भी है।

सचमुच यह एक रोमांचकारी अनुभव था—बिना औषधि-प्रयोग के ही रोग दूर कर सकना। औषधि वाली प्रणालियों के अनुसार पहले रोग को पहचानना 'डायगनोज' (Diagnose) करना और उसका नाम धरना होता है और तब विविध रोगों के लिए बताई गई विविध औषधियों का प्रयोग करना होता है। अगर औषधि लग गई और रोग दूर हुआ तो कहा जाता है कि रोग ठीक-ठीक पहचान लिया गया था, 'डायगनोसिस' ठीक हुआ था, पर यदि रोग न गया तो कहा जाता है कि रोग पहचाना न जा सका, डायगनोसिस में भूल हुई। पाठकों को अच्छी तरह मालूम होगा कि इस 'डायगनोसिस्' (Diagnosis) के चक्कर में बहुत से विद्वान् डाक्टर और बहुत से अभागे रोगी रहते हैं। एक से एक योग्य चिकित्सक लगते हैं, पर अनेकों बीमारियों में 'डायगनोसिस' का ही बखेड़ा लगा रहता है। जब मैंने प्राकृतिक चिकित्सा का रहस्य समझा तो देखा कि इसमें 'डायगनोसिस' की वैसी उलझन नहीं है, इसमें रोग के नाम रखने का मूल्य नहीं है और न

ख़ास-ख़ास रोग की ख़ास-ख़ास दवाइयों पर जोर है। इसमें तो मुख्य सिद्धान्त है—सब रोगों का एकमात्र कारण शरीर में विजातीय द्रव्य (विकार) का होना है, इसलिए सब रोगों की एकमात्र चिकित्सा उस विजातीय द्रव्य को दूर करना है। कष्ट देने वाले लक्षणों को दूर करने के लिए कई प्रयोगों का सहारा लिया जाता है, पर मुख्य चिकित्सा सब रोगों में एक ही रहती है।

उदाहरण के लिए, ज्वर की चिकित्सा लीजिए। ज्वर को दूर करने के लिए प्राकृतिक चिकित्सक यह न सोचेगा कि यह साधारण ज्वर है या पैत्तिक ज्वर है या और कोई ज्वर है। वह समझ जायगा कि प्रकृति से सहारा पाकर शरीर अपने अन्दर के विकार निकालने में लग गया है। इसलिए यह निश्चय करेगा कि प्रकृति से सहयोग और शरीर की सहायता करो। आगे चलकर ज्वर चाहे जो भी हो जाय, आरम्भ में तो सब ज्वरों के प्रायः एक से ही ऊपरी लक्षण होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक बिना समय खोये अपना चिकित्सा-क्रम ठीक कर लेगा। उपवास और आवश्यकतानुसार एनीमा-प्रयोग, सारे शरीर का स्पंज, पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी या किसी विशेष स्नान के उपचारों को काम में लावेगा। उपवास और इन सीधे-सादे उपचारों से ज्वर किस तरह जल्दी दूर होता है, ज्वर में किसी तरह का उपद्रव नहीं होता, ज्वर जाने के बाद रोगी कितना शीघ्र पहले से अधिक स्वस्थ हो जाता है, ये बातें वही जानता है जिसने प्राकृतिक उपचारों से रोग को भगाया है। कुछ रोगों में इनके चमत्कार को देखकर मेरी आंखें खुल गई। पहले तो ज्वर का नाम सुनते ही मैं उसके नामकरण की चेष्टा में लगता था और तब दवाइयों को निश्चित करने का प्रयास करता था, पर अब ऐसी कोई कठिनाई न रह गई। अब तो औषधि-प्रयोग मूर्खता मालूम होने लगी, क्योंकि जब बिना औषधि के ही रोग चला जाता है तो औषधि के लिए क्यों चिन्ता की जाय।

प्राकृतिक-चिकित्सा-पद्धति के अनुभव से मैंने ये बातें सीखीं—(१) रोग प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन से ही होता है। (२) रोग शरीर को विकार-मुक्त करता है, इसलिए वह शत्रु नहीं मित्र है। अगर प्राकृतिक नियमों का पालन किया जाय तो रोग हो ही न ीं, पर अगर रोग हो जाय तो उससे लाभ उठाते हुए शरीर को अच्छा बना लेना चाहिए। (३) यह शरीर ऐसा बना है कि यह अपनी सफ़ाई, मरम्मत, अपने अन्दर का रोग भगाना इत्यादि बातें अपने आप ही कर सकता है।

वास्तव में प्राकृतिक-चिकित्सा-पद्धति की यह बहुमूल्य देन है—यह समझ कि अपने आपको ठीक कर लेने में शरीर समर्थ है। इस ज्ञान के महत्व को बे! ी

जानते हैं, जिन्होंने बिना औषधि-प्रयोग के, सिर्फ़ पंच-तत्त्वों—मिट्टी, आग या धूप के प्रभाव, जल इत्यादि—के सहारे रोगों को भगाया है।

फिर भी कुछ दिनों के बाद मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि औषधियों के संबंध में इतने आविष्कार, जो चिकित्सकों ने किये और इतना ज्ञान, जो उन्होंने प्राप्त किया, क्या ये सभी व्यर्थ हैं? पढ़ने और अपने आगे के अन्वेषणों से औषधि के सम्बन्ध में मैंने दो सम्मतियां समझीं। एक सम्मति के अनुसार औषधि-प्रयोग की बात सोचना भी प्राकृतिक सिद्धान्तों के विपरीत है। दूसरी सम्मति है कि जो औषधि विष की बनी नहीं है और लक्षणों को नहीं दबाती बल्कि शरीर को अच्छी तरह परिष्कृत करती है, उसका प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत है, पर उसका प्रयोग तभी किया जाय जब कि पानी-मिट्टी का प्रयोग काम न कर रहा हो।

इस दूसरी सम्मति के मूल्य को समझना चाहिए। तीव्र (नये) रोगों में जीवन-शक्ति इतनी प्रबल रहती है कि निरे प्राकृतिक उपचारों से जीवन-शक्ति की प्रतिक्रिया स्वास्थ्य के रूप में हो जाती है। तीव्र रोग होते भी उसी को हैं, जिसकी जीवन-शक्ति साधारणतः अच्छी है। इस शक्ति के प्रभाव से शरीर अपने विकारों को रोग के रूप में बाहर निकाल देता है। जिसकी जीवन-शक्ति क्षीण पड़ जाती है उसको दमा, गठिया इत्यादि जीर्ण रोग (राजरोग) होते हैं। ये रोग भी आरम्भ में निरे प्राकृतिक उपचारों के सहारे वश में किये जाते हैं। पर अगर जीवन-शक्ति का बहुत ह्रास हो गया है और रोग बहुत जीर्ण है तो ऐसी औषधियों का प्रयोग, जो विषाक्त नहीं हैं और प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में सहायक हैं, प्राकृतिक दृष्टि से सर्वथा उचित हैं। ऐसी औषधियां उचित पथ्य और विश्राम इत्यादि के नियमों के साथ बहुत हितकर सिद्ध होती हैं। जहां प्राकृतिक उपचारों से समुचित प्रतिक्रिया न होती हो वहां औषधियों का प्रयोग आवश्यक ही नहीं प्रशस्त है।

फादरनीप (Father Kniepp) एक बड़े यशस्वी प्राकृतिक चिकित्सक हो गये हैं। वे ऐसी जड़ी-बूटियों के प्रयोग को, जो विषैली नहीं हैं, प्राकृतिक चिकित्सा का अंग समझते थे। डाक्टर हेनरी लिंडलहार, एम० डी०, (H. Lindehar) अमेरिका के एक बड़े ही विख्यात और प्रतिष्ठित प्राकृतिक चिकित्सक हुए हैं। वे न केवल जड़ी-बूटियों को बल्कि होमियोपैथिक दवाओं को भी प्राकृतिक बताते हैं। कुछ होमियोपैथिक दवाइयां विषैली होती हैं सही, पर लिंडलहार के अनुसार उनके बनाने का ढंग ऐसा है कि औषधि

का अणु-मात्र ही रह जाता है और उसका विषैलापन जाता रहता है। दूसरी बात यह है कि अगर कोई होमियोपैथिक दवा ठीक-ठीक चुन कर दी जाती है तो उसकी प्रतिक्रिया बहुत और शीघ्र अच्छी होती है। लेकिन औषधि-प्रयोग के पक्ष वाले प्राकृतिक चिकित्सकों का यह भी कहना है कि औषधियों के प्रयोग के साथ-साथ उचित आहार-बिहार, व्यायाम-प्राणायाम इत्यादि के नियमों का पालन किया जाना आवश्यक है।

कई प्रयोगों के बाद अब मेरी राय यह है—जिन रोगों में औषधि-प्रयोग की आवश्यकता नहीं है, जैसे कि 'तीव्र' रोग और नये 'जीर्ण' रोग और जो शारीरिक प्रतिक्रिया से ही दूर हो जाते हैं, उनमें औषधियों का प्रयोग करना अनावश्यक ही नहीं, मूर्खता है। पर जो बहुत जीर्ण रोग हैं और जिनमें शारीरिक प्रतिक्रिया नहीं होती, उनमें प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का दम भरते हुए उचित औषधियों का प्रयोग न करना संकीर्णता और मूर्खता है। हमारा असल उद्देश्य सिद्धान्तों के पीछे दौड़ना नहीं रोगों को दूर करना होना चाहिए, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो भी त्रुटि-हीन साधन सहायक हों काम में लाना चाहिए।

मेरा यह भी विचार है कि अगर औषधि-प्रयोग (जड़ी-बूटी या होमियोपैथिक या बायोकेमिक औषधियों के प्रयोग) की आवश्यकता हो तो उसके साथ प्राकृतिक चिकित्सा के उपचारों में से सिर्फ़ एनीमा प्रयोग और पथ्य या भोजन विधियों का सहारा लिया जाय। स्नान इत्यादि का नहीं, और जैसे ही रोगी की दशा काफ़ी सुधर जाय औषधि-प्रयोग छोड़ दिया जाय और पूरी प्राकृतिक चिकित्सा शुरू की जाय। औषधि का सहारा बिगड़े जीर्ण रोगों में ही आवश्यक हो सकता है। चेष्टा होनी चाहिए कि जीर्ण रोग हो ही नहीं।

औषधि-प्रयोग की एक ख़ास बुराई है, जिससे बचना चाहिए। लोग अपने आचरण को ठीक नहीं करते लेकिन औषधियों के सहारे अपने दुष्कर्मों के परिणाम से बचना चाहते हैं। जो अति-भोजन करता है वह औषधि का सहारा लेता है और जो औषधियों में विश्वास रखता है वह अति भोजन करने से नहीं हिचकता। जो औषधि का सहारा न लेते हुए स्वस्थ रहना चाहते हैं और रहते हैं वे चरित्रवान् हैं और चरित्रवान् ही बिना औषधि के यथार्थ रूप से स्वस्थ रह सकते हैं।

प्राकृतिक उपचारों से भी बुराई हो सकती है। ज्वर को बहुत जल्दी दूर करने के लिए बार-बार ठंडे पानी में कटि-स्नान इसका एक उदाहरण है।

ज्वर शरीर के अन्दर के विकारों को जलाने के लिए होता है। चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह ज्वर के ताप को इतना शीघ्र न दूर कर दे कि विकार जलने न पावे ऊपरी लक्षण ही दब जायें, जैसा कि अलोपैथिक चिकित्सा में होता है। फिर जो अपने खान-पान के ढंग को ठीक नहीं करते और हर रोज मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते हैं या कटि-स्नान का सहारा लेते हैं वे प्राकृतिक उपचारों को करते हुए भी अप्राकृतिक हैं। उन्होंने दवा न खाई, 'बाथ' लिया। ऐसी बुराई से बचना चाहिए।

अन्त में मैं कहूँगा कि भले ही प्राकृतिक चिकित्सा में औषधियों का स्थान हो लेकिन प्राकृतिक जीवन में उनका स्थान नहीं है। अगर मनुष्य प्राकृतिक नियमों के अनुसार रहता है, अगर उसका खान-पान ठीक है, अगर वह उचित मात्रा में व्यायाम और पर्याप्त विश्राम करता है और इन सब से अधिक, अगर उसके भाव और विचार ठीक हैं—अगर वह अपने और दूसरों को 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' समझता है और उसी के अनुसार सभी काम करता है तो उसे न रोग सतावेगा और न औषधि की आवश्यकता होगी। इसलिए प्राकृतिक जीवन को अपनाइये, सिर्फ़ प्राकृतिक चिकित्सा की दुहाई न दीजिए।

संक्षिप्त इतिहास

प्राचीन काल में एक समय ऐसा जरूर रहा होगा जब कि आज कल की तरह तरह-तरह की औषधियों में से एक भी न रही होगी, फिर भी आदमी सुख से जीते होंगे। भारत में शुरू से ही रमणीय तीर्थ स्थानों में घूमना नदी-तट पर कुछ समय के लिए रहना, व्रत रखना, सादा भोजन करना, सप्ताह में एक बार नमक न खाना, सूर्य, अग्नि, जल आदि की पूजा करना, इत्यादि बातें स्वास्थ्य-प्रद होने के कारण धर्म का अंग मानी गई हैं। इन बातों का प्रभाव भी अच्छा होता था। शायद पुराने समय में अन्य देशों में भी मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों से ही विशेष सहायता लेकर हृष्ट-पुष्ट रहते होंगे। उस समय आज के बनावटीपन से दूर रहकर और प्राकृतिक जीवन के कारण मनुष्य को बीमार होने का अवसर ही न होता होगा। अगर किसी प्राकृतिक नियम के तोड़ने से कोई कभी अस्वस्थ हो जाता होगा तो उपवास से और प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग कर या जड़ी-बूटी ही खाकर वह फिर स्वस्थ हो जाता होगा। इस तरह अनुमान किया जाता है कि उस समय रोग से युद्ध करने के लिए मनुष्य के पास प्राकृतिक उपायों का ही एक-मात्र शस्त्र रहा होगा।

धीरे धीरे नगर-जीवन और बनावटी सभ्यता की वृद्धि के साथ मनुष्यों के रहन-सहन के ढंग बदलने लगे और पहले सादी जड़ी-बूटियां व्यवहार में लाई जा कर फिर उनसे तरह तरह की औषधियां आविष्कृत होने लगीं। संसार में सब से पहले औषधियों का तथा चीरा लगाने का शास्त्र भारत में ही आविष्कृत हुआ। आयुर्वेदीय औषधियों का प्रचार धार्मिक उपदेशों के साथ साथ होना आरंभ हो गया। इस बात का पूरा प्रमाण इंगलैंड के एक बड़े डाक्टर और लेखक वाइज (Wise) की १८०८ में प्रकाशित पुस्तक 'History of medicine among Asiatics' ('एशियाइयों में औषधि का इतिहास') से मिलता है। अंगरेजी के अन्य विद्वान् लेखकों ने यह भी लिखा है कि रोम में औषधि-शास्त्र के प्रचारक किसी बात का प्रमाण देने के लिए भारतीय

---

*यह अध्याय 'जीवन-सखा' पत्र (पहले लेखक-द्वारा संपादित) में प्रकाशित श्रीयुत कृष्णनन्दन प्रसाद के लेखों के आधार पर है।

औषधि-शास्त्र का उदाहरण देते थे। ईस्वी सन् १ में औषधि-शास्त्र के प्रकांड पंडित चरक ने इसे संहिता का रूप दिया और सन् २ में सुश्रुत रचा गया। सुश्रुत में चीरा लगाने के सौ यंत्रों का परिचय दिया हुआ है। उनमें से कुछ यन्त्र ऐसे भी थे, जो बाल को भी दो बराबर टुकड़ों में विभाजित कर सकते थे। भारतवर्ष से इस विद्या को ले जाकर बौद्ध भिक्षुओं ने इसका प्रचार चीन देश में किया और भारत से ही यह मिस्र (ईजिप्ट) देश को ले जाई गई, जहां से फिर इसका प्रचार यूनान (ग्रीस) में हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस शास्त्र के आविष्कार और सारे संसार में प्रचार का श्रेय भारत को ही है, पर साथ ही साथ यह भी न भूलना चाहिए कि यदि औषधियों का प्रयोग ठीक नहीं है तो इसका दायित्व भी भारत के ही सिर है।

ईसा के जन्म के चार सौ वर्ष पहले ग्रीस में पेरिक्लीज़ के समय में दार्शनिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक और कलाकारों के साथ साथ औषधि-शास्त्र में हिपोक्रेटस (Hippocrates) का नाम पश्चिमीय संसार में प्रसिद्ध हो रहा था। उस की लिखी पुस्तकों से प्रमाणित होता है कि उसके समय तक २६५ औषधियों का आविष्कार हो चुका था, लेकिन वे औषधियां मुख्यतः कुछ नये रोगों में ही प्रयोग की जाती थी। हिपोक्रेटस उन औषधियों के गुण में विश्वास करता था, पर उसकी धारणा थी कि प्रकृति में ही रोग-निवारण करने की शक्ति है और यह भी कि नये रोग (acute disease) स्वयं ही शरीर में एक प्राकृतिक तरीके से उभाड़ (curative crisis) लाकर शरीर के प्राकृतिक मार्गों में से एक या अधिक के द्वारा विकारों को बाहर फेंकता है।

हिपोक्रेटस के अनुसार चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह इन तबदीलियों का अनुमान पहले ही कर ले, जिससे वह उस प्राकृतिक तरीके को सफलीभूत होने में सहायता दे, रोकने में नहीं, जिससे कि रोगी चिकित्सक की सहायता से रोग के ऊपर विजय प्राप्त कर सके। जब विकार शरीर से होकर निकलने की चेष्टा करता था तो उस उभाड़ के समय की प्रतीक्षा व्यग्रतापूर्वक की जाती थी और हिपोक्रेटस की प्रणाली मे यह मुख्य बात थी कि उसके अनुयायी चिकित्सक उस उभाड़ के समय का भविष्यज्ञान ठीक-ठीक कर लेते थे। इस तरह वे पहले से ही सतर्क हो जाते थे कि किस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों का प्रयोग कर वह रोगी के विकारों को दूर करने में सहायता पहुंचा सकेंगे। रोग की पहचान उन चिकित्सकों में अच्छी न थी और न वे शरीर रचना का ही समुचित ज्ञान रखते थे, जिससे यह बता सकते कि

किस स्थान में कौन सा विकार इकट्ठा हो गया है। लेकिन यद्यपि हिपोक्रेटस और उसके शिष्य रोग के लक्षण और पहचान और शरीर की रचना अच्छी तरह नहीं जानते थे तो भी उन्हें रोगों को अच्छा करने में कोई अड़चन न होती थी। आजकल के उच्च-उपाधि प्राप्त डाक्टरों में, जो रोगों के नाम, लक्षण और शरीर-रचना के अच्छे ज्ञाता समझे जाते हैं, कितने ऐसे हैं, जो सब रोगों का अचूक इलाज कर पाते हैं? इंगलैंड के एलोपैथी के एक सुविख्यात डाक्टर सर विलियम औस्लर (Sir William Osler) का कहना है, "We put drugs, of which we know little into bodies, of which we know less," अर्थात् 'हम लोग औषधि, जिसके बारे में हम कम ज्ञान रखते हैं, शरीर में, जिसके बारे में हम औरभी कम ज्ञान रखते हैं, डालते हैं।' अमेरिका के डाक्टर क्लार्क (Clerk) का कहना है कि चिकित्सकों ने रोगियों को लाभ पहुँचाने के प्रयत्न में इसके विपरीत बहुत हानि पहुंचाई है। उन्होंने सहस्रों ऐसे रोगियों के प्राण लिये, जो यदि प्रकृति के भरोसे छोड़ दिये जाते तो अवश्य आरोग्य हो जाते। जिन्हें हम औषधि समझते हैं वे वास्तव में विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रा से रोगी की शक्ति का ह्रास होता जाता है। डाक्टर होम्स (Holmes) का कहना है कि यदि सब औषधियां समुद्र में फेंक दी जातीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता। डाक्टर अबरानकी (Oberanki) के विचार में चिकित्सों की संख्या बढ़ने के साथ ही साथ रोगों की संख्या भी बढ़ती जाती है। हिपोक्रेटस और उसके शिष्य चिकित्सा के समय भोजन देने में भी विशेष ध्यान रखते थे और विविध रोगों में न्यूनाधिक हेर-फेर कर के भोजन देते थे। इस तरह रोग-निवारण में प्राकृतिक उपचारों को प्रधानता देकर औषधि को वे दूसरा स्थान देते थे और जीर्ण रोगों में संभवतः कुछभी औषधि न देकर केवल नियमित भोजन, व्यायाम और अन्य प्राकृतिक विधियों का व्यवहार कर रोगों को दूर करते थे। हिपोक्रेटस के बाद रोम में अलक-जेन्ड्राइन स्कूल के डाक्टरों ने औषधि-प्रणाली की उन्नति और वृद्धि पर ही ध्यान दिया।

धीरे धीरे धातु, नशीले और विषैले पदार्थों से औषधियां बन कर व्यवहार में लाई जाने लगीं, जिनका सामूहिक नाम 'एलोपैथी' (Allopathy) अर्थात् 'विपरीत प्रभाव की' औषधि पड़ा। उन चिकित्सकों ने, जो केवल जड़ी-बूटी की बनी औषधियां ही व्यवहार में लेते थे, इन औषधियों का बड़ा

विरोध किया, लेकिन उनका बस न चला। कारण यह था कि नई आवि-ष्कृत औषधियां स्थूल दृष्टि से देखने में बहुत जल्द लाभ पहुंचाती थीं। लोग उसी से सन्तुष्ट होने लगे और सर्वदा के लिए आरोग्य कर देने वाली विधियों को भूलने लगे।

जैसे जैसे समय बीतता गया एलोपैथी का साम्राज्य सारे संसार में होने लगा, लेकिन साथ ही साथ इस प्रणाली के विरोधी भी प्रकट होने लगे। इन लोगों में सबसे प्रथम विगत शताब्दी के आरंभ में जर्मनी के एक डाक्टर हैनीमैन (Hahnemann) थे। एम० डी० की डिग्री लेकर १७८४ में ये ड्रेस्डन (Dresden) में डाक्टरी करने लगे। इनकी प्रेक्टिस खूब चली। इन्हीं दिनों जब यह डब्लू० कलन (W. Cullan) के द्वारा रचित डाक्टरी की सब से मुख्य पुस्तक 'मेटीरिया मेडिका' का अनुवाद जर्मन भाषा में कर रहे थे तो यह जान कर चकित हो गये कि यदि कुनैन आरोग्य मनुष्य को खिलाई जाय तो उसके शरीर में वही विकार पैदा हो जायगा, जिसके अच्छा करने के लिए वह दवा एक रोगी को दी जाती है। इसी एक बात से उन्हें अपने तथा अपने पेशे वालों पर बड़ी ग्लानि हुई। उन्हें आश्चर्य हुआ कि ये इतनी अधिक मात्रा में इन विषैली औषधियों को मनुष्य के शरीर में भरते हैं। इनके दिल में यह बात अच्छी तरह बैठ गई कि विष की बनी औषधियां विनाश-कारिणी होती हैं और रोग को अच्छा करने के बदले वे उनको केवल दबातीं और शरीर में जहर भर देती हैं। इस प्रकार रोग से कहीं अधिक घातक ये औषधियां ही होती हैं। हैनीमैन के सब विचार प्राकृतिक चिकित्सक के विचार के बिल्कुल अनुकूल हैं, लेकिन हैनीमैन जब यह स्थापित करते हैं कि रोग को आराम करने में केवल प्राकृतिक शक्तियां ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि औषधियों से भी थोड़ी सहायता लेना आवश्यक है तो दोनों मतों में भेद पड़ जाता है। हैनीमैन ने औषधि देने का एक नया तरीका सोच निकाला। उन्होंने सोचा कि रोगी को अधिक मात्रा में औषधि देकर रोग के साथ छेड़-छाड़ करने से रोग दब जाता है। यदि विकार के विरुद्ध औषधि न दे कर उसी के योग्य दवा दी जाय तो उसके उभड़ने में और भी सहायता मिलेगी और तेज़ी से विकार बाहर निकल जायगा। रोग को उभाड़ कर निकालना प्राकृतिक चिकित्सक के मतानुसार भी ठीक है, लेकिन भिन्नता इसी में आ जाती है कि एक तो औषधि देकर रोग को उभाड़ने का प्रयत्न करता है और दूसरा बिना किसी प्रकार की औषधि दिए ही। औषधि से रोग उभड़ कर निकल तो जाता है लेकिन फिर भी औषधि का कुछ अंश

शरीर में रह ही जाता है। एक बात यह भी है कि यह शरीर ऐसा बना है कि अपनी सफ़ाई और मरम्मत आप ही कर लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि दोनों के उद्देश्य एक ही हैं, पर साधन में अन्तर जरूर हैं।

एलोपैथी का बोलबाला इंगलैंड आदि देशों में बहुत था, लेकिन अठारहवीं शताब्दी के अंत में वहां के कुछ प्रमुख एलोपैथिक डाक्टर ही इसके घोर विरोधी हो गए। उनमें से एक लिचफ़ील्ड (Lichfield) के डाक्टर सर जॉन फ्लॉयर (Sir John Floyer) थे। उनको यह पता चला कि उपर्युक्त शहर के पास ही किसी झरने के पानी में स्नान कर के कुछ किसानों ने स्वास्थ्य-लाभ किया है। उन्होंने इस बात की खूब जांच की और तब उन्हें जल का प्रभाव विदित हुआ। दूसरे विरोधी लिवरपूल (Liverpool) के डाक्टर जेम्स करी (James Curie) थे। इन्होंने भी १७९७ में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने ज्वर और अन्य रोगों में जल के प्रभाव पर लिखा। कुछ साल बाद ही ये दोनों पुस्तकें जर्मन भाषा में अनुवादित होकर छापी गईं और वहां उनका बड़ा आदर हुआ। १८०४ में जर्मनी-अन्तर्गत आंसबैक (Ansback) के प्रोफ़ेसर ऑर्टल (Ortal) ने जल पीकर सब रोगों को दूर करने की विधि पर बड़ा आन्दोलन किया, जिससे उपर्युक्त दोनों अंग्रेज़ी पुस्तकों से प्रभावित जर्मन जनता का जल के आरोग्यदायक गुण पर विश्वास बढ़ने लगा। यह सब तो था लेकिन अब तक प्राकृतिक-चिकित्सा की किसी नियमित प्रणाली की स्थापना न हुई थी।

जर्मनी-अन्तर्गत सिलेसियन पहाड़ के एक गांव में प्रेसनीज़ (Vincenz-Preissnitz) नामक एक व्यक्ति का जन्म १७५२ ई० में एक साधारण किसान के घर हुआ। लड़कपन में उसे शिक्षा न दी जा सकी। किसान-बालकों की तरह वह अपने गांव के आस-पास के पहाड़ी जंगलों में दिन में गाय चराया करता था। एक दिन, जब वह केवल आठ ही साल का था, अपनी गायों को चराते हुए उसने देखा कि एक हिरनी बुरी तरह लँगड़ाती हुई एक झरने के पास पहुँची और करीब आध घंटे पानी में खड़ी होने के बाद पानी से निकल कर जिधर से आई थी उधर ही चली गई। इस घटना से तीव्र-बुद्धि बालक प्रेसनीज़ के दिल में यह जानने की उत्कंठा हुई कि वह ज़ख्मी हिरनी पानी में इतनी देर तक क्यों खड़ी रही? उसने सोचा कि दूसरे दिन भी देखना चाहिए कि हिरनी फिर आती है या

नहीं। ऐसा सोचकर दूसरे दिन वह उसी जगह बहुत पहले से ही छिप कर उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। हिरनी करीब करीब उसी समय पर फिर आई, जिस समय कि पिछले दिन आई थी, और इस बार आध घंटे से कुछ अधिक देर तक पानी में ठहरने के बाद फिर चली गई इसी तरह रोज तीन सप्ताह तक नियमित समय पर हिरनी नित्य आती रही और प्रेसनीज बहुत ही ध्यानपूर्वक उसे देखता रहा। प्रेसनीज ने यह भी देखा कि हिरनी का लँगड़ाना धीरे धीरे कम होता जा रहा है। फिर इस अवधि के अन्त में पानी से निकल कर हिरनी जो चारों पैरों से उछलती हुई भागी तो फिर न आई।

इस एक महत्वपूर्ण घटना के द्वारा आठ साल के बालक प्रेसनीज के हृदय पर पानी का प्रभाव अंकित हो गया। जब प्रेसनीज सोलह साल का था तो एक दिन उसके जंगल से लकड़ी काट कर लौटते समय बर्फ गिरने लगी। उस आंधी-बौछार में लुढ़कता हुआ वह घर के पास जा पहुँचा और जब आंधी शान्त हुई तो वह एक उलटे हुए छप्पर के नीचे पड़ा हुआ पाया गया। जब वह निकाला गया तो उसकी चार पसलियाँ बुरी तरह कुचली पाई गईं। वे उसके शरीर में घुस गई थीं। जब वह छप्पर के नीचे दबा पड़ा था तो उसी समय उसके स्मृति-पथ में हिरन वाली घटना आई और उसने सोचा कि यदि मैं इसके नीचे से जीवित निकाल लिया गया तो मैं भी उसी तरह अपनी चिकित्सा करके देखूंगा कि क्या प्रभाव होता है। छप्पर के नीचे से निकाले जाने पर सचमुच उसने अपनी चिकित्सा उसी तरह की। हिरनी की तरह पानी में खड़ा होकर उसको जल का प्रयोग न करना था क्योंकि उसकी पसलियां टूटी थीं। सूती कपड़े की गद्दी पानी में भिगोकर वह अपने आहत अंग पर रखने लगा और जब गद्दी सूख जाती तो फिर उसे पानी से भिगो कर रख देता। इस तरह दिन बीतते गए, उसकी पीड़ा कम होती गई, उसके विक्षत अंग में शक्ति आने लगी और वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

इस तरह सभ्य-जीवन से बहुत दूर रहने वाला इस अनुभवशील, दीन, अपढ़ पहाड़ी किसान-बालक ने अपनी विलक्षण तीव्र बुद्धि से जल-चिकित्सा-प्रणाली की स्थापना की, जो आज समस्त सभ्य संसार में अचूक चिकित्सा का एक अंग समझी जा रही है। (कुछ लोगों के मत के अनुसार प्रेसनीज १८०१ में पैदा हुआ और १८२६ में उसने अपने घर पर ही जल-

चिकित्सा करना शुरू किया।) इसको नई विधि से अच्छा होने के लिये बहुत संख्या में दूर दूर से रोगी इसके घर आते और अच्छे होकर इसके यश की वृद्धि करते। पुराने विचार के लोग, विशेष कर डाक्टरों ने, इस विधि का घोर विरोध किया और इस बेचारे पर सब तरह का दोषारोपण कर इसे कैद को सजा तक दिलवाने की सोंची। मसला बहुत बढ़ा, लेकिन इन सब फसादों में इसी की जीत हुई। इस जीत से इसका गौरव और भी बढ़ गया।

प्रेसनीज़ की चिकित्सा-प्रणाली में प्रधानता जल के व्यवहार और भोजन की सादगी की थी। इससे उस प्रणाली को आधुनिक प्राकृतिक-चिकित्सा का एक अंग अर्थात 'जल-चिकित्सा' कहना चाहिए। लेकिन इसके बाद विविध सज्जनों-द्वारा प्राकृतिक-चिकित्सा के अलावा और भी बातें इसमें जोड़ी गईं, जैसे उपवास, एनीमा का व्यवहार, भोजन का वैज्ञानिक ज्ञान, प्रकाश, धूप, हवा, भाप और बिजली का प्रयोग, तरह तरह के लेप, स्नान और पट्टियां (packs), आराम (relaxation), व्यायाम इत्यादि। इन बातों के कारण अब प्राकृतिक-चिकित्सा-प्रणाली की सम्पूर्णता में कमी न रह गई। दुर्घटना इत्यादि में कभी-कभी सर्जरी (चीरा) से सहायता लेनी होती है, लेकिन इसका अधिकतर काम मिट्टी, भाप, उपवास आदि से निकल जाता है। यदि प्राकृतिक नियमों के अनुसार रहा जाय तो फोड़े होवें ही नहीं और सर्जरी की आवश्यकता हो न पड़े।

प्रेसनीज के बाद (पहले ऑस्ट्रिया और अब जेकोस्लोवाकिया-अन्तर्गत लिन्डविज (Lindewiese) नगर के जोहान श्रोथ (Johannes Schroth) नामक एक गाड़ी हांकने वाले कोचवान ने प्राकृतिक-चिकित्सा के महत्व को अपने ही ऊपर घटित उदाहरणों से अच्छी तरह समझ कर इस प्रणाली के उन्नतिशील होने में विशेष रूप से सहायता दी। एक बार घुटने की गोल हड्डी (patella) पर उसे भारी चोट लग गई। ऐसा अनुमान होता था कि वह सदा के लिए लँगड़ा हो गया। उसने उसको अच्छा करने के लिए बहुत प्रयत्न किए, अच्छी से अच्छी दवा लगाई, पर कोई लाभ न हुआ। एक साधु ने उसे चोट पर ठंडे जल का प्रयोग करने को कहा। सब दवाओं से हार कर जल का प्रयोग करना उसने पहले से ही निश्चय किया था, लेकिन अब साधु-द्वारा उत्साह दिलाये जाने पर वह साधु के बताए ढंगों में कुछ अपनी बुद्धि से हेर-फेर कर अपनी चिकित्सा

आप ही करने लगा और कुछ ही सप्ताह के बाद बिल्कुल अच्छा हो गया। अपने ऊपर आजमाए हुए इस अचूक विधि को दूसरों पर आजमाने के पहले वह इस प्रयोग को कुत्तों और घोड़ों पर करने लगा और इसमें जब वह सिद्धहस्त हो गया तो मनुष्यों को भी अच्छा करने लगा। प्रेसनीज की तरह इसकी ख्याति भी ख़ूब फैली, लेकिन उसी की तरह औषधि-विज्ञान के भक्तों ने इसकी भी ख़ूब निन्दा की। बीस साल तक उन लोगों ने इसे ख़ूब सताया, इसकी जिन्दगी तबाह कर दी और कई तरह के दोषारोपण कर इसे जेल की भी सजा दिलवा दी। अगर उसके जीवन में नीचे दी हुई एक घटना न होती तो शायद वह इसी तरह प्राण भी विसर्जन कर देता। १८४९ में वर्टम्बरा (Wurtemberg) का ड्यूक लड़ाई में बुरी तरह घायल हुआ। कई स्थानों पर उसका शरीर क्षत-विक्षत हो गया। बड़े से बड़े डाक्टरों ने तीन महीने तक उसकी अच्छी से अच्छी चिकित्सा की परन्तु लाभ होने के बदले उसका जीना भी दुर्लभ हो गया। जीवन से आशा-रहित होकर ड्यूक ने अन्त में श्रौथ का आश्रय लिया। श्रौथ ने उसे वचन दिया कि वह उसे अच्छा कर देगा और कुछ महीनों में ही ड्यूक सचमुच बिल्कुल अच्छा हो गया। इस घटना के बाद श्रौथ शत्रुओं के चंगुल से मुक्त हुआ। ड्यूक ने इसकी ख्याति समस्त आस्ट्रियन फ़ौज में फैला दी। प्राकृतिक-चिकित्सा के इस विधि को, जिसे श्रौथ करता था, 'श्रौथ-चिकित्सा' (Schroth-cure) के नाम से पुकारते हैं। श्रौथ के बाद इसका लड़का (Emmanuel) इमेन्युल श्रौथ ने भी इसी विधि को अपनाया और लिन्डविज में ही अपना केन्द्र-स्थान बना कर हजारों रोगियों को प्रतिवर्ष अच्छा करने लगा।

जोहान श्रौथ के समय में ही बवेरिया के एक उदार प्रकृति पादड़ी, फ़ादर नीप (Father Sebastian Kneipp), ने भी इस विधि का प्रचार असीम उत्साह से करना शुरू कर दिया और जड़ी-बूटी और जल के प्रयोग-सम्बन्धी बहुत से बहुमूल्य आविष्कार किए। उसी देश के आर्नल्ड रिक्ली (Arnold Rickli) नामक एक व्यापारी ने अपने शहर में १८४८ में 'प्रकाश' और 'वायु' का सैनिटोरियम खोला, जो अपने ढंग का सब से पहला था। पहले-पहल इसी ने यक्ष्मा के रोगी तथा दूसरे रोगों से ग्रस्त मनुष्यों को प्रकाश और वायु में पूरा शरीर खोलकर रखने और निरामिष (बिना मांस के) भोजन खाने के सिद्धान्तों का प्रचार किया।

जर्मनी-अन्तर्गत लिपज़िग (Leipzig) नगर के लूई कूने (Louis Kuhne) नामक एक जुलाहे के माता-पिता की मृत्यु औषधि वाले डाक्टरों के हाथ हुई थी, और केवल बीस साल की अवस्था में ही यह युवक स्वयं ही सिर और फेफड़े के भयानक रोगों से और पेट में फोड़ा हो जाने से बुरी तरह पीड़ित होकर जीवन से निराश हो गया था। जब डाक्टरों ने १८६४ में इसकी बीमारी को अपनी शक्ति से बाहर समझ कर इसकी चिकित्सा छोड़ दी तो यह जीर्ण-शीर्ण युवक अपनी मृत्यु की घड़ियां गिनने लगा। लेकिन इसी समय जल-चिकित्सा के द्वारा रोग अच्छा होने की भनक इसके कानों में पड़ी। उस समय प्रेसनीज़, श्रोथ, नीप आदि के बहुत से अनुयायी हो गए थे, जिनमें मेलज़र (Meltzer), थियोडोर हैन (Theodor Hann), रसे (Rausse) आदि बहुत नाम पा रहे थे। कूने सीधा इनके आश्रम में आया और इनके कहे अनुसार अपनी चिकित्सा करने लगा। धीरे धीरे इसकी पीड़ा शान्त होने लगी। इसी समय उसका भाई भी बहुत बुरी तरह बीमार हो गया। उपर्युक्त प्राकृतिक चिकित्सकों से थोड़ा इशारा पाकर लूई कूने ने अपनी बुद्धि से कई प्रकार के स्नानों से रोग अच्छा करने की विधि सोच निकाली और प्राकृतिक चिकित्सा के एक अंग अर्थात जल-चिकित्सा को विशेष सरल और उपयोगी बनाने के साथ साथ उसने अपने और अपने भाई के रोगों को भी अच्छा कर लिया। अपने और अपने भाई के स्वास्थ्य-लाभ का प्रभाव कूने के ऊपर इतना अधिक हुआ कि उसने इस विषय का खूब अध्ययन किया और दूसरों पर भी प्रयोग किया। जब वह इसमें पूर्ण-रूप से सिद्धहस्त हो गया तो अपने ही नगर में सन् १८८३ में अपना चिकित्सालय खोल दिया। कूने का सिद्धान्त था 'Unity of all diseases' अर्थात् 'सब रोगों की जड़ एक ही है'—शरीर में विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना—और यह भी केवल आन्तरिक सफ़ाई से ही रोग अच्छा हो जाता है। विविध प्रकार के स्नानों का आविष्कार करते हुए इसने निरामिष भोजन और शाकाहार पर जोर दिया और चेहरे की बनावट (facial expression) देख कर ही रोग पहचान लेने के तरीकों को भी ढूंढ़ निकाला। इसने अपने सिद्धान्त प्रयोग और आविष्कार को 'दि न्यू साइन्स ऑफ़ हीलिंग' (The New Science of Healing) और 'दि साइन्स आफ़ फेशियल एक्सप्रेशन' (The Science of Facial Expression) नामक दो पुस्तकों में खूब समझा कर लिखा है।

जर्मनी के ही एलोपैथी के प्रसिद्ध डाक्टर और बाद में प्राकृतिक चिकित्सक हेनरिक लहमन (Henrick Lahmann) ने स्वस्थ जीवन, वैज्ञानिक-भोजन और स्वास्थ्य-वर्द्धक कपड़े पहनने पर विशेष जोर दिया। इसी देश के एडोल्फ़ जुस्ट (Adolf Just) नामक एक और साधारण मनुष्य ने प्राकृतिक-चिकित्सा को अपने आविष्कारों से संपूर्णता-प्राप्त करने में सहायता दी। जुस्ट प्रकाश तथा वायु-सेवन का प्रबल पक्षपाती था। जुस्ट की यह धारणा है कि यदि प्रौढ़ मनुष्य भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे तो उसके सारे शरीर में एक नई शक्ति उत्पन्न होकर उसे फिर से जवान बना (rejuvenate) देगी। उसकी पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' (Return to Nature) मशहूर है। जर्मनी का ही रहने वाला प्रोफ़ेसर आर्नल्ड एहरेट (Arnold Ebret) ने अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा प्रचार किया। उसने फलाहार और उपवास पर जोर दिया।

अमेरिका के डाक्टर हेनरी लिंडलहार, एम० डी० (Henry Lindlhar) ने भी प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार खूब किया। यह एक बड़े विख्यात एलोपैथिक डाक्टर थे, पर पीछे प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी हुए। इनका कहना है कि यदि नया रोग दवा इंजेक्शन आदि से शरीर में दबकर छिप रहा और विकार शरीर से नहीं निकला तो वही जीर्ण रोग के रूप में प्रगट होता है। उसी देश के डाक्टर डिवी (Dewey) ने भोजन और उपवास पर बहुत सी नई बातें सोच निकालीं, जिनसे प्राकृतिक चिकित्सा और भी सम्पूर्ण हो सकी।

इसी तरह बहुत से एलोपैथिक डाक्टर और अन्य सज्जनगण भी हुए, जिन्होंने इस चिकित्सा-विधि की वृद्धि और प्रचार में बड़ी सहायता दी। अमेरिका के डाक्टर कैलेब जेक्सन (Caleb Jackson) डाक्टर केल्लौग (Kellogg), डाक्टर टिल्डन (Tilden); जर्मनी के डाक्टर श्वेनिगर (Schweninger) और इंगलैण्ड के दो प्रसिद्ध डाक्टर सर विलियम औस्लर (Sir William Osler) और विलियम आर्बथनॉट लेन (Sir william Arbuthnot Lane), जो अभी १९४४ में, जीवित हैं), के नाम इन प्रचारकों में उल्लेखनीय हैं। अपने देश में भी जबलपुर निवासी स्वर्गीय राय बहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधरी, रिटायर्ड सिविल-सर्जन, का नाम प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सकों में रखा जा सकता है। अन्य प्रचारकों में 'फ़िज़िकल कल्चर' पत्रिका के सम्पादक वर्नर मेकफ़ेडन

(Bernarr Macfadden) 'हेल्थ फार आल' (Health for All , पत्रिका के सम्पादक स्टेनली लीफ़ (Stanley Lief) और हैरी बेन्जमिन (Harry Benjamin) मशहूर हैं। अपने देश के एक दूसरे सुविख्यात प्राकृतिक चिकित्सक पुदुकोट्टा (मद्रास) के श्रीयुत के० लक्ष्मण शर्मा हैं। चौधुरी और शर्मा के अतिरिक्त और भी बहुत से प्राकृतिक चिकित्सक हिन्दुस्तान में हुए और हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा चिकित्सक मंडल से बाहर रहने वाले लोगों, जैसे किसान प्रेसनीज़, कोचवान श्रोथ, पादड़ी नीप, जुलाहा कूने आदि, के द्वारा आविष्कृत और परिवर्द्धित होकर भिन्न भिन्न देशों के सुप्रसिद्ध, सुशिक्षित और अनुभवी डाक्टरों-द्वारा अपनाई और फैलाई गई है। इन डाक्टरों ने इसकी उपयोगिता तथा तत्व को समझ कर औषधि की पद्धति को त्याग दिया और इसके प्रबल समर्थक बन गए। इनके अतिरिक्त इस शताब्दी में संसार के प्रायः सभी देशों के उदारमत वाले चिकित्सकों ने इस चिकित्सा की उपयोगिता को समझा है और आजकल की प्रचलित विषैली औषधियों द्वारा होने वाले अनर्थों पर जोर देते हुए उसका विरोध करना शुरू किया है। सर विलियम औस्लर ने, जो गत वर्षों में संसार के शायद सब से बड़े डाक्टर हो गए हैं, और अमेरिका के जॉन हॉपकिन्स युनिवर्सिटी तथा इंगलैण्ड के ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी के चिकित्सा-विभागों के अध्यक्ष रह चुके हैं, आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली को बड़े जोरों में निन्दनीय बताया है। जर्मनी के प्रिंस बिसमार्क के चिकित्सक डाक्टर श्वेनिर ने भी 'दि डाक्टर' (The Doctor) नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने आजकल की जहरीली तथा प्राण-घातक औषधियों द्वारा चिकित्सा-प्रणाली की कड़ी आलोचना की है। जर्मनी में, जहां से इस प्राकृतिक-चिकित्सा विधि की उत्पत्ति हुई, सर्वसाधारण जनता ने चिकित्सकों को इसी विधि को अपनाने के लिए विवश किया है। ऊपर दी हुई बातों से सिद्ध होता है कि सभ्य संसार धीरे धीरे प्राकृतिक-चिकित्सा का तत्व समझता जा रहा है। यथार्थ में यह आधुनिक युग के उन आविष्कारों में है, जो मनुष्य जीवन को पहले से कहीं अधिक उपयोगी तथा सुखमय बनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

*